# रामदरश मिश्र के उपन्यास - एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

# RAMDARASH MISRA KE UPANYAS - EK VISLESHANATMAK ADHYAYAN

Thesis submitted to

**COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY**

For the degree of

**DOCTOR OF PHILOSOPHY**

By

**BINOD BABU. K.B.**

Head of the Department

**Prof. (Dr.) A. ARAVINDAKSHAN**

Supervising Teacher

**Prof. (Dr.) M. SHANMUGHAN**

DEPARTMENT OF HINDI

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

KOCHI-682 022

2005

G9080

# CERTIFICATE

This is to certify that this thesis entitled **'RAMDARASH MISRA KE UPANYAS - EK VISLESHANATMAK ADHYAYAN'** is a bonafide record of work carried out by Binod Babu. K.B. under my supervision for Ph.D and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology

**Prof. (Dr.) M. SHANMUGHAN**
(Supervising Teacher)

Kochi-22
25.08.05

UNIVERSITY LIBRARY
Cochin - 682 022
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

# DECLARATION

I hereby declare that this thesis entitled **'RAMDARASH MISRA KE UPANYAS - EK VISLESHANATMAK ADHYAYAN'** is an original work carried out by me under the supervision of Dr. M. Shanmughan, Professor, Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology. I also declare that no part of this work has hitherto been submitted for a degree in any university.


Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology

**BINOD BABU. K.B.**


Kochi-22
25.08.05

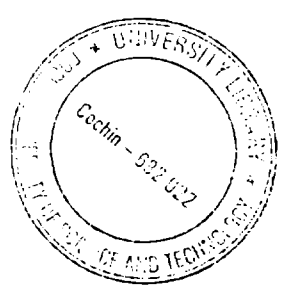

# विषय सूची


अध्याय एक

**रामदरश मिश्र का सृजनात्मक व्यक्तित्व** 1 - 41

मिश्रजी का व्यक्तित्व - पारिवारिक परिवेश - ग्रामीण परिवेश - पात्रों के चित्रण में परिवेश का प्रभाव - मिश्रजी का रचना संसार - कविता - गज़ल - कहानी - निबंध - आत्मकथा - संस्मरण - यात्रावृत्त - आलोचना - मिश्रजी के उपन्यास - संपादित पुस्तकें।

अध्याय दो

**मिश्रजी के उपन्यासों में चित्रित ग्राम संवेदना** 42 76

उपन्यासों में चित्रित गाँव की भौगोलिक विशेषताएँ - गाँव की सामाजिक व्यवस्था - जाति भेद का चित्रण - दलित नारी - अन्ध विश्वास और कुरीतियाँ - शिक्षा - गाँव का पिछडापन - आर्थिक व्यवस्था - राजनीति का चित्रण - परिवार एवं व्यक्ति - गाँव की नारी - बदलता हुआ गाँव।

अध्याय तीन

**मिश्रजी के उपन्यासों में चित्रित नगर संवेदना** 77 117

स्वातंत्रयोत्तर भारतीय समाज और नगर जीवन - मिश्रजी के उपन्यासों में चित्रित नगर संवेदना - नगरीकरण और प्रवासी जीवन के कारण - नगर जीवन की समस्याओं का चित्रण - नगर के विभिन्न वर्गों का चित्रण - उच्चवर्ग - मध्यवर्ग - निम्न वर्ग - नगर में जाति - राजनीति और जाति की मिलीभगत - सिफारिश और भ्रष्टाचार के माहौल का चित्रण - नगरों का नारी जीवन - शहरों की गन्दगी का चित्रण।

अध्याय : चार

**मिश्रजी के उपन्यासों के प्रगतिशील आयाम** 118 - 168

प्रगतिशील उपन्यास साहित्य - मिश्रजी के उपन्यासों के प्रगतिशील आयाम - मिश्रजी के उपन्यासों में व्यवस्था की अमानवीयता का चित्रण - आम आदमी की निरुपायता एवं विवशता - वामपंथ का प्रभाव - दकियानूसी एवं प्रगतिशील शक्तियों के बीच का संघर्ष।

अध्याय पाँच

**मिश्रजी के उपन्यासों का संरचना पक्ष** 169 - 218

मिश्रजी के उपन्यासों की कथा संरचना - मिश्रजी के लघु उपन्यास - मिश्रजी के उपन्यासों की शिल्प विधि - वर्णनात्मक शिल्प विधि - मिश्रजी के उपन्यासों की शैली - वर्णनात्मक शैली (अन्यपुरुष शैली) - मिश्रजी के उपन्यासों की भाषागत विशेषताएँ - शब्द विन्यास - आँचलिक शब्दावली अनुरणनात्मक ध्वनि प्रयोग - परिवेशबोधी आँचलिक शब्दावली - शब्द और परिवेश - अंग्रेज़ी, संस्कृत और उर्दू शब्दावली - वाक्य गठन - लोक गीत - कहावत - मुहावरे - कविताओं का प्रयोग।

**उपसंहार** 219 224

**संदर्भ ग्रन्थ सूची** 225 240

.....🕮.....

# पुरोवाक्

रामदरश मिश्रजी का रचनाकर्म बहुत व्यापक और बहुआयामी है। कविता, उपन्यास, कहानी, यात्रावृत्त, निबंध, संस्मरण, आत्मकथा जैसी अनेक विधाओं में उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा का अंकन हुआ है। वे सचमुच प्रतिबद्ध रचनाकार है। उनके लेखन की मूल संवेदना 'मानवीयता' है अतः वे समाज के किसी भी मुद्दें को अनदेखा नही करते। उपन्यास के क्षेत्र में हलांकि उन्हें आँचलिक उपन्यासकार के रूप में अधिक ख्याति मिली है, फिर भी आँचलिक उपन्यासकार के तौर पर उन्हें सीमाबद्ध करना अन्याय होगा। उन्होंने उपन्यासों में तत्कालीन भारतीय समाज के सभी आयामों का चित्रण किया है। उनके समूचे उपन्यास पठनीय और रोचक हैं। कथ्य कितना ही गंभीर हो लेकिन उनकी निजि शैली पाठकों को बाँधकर रखने में सक्षम है।

एम.ए. का विद्यार्थी रहते हुए मुझे उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'अपने लोग' पढने का सुअवसर मिला था। उसके बाद उनके लेखन के प्रति मन में एकाएक आकर्षण बढता गया। एक एक करके उनके सारे उपन्यास और अन्य कुछ रचनाएँ पढ़ी। जब शोध कार्य करने का सुअवसर मिला तो एकदम उनके संपूर्ण उपन्यासों का अध्ययन करने का निर्णय ले लिया।

यह शोध प्रबंध मिश्रजी के उपन्यासों के सभी आयामों को मूल्यांकित करने की विनम्र कोशिश है। अध्ययन की सुविधा केलिए इसे पाँच अध्यायों में विभाजित किया है। प्रथम अध्याय है, 'रामदरश मिश्रजी का सृजनात्मक

व्यक्तित्व एवं कृतित्व। इसके अन्तर्गत मिश्रजी के व्यक्तित्व और उनकी रचनाओं का परिचय दिया गया है। इसमें यह दिखाने का प्रयास किया है कि उनकी रचनाएँ उनके अनुभवों की नींव पर रची गयी हैं। यानी उनके साहित्य से भिन्न नही है उनका निजी व्यक्तित्व। करनी और कथनी में अन्तर मिश्रजी के संदर्भ में लागू नही होता है। मिश्रजी के सृजनात्मक कृतित्व के अन्तर्गत उपन्यासों के अलावा अन्य सभी रचनाओं का सामान्य परिचय दिया गया है।

दूसरा अध्याय है - "मिश्रजी के उपन्यासों में चित्रित ग्राम संवेदना।" इस के अन्तर्गत उनके उपन्यासों में चित्रित ग्रामीण जीवन का विश्लेषण किया गया है। मिश्रजी ग्राम संवेदना के रचनाकार माने जाते है। ग्रामीण जीवन और संस्कृति के प्रति उनके मन में गहरा लगाव व आकर्षण है। बचपन से यौवन तक वे ग्रामीण परिवेश मे पले थे। इसलिए उनके उपन्यासों में आँचलिकता की गहरी छाप है। 'जल-टूटता हुआ' 'सूखता हुआ तालाब' 'आकाश की छत' 'बीस बरस' आदि में स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण समाज और उसके परिवर्तन के हर बिंदु का यथार्थ चित्र अंकित हुआ है। इस अध्याय में सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, भौगौलिक और आर्थिक पहलुओं का विश्लेषण भी हुआ है।

तीसरा अध्याय है - "मिश्रजी के उपन्यासों में चिंत्रित नगर संवेदना।" जैसे सूचित किया गया रामदरश मिश्रजी मात्र ग्राम संवेदना के रचनाकार नही है नगर जीवन विशेषतः स्वातंत्र्योत्तर भारतीय नगर जीवन की घडकनें 'अपने लोग' 'दूसरा घर', और 'बिना दरवाज़े का मकान जैसे उपन्यासों में स्पंदित है। नगर के प्रवासियों का जीवन, राजनीति और जाति की मिलीभगत, भीड़ और गन्दगी जैसे अनेक मुद्दों का विश्लेषण इस अध्याय में किया गया है।

चौथा अध्याय है - "मिश्रजी के उपन्यासों के प्रगतिशील आयाम'। मिश्रजी मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित है। उन्होंने बुर्ज़ुआ व्यवस्था की अमानवीयता के साथ साथ सामंती और पूंजिवादी व्यवस्था की साजिशों को भी अपने उपन्यासों के माध्यम से अनावृत किया है। उन्होंने आम आदमी की निरूपायता, विवशता एवं सदमा के माध्यम से तत्कालीन व्यवस्था के प्रति अपनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की है। वर्तमान व्यवस्था की सड़ी हालत, आर्थिक विपन्नता, असुरक्षा, लाचारी आदि का भी मार्मिक चित्रण उनके उपन्यासों में मिलता है।

पाँचवा अध्याय है - 'मिश्रजी के उपन्यासों का संरचना पक्ष।' इसके अन्तर्गत उनके उपन्यासों के शिल्प, शैली, भाषा, कथानक, शब्द चयन आदि का बारीकी से विश्लेषण किया गया है। मिश्रजी ने अपनी एक निजि शैली का विकास किया है। उनकी शैली सरल, सहज और संप्रेषणीय है। आँचलिक शब्द, कहावत, मुहावरा, लोकगीत आदि का भी उचित उपयोग उनके उपन्यासों में हुआ है। गंभीर कथ्य को पाठकों के दिलो-दिमाग पर उतरवाने में उनकी संरचना का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

उपसंहार में मिश्रजी के उपन्यास साहित्य की नींवाधार विशिष्टताओं का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। साथ ही एक उपन्यासकार के रूप में उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता और मानवतावादी व्यक्तित्व को उभारकर प्रस्तुत करने का प्रयास भी हुआ है।

इस शोधकार्य में मेरा मार्ग निर्देशक डा. एम. षणमुखनजी रहे हैं. उनके बहुमूल्य सुझावों और सहयोग से ही मेरा यह शोध कार्य संपन्न हुआ है।

उनके विद्वतापूर्ण मार्ग निर्देशन और सहयोग केलिए मैं हार्दिक शुक्रिया अदा करता हूँ।

रामदरश मिश्रजी के प्रति भी मैं आभारी हूँ। उन्होंने पत्राचार के माध्यम से भी मेरी सहायता की है।

हिन्दी विभाग अध्यक्ष डॉ. ए. अरविन्दाक्षन के प्रति भी मैं, शुक्रगुज़ार हूँ जिन्होंने समय-समय पर मदद करके शोध कार्य को उकसाया है। विभाग की भूतपूर्व अध्यक्षा डॉ. एम. ईश्वरीजी तथा विषय विशेषज्ञ डॉ. एम. मोहननजी के प्रति भी मैं आभारी हूँ।

विभाग के अन्य गुरुजन, पुस्तकालय की अध्यक्षा तथा सहायक कोचिन विश्वविद्यालय के अधिकारी और कर्मचारी के प्रति भी मैं एहसानमन्द हूँ।

शोध प्रबन्ध को तैयार करने में हिन्दी विभाग के शोधार्थियों ने भी मदद की है, उनके प्रति भी मैं शुक्रिया अदा करता हूँ।

बिनोद बाबु. के.बी.

## पहला अध्याय

# रामदरश मिश्र का सृजनात्मक व्यक्तित्व

# पहला अध्याय

# रामदरश मिश्र का सृजनात्मक व्यक्तित्व

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य के बृहत् दायरे में रामदरश मिश्रजी ने अपनी गहरी पहचान बना ली है। उन्होंने कविता, गीत, गज़ल कहानी, उपन्यास, समीक्षा, आत्मवृत्त, शोध, यात्रावृत्त आदि अनेक विधाओं के ज़रिए अपनी व्यापक सर्जनात्मकता का परिचय दिया है। फिर भी कविता और कथा साहित्य, विशेषकर उपन्यास में उनका योगदान निश्चय ही अनन्य है। भारतीय संत्रस्त जीवन की पीडाओं से उपजी उनकी हर एक रचना जागरूक आदमी का संजीदा बयान है। इसके साथ जैसे वेदप्रकाश अमिताभ ने सूचित किया है, व्यापक जनसमुदाय की पीडा और संघर्ष का साक्षी बनते हुए उनकी जीवन आस्था को ताज़ा रखने में भी उनकी रचनाएँ सक्षम बनी हैं।

**मिश्रजी का व्यक्तित्व**

किसी भी साहित्यकार के सृजनात्मक व्यक्तित्व के रूपायन में उनके व्यक्तित्व की अहं भूमिका रहती है। रामदरश मिश्रजी के संबध में कहें तो उनकी सृजनात्मकता के विभिन्न आयाम उनके जीवन और परिवेश से ही निर्मित हुए हैं। खुद मिश्रजी ने लिखा हैं -

"मुझे जीजिविषा मिली है, जीवन के प्रति अगाध विश्वास, निष्ठा और मूल्य मिला है तो इसलिए कि कीडे मकोडों के बावजूद जीवनदायक कोई

न कोई शक्ति, कोई न कोई रस मुझे देर सबेर मिलता ही रहा है। इसलिए जीवन के प्रति आस्था खंडित करनेवाले साहित्य में मेरी आस्था जम नही पाती, और अपने लेखन में मैं जीवन आस्था को जिलाये रखने की कोशिश करता हूँ। जब कभी सोचता हूँ कि मुझे यह जीवन रस कहाँ से मिला है तो सबसे पहले मेरी दृष्टि चली जाती है अपने परिवेश पर।"[1]

वे जितने अच्छे लेखक है उतने ही अच्छे मनुष्य भी। वे उन लोगों में से नही है जो साहित्य और जीवन में अलग अलग नज़र आते है। उनमें सहजता है, आत्मीयता है, एक सच्चे सहृदय की संवेदना है। हर ज़रूरतमंद की मदद करना, भरसक सहानुभूति देना और एक अच्छे मनुष्य की तरह व्यवहार करना उनके व्यक्तित्व के वे पक्ष है जो अन्यों में खोजने पर शायद ही मिले। मिश्रजी व्यक्ति और साहित्यकार एक साथ है, एक जैसा-जो जिया वही लिखा और जिसे लिखा उसे ही जिया भी। जैसे प्रेमशंकर ने सूचित किया है "उन्होंने अहंकार को स्वयं पर नही हावी होने दिया कि सामने के व्यक्ति को 'मूरख' मानकर चले। उनके व्यवहार में जो सहजता है वही उनकी रचनाओं में भी देखी जा सकती है।"[2]

"साहित्य में अधिकतर व्यक्तित्व, व्यवहार के स्तर पर दूर के ढ़ोल की तरह सुहावने होते हैं। पास जाते ही उनके आत्ममुग्ध और अहंकारी स्वरूप से टकराकर श्रद्धा और सम्मान की मूर्ति चकनाचूर हो जाती है। इसके

---

1. रामदरश मिश्र - "जहाँ मैं खडा हूँ" - पृ. 11, 12
2. प्रेमशंकर - "रामदरश मिश्र व्यक्ति और अभिव्यक्ति" - पृ. 34

विपरीत, मिश्रजी से मिलनेवाला अभिभूत होकर लौटता है। उनकी विद्वत्ता उसे बोझ नही लगती, उनका कथाकार कवि व्यक्तित्व उसे आतंकित नही करता। वह उनके वसंत व्यक्तित्व से आत्मीयता की खुशबू और आशस्ति की उजास लेकर लौटता है।[1]

मिश्रजी की विभिन्न रुचियाँ उनके व्यक्तित्व की दीप्त वर्तिकाएँ हैं। मिश्रजी ऊँचे, गौरव वर्णी, तेजस्वी मगर सरल व्यक्ति है। रहन-सहन में सादगी उन्हें पसंद है, और वे रूढियों के घोर विरोधी है। वे प्रकृति से विनोदी हैं। दिल खोलकर और कहकहे लगाने की आदत है। बचपन से लेकर वे बहुत संवेदनशील और भावुक रहे हैं। मिश्रजी की रुचियों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष संकेत उनके साहित्य में देखा जा सकता है। उन्होंने हर पल और कण को जिया है, भोगा है और अनुभव संचित किया है। संवेदनशील और भावुक होने के कारण जीवन के बारीक से बारीक तन्तु को ग्रहण कर मानवीय मनोवृत्तियों का ताना-बना बुन दिया है। मिश्रजी के शब्दों में -

"मैं बचपन से ही बहुत भावुक रहा हूँ। भावुकता ने मुझे जहाँ जीवन का रस भी दिया है। अभावों भरे मेरे बचपन से इतना उल्लास, इतनी अकुंठ उद्‌दमता कहाँ से आयी? मुझे लगता है मेरी भावुकता ने ही दी। प्रकृति के सौन्दर्य का रस यों ग्रहण करती थी, अपने भीतर बहुत कुछ होने का अहसास यही भरती थी। यह मन में अदृश्य का एक सपना बुनती थी, मैं अपने भीतर कुछ बन जाता था।"[2]

---

1 वेदप्रकाश अमिताभ - "रामदरश मिश्र रचना समय" - पृ. 12

2. रामदरश मिश्र - "जहाँ मैं खडा हूँ" - पृ. 39

बचपन से ही मिश्रजी अन्याय और बेहूदेपन को बर्दाश्त नही कर पाते थे-वह चाहे अपने प्रति हो, चाहे समाज के प्रति। वे प्रतिकार करते हैं और नही कर पाते तो भावात्मक स्तर पर प्रतिकार दर्ज कराते हैं। बचपन से यह प्रतिकार भाव सजग रहा है। मिश्रजी के बडे भाई रामनवल मिश्र ने सूचित किया है।

"रामदरश बचपन से ही बहुत संवेदनशील रहे। जो कमज़ोर है, पीडित है उनके प्रति उनके मन में एक गहरा रागात्मक लगाव रहा है।"(1)

मिश्रजी स्वभाव से संकोची भी हैं। वे कोई कार्य हडबडी में नही करना चाहते हैं। उनके स्वभाव की एक और खास विशेषता यह है कि वे अपने नीयत और अनुभूति के विपरीत कार्य नही करते हैं। कभी भी दूसरों को रास आने की खातिर उन्होंने कोई कार्य नही किया। उनके ही शब्दों में -

"अपनी नीयत और अनुभूति के विपरीत कुछ कर गुज़रने का हौसला शायद मुझे कभी रास नही आया, जो मुझे रास नही आया वह दूसरों को रास आने की खातिर कर गुज़रूँ, ऐसी जवांमर्दी का कायल मैं कभी नही हो सकता"(2)

मिश्रजी का बाह्य जीवन जितना सीधा सादा है उतना ही उनका मन निर्मल एवं पवित्र है। मन में कोई ग्रन्थि नही, कोई अहमन्यता का भाव नही, वे दूसरों से बडी हार्दिकता के साथ मिलते है। किसी की अच्छी

---

1. वेदप्रकाश अमिताभ - "रामदरश मिश्र रचना समय" - पृ. 90
2. रामदरश मिश्र - "जहाँ मैं खडा हूँ" - पृ. 39

साहित्यिक रचना की भूरि-भूरि पशंसा करते है। युवकों को तो वे अनेक प्रकार से प्रोत्साहन देते है। उनके स्वभाव में उदार भावना के साथ शील और सहृदयता का सामंजस्य है। वे पत्रों का उत्तर देकर दूसरों की भावना का सम्मान करना जानते हैं और उस विषय में वे उनके आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदीजी का अनुसरण करते है। वे सारी व्यस्तता के बावजूद पत्रों का उत्तर देते है, वह भी हार्दिकता के साथ। 'स्व' की अपेक्षा दूसरों की प्रशंसा करना या सुनना वे अधिक पसंद करते है। मिश्रजी का एक शिष्या जगन सिंह ने लिखा है -

"डॉ. मिश्र अपने शिष्यों के लेखन में रुचि लेते थे और अवश्यकता पडने पर व्यावहारिक सुझाव भी देते थे। ज़ोर-शोर से प्रशंसा करने की उनकी आदत कभी नही रही। उन दिनों मैं कविताएँ लिखती थी। मेरी कई कविताएँ उन्होंने पढी थीं और सुझाव भी दिये थे। आज भी डॉ. मिश्र अच्छी रचना की प्रशंसा अवश्य करते है पर यदि रचना उनके किसी शिष्य अथवा शिष्या की हुई तब क्या कहने! कई बार उसे पढ़ते है और भावुक हो आते है।"[1]

रामदरश मिश्र के अनन्य व्यक्तित्व का करिश्मा ही है कि उन्होंने कभी अपनी किसी कृति का लोकार्पण नही कराया। उनकी कृतियाँ लोकार्पण की बैसाखी के बिना ही अपने पाठक तक पहुँचती हैं और अपनी बात बेखटके ज़ाहिर करती है। उनकी किसी कृति पर न त्रैलोक्य विकंपनकारी धमाका होता है, न मुकदमा चलता है, न करोडों की रायलटी मिलती है। समय समय पर अनेक संस्थान उन्हें सम्मानित, पुरस्कृत करते रहे। अनेक बार विदेशों से

---

1. जगन सिंह - "रामदरश मिश्र - व्यक्ति और अभिव्यक्ति" - पृ. 77

सम्मान जनक आमंत्रण मिलते रहे, मिश्रजी जाते रहे। ये सब धीर-धीरे होता रहा। यह 'धीरे धीरे' भारतीय जीवन पद्धति का सूत्र है। यह आज की 'हड़बडी' और 'आपाधापी' के आक्रमण के विरुद्ध सबसे बडा सुरक्षा कवच है। एक एक कदम सम्हालकर उठानेवाला अलंघ्य ऊँचाइयों को आराम से परास्त कर लेता है। दाएँ-बाएँ दोनें ओर संतुलन बनाए रखना, 'गलाकाट स्पर्द्धा' की धूर्तता के सहारे हड़बडी में सब कुछ पा लेनेवालों पर मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए, चुपचाप अपना काम करते जाना मिश्रजी की सहज विशेषता है। मिश्रजी को साहित्य रचना केलिए न तो पाँचातारा होटलों की ज़रूरत रहती है, न शराब की, न इधर उधर मुँह मारने की। मिश्रजी के अनुसार उनकी और उनके लेखन की कथा में खास कोई फरक नही है। "तब कुत्ता पाला था, अब सपने पालता हूँ, अपने लिए, समाज केलिए, देश केलिए, वे छीन लिये जाते है, छीनकर किसी ओर को दे दिये जाते हैं, या तोड़ दिये जाते हैं, अपनों द्वारा भी और दूसरों द्वारा भी। और एक यातना, एक आक्रोश लिये हुए मैं तड़पता हूँ। मन ही मन कोंचता हूँ अपने को भी और छीननेवालों को भी। यही मेरी जीवन कथा है और यही कथा है मेरे लेखन की भी।"[1]

मिश्रजी एक सहृदय, भावुक कर्तव्यनिष्ठ पति,पिता, अध्यापक सुनागरिक और विश्वसनीय मित्र है। अपनी सीमा और शक्ति के अनुरूप दूसरों की सहायता और सहयोग करना उन्हें पसंद है। लेखक होने के नाते अनैतिक होने की खुली अनुमति वे नही चाहते हैं। वे लेखक इसलिए नही है कि

---

1. रामदरश मिश्र - "जहाँ मैं खडा हूँ" - पृ. 11

अनैतिकता के नये मानदंड स्थापित करें। उनका लेखन मानव जीवन को बेहतर बनाने केलिए है किन्तु इस केलिए उन्मत्त सांड सा स्वैच्छाचारी जीवन उन्हें पसंद नहीं।

रामदरशजी बहुमुखी सर्जनकार है, परन्तु सबसे पहले वे उदात्त उदार, स्नेहशील, सहज, सुहृत व्यक्ति है। इसके साथ ही समय पडने पर उनका स्वाभिमानी अक्खड़ और जुझारु स्वभाव भी ज़ाहिर हो जाता है। वे विरोधों से समझौता नही कर पाते परन्तु इसके साथ यह भी सत्य है कि उनके मित्रों की संख्या मोटे रूप में 'असंख्य' कही जा सकती है और अपने मित्रों से वे संपूर्ण मुक्त मन से मिलते हैं। वे अपने मित्रों को सहज बटोर कर रहते हैं। मैत्री के संदर्भ में पद और उनकी साहित्यिक गरिमा कहीं आडे नही आती। उनके मित्र जगन सिंह के अनुसार -

"होली से कई दिन पहले से उनके मन में अबीर उड़ने लगता है - हरा, लाल, पीला, गहरा गुलाबी कई रंगों का शेड्स। होली के दिन वह अपनी विशाल मित्र मंडली के साथ मेरे घर आते थे। तब हम सब माडल टाउन में रहते थे। हमारे बरामदे में रंगों से भरे बल्टियाँ रखी रहती थीं। उनके आने पर होली शुरु होती थी। भीग जाने के बाद सब लान में बैठकर धूप सेंकते थे। गुझिया, मिठाई और चाय का दौर चलता था। डॉ. मिश्र के मित्रों में वयोवृद्ध भी थे, युवा भी।"[1]

---

1. जगन सिंह - "रामदरश मिश्र व्यक्ति और अभिव्यक्ति" - पृ. 79

आधुनिक अर्थ में मिश्रजी शिविर मुक्त, या खेमा-बाहर, स्वतंत्र साहित्यकार है, जो है वह एक मुक्त सुहृत मंडल है। राजनीति, साहित्य की राजनीति, स्वार्थ या किसी प्रतिबद्धता का सूत्र इसमें नही होता है। मिश्रजी दलीय राजनीति के रिश्तों को मान्यता नही देते है। प्रतिबद्धता की बात उन्हें रास नहीं आती। रचना को वादों में बाँटकर देखने की दृष्टि के वे कायल नहीं, लेखक संगठनों भी उन्हें रुचि नही है और उन्हें वे साहित्य की राजनीति का अखाडा मानते है।

उन्होंने कभी भी किसी गुट या खेमे से जुडकर अपनी पहचान बनाने की कोशिश नही की। दायें-बायें दोनों बाजुओं से उनकी समान दूरी और समान निकटता रही है। लेकिन दूरी और निकटता के पीछे कोई चलाकी छिपी हुई नहीं, जैसा कि बहुत से साहित्यकार में यह लक्षित होती है। जिनको दोनों खेमों से इनाम इकराम के साथ चर्चा में रहने का फायदा मिलता रहता है। रामदरशजी के स्वभाव में इस तरह की चलाकियों केलिए कभी कोई जगह नही रही। वे दरअसल साहित्यकार को विभिन्न खेमों में वर्गीकृत करके देखने के कायल कभी नहीं रहे। मिश्रजी के हो शब्दो में - "किसी से कोई स्पर्धा नहीं थी और न आँधी की तरह आती-जाती वादों की हवाओं में बहते रहने का कभी मन ही हुआ, बस अपनी मूलभूत शक्तियों को निखारते हुए समय की चेतना के साथ हो लेने की आकांक्षा पलती रही। समय के नाम पर उठनेवाले तमाम होहल्ले से अपने को बचाये रखना और फिर भी समय की चेतना के साथ हो लेना - यह बडा कठिन संघर्ष था। यह संघर्ष मेरे लिए और कठिन इसलिए भी हो रहा था कि वादों के होहल्ले का साथ जुडे तमाम लोग चर्चा में उतराये हुए

थे (और न जाने कबसे उतराते आ रहे थे) और मैं कहीं नहीं होता था - न इस वाद में न उस वाद में। और कविता कहानी का इतिहास वादों का इतिहास बन गय था। फिर भी मैं लगातार वादों के झूठ से मन ही मन लड़ता रहा और उसकी गिरफ्त से अपने को बचाता रहा। धीरे-धीरे साहित्य का परिदृश्य वादों या जमातों के समीकरणों से भर गया और चर्चाओं पर उन्हीं का अधिकार हो गया, फिर भी इस समीकरणवाद के प्रति मेरे मन में कोई आकर्षण नही पैदा हुआ और मैं अपनी समझ और अनुभवों से लिखता गया - कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास, आलोचनाएँ, निबंध, संस्मरण, यात्रावृत्त और फिर आत्मकथा।"[1]

रामदरशजी के संघर्षरत अटूट जीवन को मज़बूत जडें उनके गाँव डुमरी की रसवन्ती ज़मीन की गहराइयों में हैं। उन्हें उसका रस सदा मिलता रहता है और स्थैर्य प्रदान करता है और वे नागरिक गमले का फूल नहीं, गाँव की ज़मीन पर तनकर खडे सक्षम-सदाबहार पेड बने रहते हैं। इसी रस की ताज़गी उनके काव्य, कथा और निबन्ध साहित्य को प्राणवान बनाती है उसकी ऊर्जा और रागात्मक सत्ता उनके सृजन को एक अनूठी मौलिक और सर्वथा नूतन पहचान देती है। राजधानी में रहकर आधुनिक जीवन जीते हुए नयेपन के आधुनिक आयामों को अपने साहित्य में उतारते हुए भी वे अपने भीतर कैसे अनाहत गाँव को सुरक्षित रखते हैं, इसका अनुभव उनके संपर्क में आनेवालों को आसानी से हो जाता है। मिश्रजी से मिलने पर ऐसा महसूस होगा कि जैसे वे बरगद का सघन छायादार परिपक्व वृक्ष है जिसने अपनी नींव की मिट्टी को बड़ी मज़बूती से पकड़ रखा है।

---

1. रामदरश मिश्र - "अभिनव प्रसंग" जनवरी-जून 2002 - पृ. 16

मिश्रजी के लेखन का भोलापन उन्हें पाठकों का प्रिय बनाता रहा है। उन्होंने कभी समूचे समाज को बदल डालने जैसी लम्बी दलीलें नहीं दी। लेकिन वे अपने कृत्य के प्रति बेहद सजग रहे हैं। मिश्रजी प्रामाणिक अनुभव को रचना की अनिवार्य शर्त मानते हैं, लेकिन उन केलिए सर्जनात्मक अनुभव कोई अमूर्त किस्म का रहस्यपूर्ण मानसिक व्यापार न होकर मानव मुक्ति केलिए चलनेवाले संघर्ष में रचनाकार की खुद की हिस्सेदारी से पाया गया जीवन विवेक है। ज़ाहिर है रचनाकार के अनुभव में समान यातनाएँ भोगनेवाले, एक बेहत्तर ज़िदगी केलिए संघर्षरत समानधर्मी लोगों का अनुभव भी शामिल रहता है। अपनी आत्म कथा "जहाँ मैं खडां हूँ" में वे लिखते हैं। "अंतरंग अनुभव के स्तर पर छोटा-सा संसार ही हमारा अपना हो पाता है और उसी संसार के सुख-दुःख की प्रतिनिधि बन जाती है। लेकिन यह भी सही है कि हम छोटे से अंतरंग संसार की सृष्टि बाहरी जगत् के साथ अपने लगाव से ही करते है, इसलिए वह निरंतर बडा होता रहता है और बदलता भी रहता है। अनुभव के आधार पर बना हुआ हमारा अपना जीवन और हमारी रचनात्मकता समृद्ध होती रहती है और बडे संसार की प्रतिनिधिकता की शाक्ति प्राप्त करती है।"[1]

मिश्रजी अपनी रचनाओं में परिस्थितियों या पात्रों का बनावटी श्रृंगार नही करते हैं। कहानी को उभारने केलिए एक पात्र 'मर्यादा पुरुषोत्तम' बने और दूसरा 'रावण' ऐसी कोई शर्त नहीं है। कहानी का केन्द्र उभारने के लालच से पात्रों का चरित्र दांव पर नही लगाते बल्कि मनुष्यगत सहज

---

1. रामदरश मिश्र - "जहाँ मैं खडा हूँ" - पृ. 12

कमज़ोरियों को स्वीकारते है। उनके उपन्यासों का पहली शर्त उनका ईमानदार होना है। समाज में जो कुछ घट रहा है उसे वैसा ही प्रस्तुत करना इन उपन्यासों की विशेषता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि आदर्शों, जीवन मूल्यों से उनकी रचनाओं का कोई सारोकार नही है। उनके पात्र कुत्सित राजनीति का भ्रष्टाचार का, गिरते जीवन मूल्यों का विरोध बराबर करते हैं, पर किसी ज़िद पर अड़ते हुए था लोहा लेते हुए नही बल्कि एकदम सहजता से, आम आदमी बनकर पाठक का ही प्रतिरूप हो बैठता है।

अपनी आत्मकथा 'जहाँ मैं खडा हूँ' में मिश्रजी अपने उस ठोस और मूर्त अनुभव संसार की बात करते हैं जो परिवार और परिवेश के साथ रचनाकार के बहुस्तरीय संबधों की नींव पर खडा है। अपने बचपन में लेखक ने इन संबधों को भावना के स्तर पर पहचाना था। इसी स्तर पर उसने जीवन-मूल्यों का बोध प्राप्त किया था - अच्छे बुरे का विवेक आर्जित किया था। वे जहाँ जन्में, जहाँ उनका बचपन बीता, जहाँ के जीवनानुभवों से उन्होंने रचनात्मक प्रेरणा ग्रहण की, वह जगह अनेक प्रकार के अभावों से ग्रस्त रहा है। और उसकी हूबहू अभिव्यक्ति रचनाओं में हुई भी है।

## मिश्रजी के सृजनात्मक व्यक्तित्व पर पारिवारिक, सामाजिक एवं ग्रामीण परिवेश का प्रभाव।

### पारिवारिक परिवेश

मिश्रजी का जन्म 15 अगस्त 1924 को गोरखपुर जिले के डुमरी गाँव के ब्राह्मण परिवार में हुआ। पिता का नाम रामचन्द्र मिश्र था तथा माँ का नाम कंवलपाती था। रामदरशजी उनकी चौथी संतान थे। मिश्रजी की बडी

बहन का नाम रजदेई था, बडे भाई का नाम रामअवध मिश्रर तथा उनसे छोटे भाई का नाम रामनवल मिश्र, मिश्रजी से छोटी बहन का नाम है कमला इस प्रकार वे पाँच भाई-बहन रहे।

मिश्रजी का घर अभाव ग्रस्त था, उनका बचपन अभावों में बीता था। पिता रामचन्द्र अपने पिता के इकलौते पुत्र थे। अच्छा खाना, घूमना-घामना, मेले करना, बाज़ार करना, रिश्तों में घूमना, बारात करना, चौताल और रामायण गाना यही उनकी दिनचर्या थी। शादी होने के बाद भी उनको ज़म्मेदारी का एहसास नहीं हुआ। वे गाने बजाने के भी बेहद शौकीन थे। वे घूमधामकर गाया-बजाया करते थे। बहुत ही अच्छे ढंग से गप्पें सुनाया करते थे, अच्छे बैठकबाज़ भी थे। उनमें ग्रामीण सुलभ सहजता थी और वे अत्यन्त भोले-भाले थे। यहाँ तक कि कोई भी उन्हें आसानी से ठग लेता था। उनकी सैलानी वृत्ति के कारण सारी ज़मीन अनुर्वर हो गयी थी और आर्थिक तंगी के कारण कुछ खेत बंधक भी रखे जा चुके थे। अपने पिता के बारे में मिश्रजी का यह विचार है - "मेरे पिताजी दुनियावादी दृष्टि से बहुत असफल व्यक्ति थे - बहुत भोले और भावुक थे। इसलिए जब कुछ कही दुःखद घटित होता था तो सोचते विचारते नही थे, सीधे उससे जुड जाते थे। चाहे कहीं आग लगी हो, चाहे बीमार हो, पिताजी सबसे पहले पहूँच जाते थे और अपने भले-बुरे का ख्याल किये बिना दर्द में शरीक हो जाते थे।"[1]

---

1. रामदरश मिश्र - "जहाँ मैं खडा हूँ" - पृ. 31

मिश्रजी की माँ का नाम कंवलपाती था। वे बहुत कर्मनिष्ठ धार्मिक और परिश्रमी थी। माँ के बारे ममें मिश्रजी लिखते है "उनमें कर्म और संगीत का अद्‌भुत संतुलन था। उन्होंने एक और कर्म, स्वाभिमान और अपने संघर्ष से घर को शक्ति दी, गौरव दिया, दूसरी ओर अपने व्यक्तित्व के आयाम द्वारा गाँव की औरतों का नेतृत्व प्राप्त किया, चाहे पूजा पाठ हो चाहे शादी-ब्याह हो, चाहे पर्व त्योहार हो, हर जगह उन्हें नेतृत्व प्राप्त था। वे बहुत अच्छा गाती थी, उन्हें सांस्कृतिक अनुष्ठानों के विविध विधानों का ज्ञान था, लोक-कथाओं की ज्ञाता थीं।"[1]

मिश्रजी के व्यक्तित्व में ऐसे सीधे, सरल और ग्रामीण माता-पिता का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगत होता है। मिश्रजी के बडे भाई का नाम रामअवध मिश्र था, जो घर की गरीबी के अभिशाप से अंत तक संघर्ष करता रहा। बहुत अच्छे विद्‌यार्थी होने पर भी मिडिल पास करने के बाद नौकरी की तलाश में जाना पडा। अपने परिश्रम के बलबूते पर घर को गरीबी से मुक्त किया। वे बहुत सादे स्वभाव के थे। उन्होंने अपने भाई-बहनों पर कडे नियंत्रण रखा। नियंत्रण इसलिए रखा कि कहीं ये भी पिता की तरह शान शौकत, गाने बजाने के शिकार न बन जाएँ। इस बडे भाई का प्रभाव मिश्रजी के बाल मन पर अत्यधिक पडा। मिश्रजी के शब्दों में - "मझले भाई (रामनवल मिश्र) ज़्यादा रंगीन तबीयत के थे और लापरवाह भी, इसलिए भैया के कोपभाजन् ज़्यादा बनते थे। मैं छोटा था, पढने में भी उनसे तेज़ था उनसे अधिक संतुलित और संयत था और शौक-श्रृंगार में मेरी रुचि नही थी इसलिए भैया शुरू से ही मुझे बहुत मानते थे।"[2]

---

1. रामदरश मिश्र - "कितने बजे है' - पृ. 20
2. रामदरश मिश्र - "कितने बजे है' - पृ. 21

मिश्रजी को अपने बडे भाई के प्रति गहरा लगाव है। उनके त्यागपूर्ण जीवन से उन्होंने बहुत कुछ ग्रहण किया, संघर्ष और सृजन की प्रेरणा प्राप्त की। मिश्रजी को भाई से असीम प्यार मिला उसी प्यार ने उन्हे उच्च शिक्षा दिलायी और जीवन के उच्चतम लक्ष्य की ओर बढने केलिए प्रेरित किया। आश्चर्य की बात यह रही कि उनके भाई साहब यद्यपि स्वयं रसिक प्रवृत्ति के नही थे, फिर भी उन्होंने मिश्रजी के कवि मन को बहुत प्रोत्साहित किया। उन्हें हर सुविधा दी ताकि उनका कवि मन किसी भी तरह कुंठित न हो। भाई साहब को उनके कवि होने का बहुत गौरव था। यों कहा जा सकता है कि यदि कवि कथाकार के संस्कार मिश्रजी ने माँ और पिता से प्राप्त किये तो उन्हें विकसित करने का प्रोत्साहन भाई साहब से हासिल किया।

बचपन में मिश्रजी के दिल को हिलानेवाली एक घटना थी, उनकी बडी बहन रजदई की मौत। ससुरालवालों के अत्याचारों से बीमार होकर अंत में अपने माइके आकर उसने दम तोडा था।

दायित्वविहीन पिता, मेहनती भाई, कर्मनिष्ठ माता, पीडित बहन मिश्रजी के परिवार के इन सब चरित्रों की छवि और प्रभाव उनके सृजनात्मक पात्रों पर स्पष्टतः पडा है।

**ग्रामीण परिवेश**

मिश्रजी ने अपनी आत्मकथा 'जहाँ मैं खडा हूँ' में लिखा है - "मेरा गाँव न जाने कितने स्तरों पर मुझमें है, न जाने कितने स्तरों पर उसने मेरा निर्माण किया है, न जाने उसके वर्तमान और अतीत की कितनी जीवन धाराएँ

मुझमें जाने अनजाने अपना वेग और प्रभाव छोडती गयी है। न जाने उसके जीवन के बीहड़ जंगल में जीवंत चरित्र के कितने पेड खडे थे जो मेरे अनुभवों में और मेरे रचना-जगत् में समाते गए हैं।"[1]

मिश्रजी के साहित्य सृजन में इस ग्रामीण परिवेश का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनकी अभावमय घरेलु स्थिति का भी कम श्रेय नही है। भले ही पारिवारिक माहौल अभावग्रस्त रहा हो, किन्तु उन अभावों ने जो मूल्यवान् मानवीय अनुभव दिए, वे संपन्नता से शायद ही मिल पाते। उन अभावों ने अपने ज़ारिए अपने परिवेश और अपने देश के तमाम अभावग्रस्त लोगों की वेदना, अभिशाप और यातना से मिश्रजी ने अपने साहित्य को जोडा। फलस्वरूप वे मौसमों, रास्ते-पगडंडियों तथा प्राकृतिक माहौल की गंध रूप और स्पर्श को जीवन्त रूप में बिंबित कर सके।

जैसे कहा जा चुका है, मिश्रजी जहाँ जन्मे, जहाँ उनका बचपन बीता, जहाँ के जीवनानुभवों से उन्होंने रचनात्मक प्रेरणा ग्रहण की, वह जगह अनेक प्रकार के अभावों से ग्रस्त रहा है। कछार का एक छोटा सा गाँव 'डुमरी बीहड' उसके एक ओर राप्ति और दूसरी ओर गोर्रा नदी। अभाव के कीडे, मकोडे के दंश में तडपते कछार के जीवन में कहीं बहुत बडी जीवनी शक्ति थी, रस का कोई भीतरी अक्षम स्रोत था, जिससे वह जीवन टूटकर भी नही टूटता था, रिसकर भी नही रीतता था। बाढ हर साल आती थी, हर साल लोग उसी उत्साह से खेत बोते थे कर्ज लेकर। उसी उत्साह से, राप्ती से निकलनेवाला

---

1. रामदरश मिश्र - "जहाँ मैं खडा हूँ' - पृ. 87

भगडा नाला उफनकर बाँध तोडता था और गाँव के पास फैलता हुआ उसे चारों ओर से घेर लेता था। उधर गोर्रा नदी से आनेवाले नाले गाँव के दूर वाले खेतों को निगल लेते थे। एक समुद्र फैल जाता था। फसलें, देखते देखते डूब जाती थी, लेकिन लोग पानी को चीर-चीरकर नाले पर से फसलें काट-काटकर लाते थे। अपने लिए और पशुओं केलिए।

अपने गाँव के बारे में मिश्रजी ने लिखा है - 'मैं जिस गाँव और घर में पैदा हुआ, वह बहुत ही अभावग्रस्त रहा है। दो नदियों (राप्ती और गोर्रा) के बीच मीलों फैला हुआ अपना डुमरी गाँव ब्राह्मणों का गाँव है, जिसमें बीस-पच्चीस घर हरिजनों के हैं, दो चार घर यादवों के हैं, दो चार घर गडरियों के हैं, एक घर नाई का, एक घर धोबी का और एक घर कहार का है, दो तीन घर भूमिहारों के भी हैं। कई जातियों की विविध वर्णों, छवियों का मेल इस गाँव में देखते ही बनता था। यद्यपि सामंती व्यवस्था का अभिशाप यहाँ भी था, फिर भी मानवीय संबन्धों की एक लय बराबर अनुभव की जा सकती थी और यह त्योहारों पर्वों पर अधिक सघन हो जाती थी। सामंती अभिशाप के साथ उस लय की अनुभूति भी मेरे भीतर उतरती रही है।"[1]

मिश्रजी का पूरा गाँव गरीब रहा था, दो चार चलाक लोग दूसरों को कर्ज दे-देकर रेहन के रूप में प्राप्त उनके खेतों से कुछ संपन्न बने हुए थे। संपन्न इतने कि ठीक खा-पी सकें, अच्छा पहन सकें, अच्छी तरह से खेतीबारी कर सकें। बाकी घरों में तो अभाव ही लोटता था। न दोनों जून खाने को

---

1. रामदरश मिश्र - "संचेतना" पूर्णांक 149 सितंबर 1999

मिलता था, न साबुत पहनने को। त्योहारों को भी बहुत कठिनाई से कुछ अच्छा खाना-पहनना हो पाता था। बैलों और बीज के संकट के कारण समय पर खेतों की बुवाई भी नहीं हो पाती थी। जब कभी गाँव में कुर्क अमीन आता था, आतंक मच जाता था। कहाँ से कोई लगान दे? सरकारी सिपाही उनके बैलों को हांक कर कांजी हाऊस ले जाने लगते थे और सबसे बडी शत्रु थी बाढ़ जो हर वर्ष आती थी। उनकी फसलें निगल जाती थी और छोड जाती थी उपवास, उदासी और बीमारी। लेकिन उसने एक ओर चीज़ दी थी, वह है जिजीविषा सतत संघर्ष क्षमता, अभाव में हँसने-गाने पर्व त्योहार मनाने का उल्लास, सामूहिक जीवन-लय और न जाने क्या? क्या? बाढ़ हर साल ताज़ा मिट्टी छोड जाती थी। जिस पर उगती थी सघन हरियाली, जो जाडे में कोसों तरंगित होती थी और हारी थकी आखों में रंग-बिरंगे सपने जगाती थी। और देखते देखते वसंत आ जाता था। मैं अपने गाँव के अनेक बच्चों की तरह और उनके साथ इसी कछार-परिवेश में पला-पुसा बडा हुआ, लिखाई-पढाई की, सोया जाग, रोया-गाया, खेला-कूदा। प्राकृतिक और सामाजिक जीवन छवियों के बिंब अपने अनुभव में उतारता और धीरे धीरे वह गँवई सामाजिक दृष्टि पाई जो शहर के अंधेरे में भी रोशनी की तरह मेरे साथ रही।[1]

मिश्रजी की गाँव पर आधारित रचनाएँ अधिक प्रामाणिक है। लेकिन दूर बैठा हुआ भी जिस पर लिख रहे है उसका उन्हें अनुभव है और वह प्रामाणिक भी है। किन्तु ऐसा भी नही कि मिश्रजी ने गाँव पर ही लिखा हो।

---

1. रामदरश मिश्र - "संचेतना" पूर्णक 149 सितंबर 1999

उन्होंने नगरों पर भी लिखा है, कहानी और उपन्यास भी। फिर भी वे जानते है कि हर आदमी की अपनी एक ज़मीन होती है, जो बचपन में बनती है। आरंभिक जीवन के बीस-तीस साल जहाँ बीते हो उसका प्रभाव बहुत गहरा होता है क्योंकि उस आदमी की सारी संवेदनाएँ वही से जुडी होती है। एक तो वह समय बचपन का होता है, व्यक्ति खुलकर चीज़ों से अपने को जोडता है, जबकि बडा होकर अपने को समेटता है।

**पात्रों के चित्रण में परिवेश का प्रभाव**

मिश्रजी प्रामाणिक अनुभव को रचना की अनिवार्य शर्त मानते हैं। इसलिए उनके उपन्यासों का गाँव उनका अपना गाँव ही है। (गोरखपुर जिले का डुमरी गाँव) 'पानी के प्राचीर' 'जल टूटता हुआ' 'रूखता हुआ तालाब' 'आकाश की छत' 'अपने लोग' के अनेक पात्रों की छवियाँ उनकी आत्मकथा 'जहाँ मैं खडा हूँ' के व्यक्ति चरित्रों में मिल जायेंगी। लेकिन इन उपन्यासों के पात्र न इतने असमर्थ है, और न अपनी वर्तमान दुर्दशा के प्रति इतने उदासीन ही। वे एक बेहतर जीवन केलिए संघर्ष करते हैं और उस संघर्ष को निर्णायक परिणितियों तक ले जाते हैं। मिश्रजी के सर्जनात्मक साहित्य का यह आस्थावादी स्वर जीवन के सीधे साक्षात्कार और मानव प्रगति के ऐतिहासिक विकास की समझदारी से उद्‌भूत है। मगर 'जहाँ मैं खडा हूँ' का कोई व्यक्ति चरित्र अपनी विषम - स्थिति के सामाजिक आर्थिक कारणों को नही जानता, इसीलिए किसी संघर्ष का सूत्रपात भी नही होता। लेकिन अपने अस्तित्व की रक्षा केलिए कछार के लोग जो संघर्ष करते है वह अत्यधिक मर्मस्पर्शी और प्रेरक है। मिश्रजी ने अनुभव और विचार के स्तर पर उस जीवन चेतना को शब्द-बद्ध किया है।

आत्मकथा के ज़मीदार 'बच्चा बाबु' का नौकर मोहन अपने मालिक के जूते खाकर चुप हो जाता है लेकिन उपन्यास 'जल टूटता हुआ' का जगपतिया जोकि मोहन का प्रतिरूप है, पर वह ज़मींदार महीपसिंह की मार खाकर चुप नही बैठा रहता। वह नौकरी छोडकर चला जाता है। वर्षों बाद वह शहर से गाँव लौट आता है, एक नयी चेतना और नये आत्मविश्वास के साथ ज़मीदार महीपसिंह से लोहा भी लेता है।

आत्मकथा का बडा भैया, बच्चा बाबु की नौकरी करते हुए उनकी अमानवीय अत्याचारों के मूकसाक्षी बनकर रह जाता है, लेकिन 'पानी के प्राचीर' का नीरु और 'जल टूटता हुआ' का सतीश अपने-अपने ढंग से गजेन्द्र सिंह और महीपसिंह का तीव्र विरोध करते हैं। वे नयी सामाजिक चेतना के प्रसार केलिए दृढ़ता और मजबूरी के साथ संघर्षरत दिखाये गये है।

जैसे सूचित किया गया कि अपने बडे भैया के प्रति मिश्रजी का गहरा लगाव था। उनके त्यागपूर्ण जीवन से ही मिश्रजी ने संघर्ष और सृजन की प्रेरणा प्राप्त की थी। बडे भाई की छवि 'पानी के प्राचीर' के नीरु में अवश्य हम देख सकते हैं। 'जल टूटता हुआ' का सतीश से होकर उस छवि का चरम विकास 'आकाश की छत' के बदरी भैया में दिखायी देता है। वहाँ उनकी छवि अधिक निर्वैयक्तिक स्तर पर संघर्ष के नये तेवर के साथ आकार ग्रहण करती है।

अपनी बडी बहन 'रजदेई' की मौत ने बचपन में मिश्रजी को हिला दिया था। दहेज के कारण पीडित अपनी बडी बहन को बार बार उन्होंने उपन्यासों में चित्रित किया है। 'पानी के प्रचार' में नीरु की बडी बहन उमा,

'जल टूटता हुआ' की 'गितवा' 'रात का सफर' की 'ऋतु' आदि के जीवन में कही न कही 'रजदेई' की यातनाओं की छाया देखी जा सकती है।

इस प्रकार देखा जाए तो रामदरश मिश्रजी की रचनाओं में खासकर उपन्यास साहित्य में उनके निजि व्यक्तित्व का और उनके पारिवारिक और ग्रामीण परिवेश का प्रभाव स्पष्ट है। उनके जीवन को साहित्यिक जीवन से अलग करना नामुमकिन है।

**शिक्षा-दीक्षा**

रामदरश मिश्रजी ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा पडोसी गाँव 'बिशनपुरा' के एक स्कूल में पूरी की थी। सन् 1938 में यहाँ से प्राइमरी और मिडिल की परीक्षा उन्होंने पास कर ली। सन् 1939 में मिश्रजी उर्दू मिडिल पास करके 'ढरसी' नामक गाँव में विशेष योग्यता की परीक्षा पास करने गये। उन्होंने उसके बाद राष्ट्रभाषा विद्यालय से 'विशारद' और 'साहित्य रत्न' की परीक्षा पास की। फिर आगे की पढाई केलिए वे बनारस गये, वहाँ के एक प्राइवट स्कूल से उन्होंने मेट्रिक पास किया। बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय से उन्होंने सन् 1948 में इंटर पास किया। इसी विश्वविद्यालय से उन्होंने बी.ए., एम.ए. तथा पी.एच.डी की उपाधियाँ भी प्राप्त की। बनारस में आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के प्रिय शिष्य बनने का सौभाग्य भी उन्हें मिला सन् 1957 में उनके मार्ग निर्देशक में 'हिन्दी आलोचना की प्रवृत्तियाँ और उनकी आधार भूमि' नामक शोध प्रबंध पर उन्होंने पी.एच.डी की डिग्री प्राप्त की। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदीजी का प्रभाव रामदरश मिश्रजी के समूचे जीवन पर पडा।

**अध्यापन वृत्ति**

अध्यापन वृत्ति से रामदरश मिश्रजी का गहरा लगाव रहा है। छात्रों केलिए प्रिय अध्यापक थे। वे शिष्यों के लेखन में रुचि लेते थे और साहित्यिक अभिरुचियों को बढावा देते थे। रामदरश मिश्रजी ने सबसे पहले सन् 1956 में 'महाराजा सयाजीराव गायकवाड' विश्वविद्यालय बडौदा में अपने अध्यापक जीवन का शुभारंभ किया था। सन् 1957 में वे वहाँ से गुजरात के अहमदाबाद के 'सेंट ज़ेवियर्स कालेज' चले गये। सन् 1958 में गुजरात विश्वविद्यालय से उनका संबन्ध हो गया और आठ वर्ष तक वे गुजरात में रहे। सन् 1964 में दिल्ली के पी.जी.डी.ए. वी कालेज आ गये और सन् 1969 में दिल्ली विश्वविद्यालय पहुँचे। वहाँ प्रोफ़ेसर के पद् से सन् 1990 में सेवानिवृत्त हुए।

**मिश्रजी का रचना संसार**

मिश्रजी ने हिन्दी साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है। कविता, गीत, गज़ल कहानी, उपन्यास निबंध, समीक्षा, आत्मवृत्त, शोध, यात्रावृत्त आदि अनेक विधाओं के माध्यम से उन्होंने हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाया है।

**कविता** - भावुक व्यक्तित्व से युक्त मिश्रजी ने कविता करते हुए ही हिन्दी साहित्य क्षेत्र में प्रवेश किया था। मिश्रजी की कविता यात्रा में संवेदनात्मक अनुभवों की खास भूमिका रही है। विचारों की भी अहमियत कम नही है लेकिन वे या तो संवेदनात्मक अनुभवों के साथ है या फिर उनसे संश्लिष्ट होकर काव्य में व्यक्त हुए हैं। लेकिन अनुभवों और विचारों की यह ज़मीन कभी

संकीर्ण नही है। सहजता, सरलता और संप्रेषणीयता उनकी कविताओं की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

मिश्रजी वस्तुजगत् का केवल तथ्यात्मक चित्रण नही करते हैं। उनका सृजनात्मक व्यक्तित्व तथ्य के साथ रागात्मक संबंध साबित करने की कोशिश करता है जिसमें गहरी आत्मीयता गुंफित रहती है। इस रागात्मक आत्मियता से उनकी कविता में जीवन मूल्यों का विकास होता गया है। मिश्रजी की कविता संक्रान्त अनुभवों से संत्रस्त हैं। अनुभवों के साथ गहरी निकटता, रचना प्रक्रिया के दौर में उन्हें गहराई से आत्मसात करना, अभिव्यक्ति के संदर्भ में अपनी विचार धारा को भी मिलाकर बृहद् रूप देना आदि एक गंभीर काव्य सर्जक से ही संभव होता है। 'पथ के गीत' 'बेरंग बेनाम चिट्ठियाँ, 'मेरे प्रिय गीत' 'रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कविताएँ' 'शब्द सेतु', 'ऐसे में जब कभी' आदि मिश्रजी के कुछ प्रमुख कविता संग्रह हैं।

मिश्रजी भारतीय परिवेश और विचारों के कवि हैं। उनके शेष संग्रह 'पक गयी है धूप' 'कंधे पर सूरज' 'दिन एक नदी बन गया' 'जुलुस कहाँ जा रहा है?' 'आग कुछ नही बोलती' और 'बारिश में भीगते बच्चे' आदि में लोक संस्कृति एवं भारतीय जीवन मूल्यों के प्रति उनके गहन आस्था परिलक्षित होती है। वे ग्राम्य संवेदना और प्रकृति परिवेश के कवि भी माने जाते है। गाँव इनकी रचनाओं में अपनी पूरी संवेदना के साथ समाया हुआ है। जैसे जगन्नाथ पेडित ने सूचित किया है - "अपनी कविता के आरंभिक चरण में मिश्रजी प्रायः वैयक्तिक है तथा छायावादी चेतना से अनुप्राणित। कवि ने अपने

अंतरंग जीवन, घर-परिवार, गाँव-समाज से जुडे अनुभवों को छिपाने का प्रयास नही किया है।"[1]

रामदरश मिश्रजी की रचनाओं का नींवाधार उनका ग्रामीण अनुभव है। अतः उनकी कविताएँ आज़ादी के बाद के गाँव का सच्चा चित्र अंकित करती हैं। उनकी कविताओं में आज़ादी के बाद का गाँव बार-बार उभर आता है। उनका जिया हुआ परिवेश गाँव होने पर भी नगर-महानगरों पर केन्द्रित कविताएँ भी अपना अलग महत्व रखती है। गाँव के प्रकृति सौन्दर्य के साथ अभावों से तडपकर जीते साधारण ग्रामीणों की हालत भी उन्होंने उजागरित की है।

*"होश संभालते ही मुझे लगा कि*
*मेरे सिर पर एक गठरी है*
*खाद और गोबर की गठरी*
*फिर किताबों की एक गठरी*
*फिर सीधा-किसान की एक फटी गठरी*
*और सबके बीच भूख और भय की गठरी।"[2]*

मिश्रजी की कविताओं में उनकी असीम मानवीयता ही ज़ाहिर होती है। वे मेहनतकश मज़दूरों किसानों और आम नागरिकों से अपना सरोकार स्थापित ही नही करते बल्कि उनके दुःख दर्द को अपनी लेखनी में आत्मसात

---

1. जगन्नाथ पंडित - 'अभिनव प्रसंगवश' जनवरी-जून 2002 - पृ. 51
2. रामदरश मिश्र - "कन्धे पर सूरज" - पृ. 25

भी करते हैं। कामकाजी स्त्रीयाँ, मासूम लड़कियाँ व बच्चे और विभिन्न दलित वर्गों के चरित्र उनकी कविताओं में बार बार आते हैं। मिश्रजी की कविता के संदर्भ में यह कहना बेहद ज़रूरी है कि उनकी कविता में ज़ाहिर प्रगतिशीलता किसी घोषणा जैसे जगन्नाथ पंडित के इर्दगिर्द सीमित नहीं है। जैसे जगन्नाथ पंडित सूचित करते हैं- "प्रगतिशीलता पर वर्षों से बहस चल रहा है। तथाकथित प्रगतिवादियों के अनुसार प्रगतिवादी रचना में वर्गसंघर्ष, लाल झण्डा, आदि का होना अनिवार्य है। इन फार्मूलों को हो प्रगतिशील रचना की कसौटी मान लें तो हिन्दी के अनेक बडे रचनाकार भी प्रगतिशील के दायरे से बाहर हो जाएँगे। मिश्रजी प्रगतिशीलता के इस पूर्वनिर्मित ढाँचे को तोड़ते हैं। उनका मानना है कि मार्क्सवाद को मैं ने जीवन को विश्लेषित करने की एक अंतदृष्टि के रूप में स्वीकार किया है तथा यह दृष्टि मेरी रचना में अन्तर्वाप्त है। मिश्रजी सामाजिक राजनीतिक पृष्ठभूमि को कविता में लाने के पक्ष में है किन्तु वे इस तथ्य को अतिरंजित मानते हैं कि वर्गसंघर्ष और साम्यवादी घोषणापत्र के दायरे में कविता करना ही प्रगतिशीलता है। मर्मस्पर्शिता को वे कविता की सबसे बडी पहचान और विशेषता के रूप में रेखांकित करते हैं।"[1]

मिश्रजी विषयों को एक सहज कवि की तरह उठाते है तथा उन पर अपने व्यक्तित्व का भार नहीं लादने देते। बडे से बडे तनाव और चिन्ता विषयक मुद्दों को भी वे सलीके से उठाते हैं। कविता केलिए वे हमेशा सहज व्यवहार्य भाषा की तलाश करते हैं। मिश्रजी कविताओं में कथ्य के अनुकूल

---

1 जगन्नाथ पंडित - "अभिनव प्रसंगवश" जनवरी-जून 2002 - पृ. 51

भाषा का ही प्रयोग करते हैं। भाषा की श्लिष्ट संरचना के अभाव में भी कथ्य को संप्रेषित करने का रास्ता वे निकाल लेते हैं।

**गज़ल** :- रामदरश मिश्रजी ने उर्दू विधा गज़ल को भी अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। उनका 'बाज़ार को निकले है लोग' गज़ल संग्रह 1986 में और 'हँसी ओंठ पर आँखों नम है' 1997 में प्रकाशित हुए। मिश्रजी गज़ल विधा की खूबियों के प्रति काफी सजग रहे हैं। उनकी गज़लों में भाषा और कथ्य की संप्रेषणीयता, हृदय की टीस, सांकेतिकता, चित्रोपमता विशेष रूप से पायी जाती हैं। अधिकतर गज़लें मिश्रजी के अपने मूहावरे की रचनाएँ हैं। 'डर' और 'सुरक्षा' ये दो संवेदनाएं गज़लों की बनावट में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। गज़लों में मौजूदा शोषण, उत्पीडन, अन्याय, वर्ग-विषमता, आपसी द्वेष की परिणति और प्रभाव को चीख, सन्नाटा, सहमापन दहशत आदि अनुभवों के माध्यम से व्यक्ति किया गया है।

*"रोशनी में बडा अँधेरा है*
*आज यह कौन सा सवेरा है*
*रात भर साथ हम चले जिसके*
*दिन में देखा कि वह लूटेरा है।"*[1]

*  *  *  *  *

*"घर में लगा के आग वे मंदिर में छिप गये*
*मुद्दत से चल रहा है यों उनका धरम-करम*

---

1. रामदरश मिश्र - "हँसी ओठ पर आँखें नाम है" - पृ. 30

*झुका दिया है खंजरों ने सिर खुदाओं का*

*किसी भी काम न आयी ये बन्दगी मेरी"*[1]

मिश्रजी गज़लों की भाषा को लेकर न कोई अतिवादी दृष्टि अपनायी है और न गज़ल के शिल्प को तोडने मरोडने की ज़रूरत समझी है। इन गज़लों का हिन्दी गज़ल विधा में महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान स्थितियों से जुडकर उन्होंने अपनी रचनाओं को गज़लें कही हैं। छन्दों की यात्रिकताओं की जगह कथ्य की संप्रेषणीयता को उन्होंने विशेष महत्व दिया है। इन्हीं गज़लों में उनकी पहचान बन गई है। वरिष्ठ आलोचक डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ के अनुसार मिश्रजी की गज़लों भारतीय संस्कारों और सारोकारों से भी संपन्न है और हिन्दी गज़ल की विकास यात्रा में इनकी उपस्थिति को महत्वपूर्ण पडाव के रूप में रेखांकित किया जा सकता है।

**कहानी** - हालांकि रामदरश मिश्रजी ने 50 के आसपास लिखना शुरू कर दिया था, फिर भी उनका कहानी लेखन 60 के बाद ही शुरू होता है। उनकी प्रारंभिक कहानियाँ प्रेमचन्द की परंपरा से जुडने वाली ग्रामीण परिवेश की कहानियाँ थीं, जो शिवप्रसाद सिंह, रेणु, मार्कण्डेय आदि के जीवन्त कहानी-संसार से भी जुडती थीं। यह कम महत्वपूर्ण नहीं कि जब 'नयी कहानी' से जुडे कुछ कहानीकारर मध्यवर्गीय परिवेश में सिर्फ संबन्धों के टूटने-बनने की पड़ताल कर रहे थे, मिश्रजी की प्रारंभिक कहानियों में परिवर्तन की चेतना मुखर थी।

---

1. रामदरश मिश्र - "हँसी ओठ पर आँखें नाम है" पृ. 79, 80

मिश्रजी की कहानियों में मध्यवर्ग और निम्न वर्ग की ज़िन्दगी चित्रित हुई है। गाँव का पिछडापन, गरीबी, दुर्दशा, रूढियों की जकडन, हरिजनों और औरतों पर अत्याचार एवं उनका तिरस्कार - जैसे ढेरों पहलू उनकी कहानियों के विषय रहे हैं। फिर भी कहानियों की मूल भूमि यानी मुख्य घटना स्थल गाँव ही है। कहानियों में शहर उनकी नौकरी से जुडने के कारण ही आया है। गाँव में आकर यद्यपि उन्हें आजनबीपन का भी आभास होता है, फिर भी वे बार-बार गाँव लौटते है। मिश्रजी ने लिखा है - "मेरी कहानियों में अपने परिवेश के सामाजिक जीवन का यथार्थ ही अधिक व्यक्त हुआ है। वैसे मैं अपने गाँव-जवार से बाहर निकला तो एक शहर से दूसरे शहर तक घूमता रहा और इन नगरों के परिवेश में जितना जी सका, उतना उनका चित्रण भी अपनी कहानियों में किया, किंतु लगता है मेरे भीतर सदा मेरा गाँव ही जीता रहा। यह गाँव कछार का गाँव है - दो नदियों के बीच घिरे हुए एक बहुत बडे कछार अंचल का गाँव। इस गाँव के सारे अभाव, विडंबना अवमानना, प्रकृतिक प्रकोप के आघात और जिजीविषापूर्वक उनसे मनुष्य का संघर्ष, पाखंड को मैंने देखा ही नहीं, जिया भी है। मेरे अनुभव में इस गाँव के माध्यम से सारे कछार की भयानक गरीबी, पीड़ा, सामूहिक उल्लासों के स्वर, प्रकृति के विविध रंग और गंध, तरह-तरह के अभिशप्त और उदास चेहरे, बिम्ब बनकर पडे हुए हैं। शायद इन्ही बिम्बों ने मुझे कथा साहित्य की ओर ढकेला भी।"(1)

'ज़मीन' 'माँ' 'सन्नाटा और बजता हुआ रेडियो' 'सड़क' 'खाली घर' 'बसन्त का एक दिन' 'खण्डहर की आवाज़' आदि ग्राम परिवेश पर

---

1. रामदरश मिश्र - "इकसठ कहानियाँ" - पृ. 20

रचित मिश्रजी की उल्लेखनीय कहानियाँ हैं। जिस तरह सामान्य जन की पक्षधरता मिश्रजी की कहानियों में बराबर मिलती है, उसी तरह नारी के उत्पीडन के प्रति वे बराबर क्षुब्ध और क्रुद्ध दिखायी देते हैं। इसका एक कारण यह हो सकता है कि तमाम दावों और सुधारों के बावजूद औसत नारी की स्थिति आज भी दयनीय है और वह दलित वर्ग के अन्तर्गत समाहित हो सकती है। 'बेला मर गयी' 'प्रतीक्षा' 'एक औरत एक ज़िन्दगी' 'मुक्ति' 'एक अधूरी कहानी' 'अतीत का विष' 'आखिरी चिट्ठी' 'अकेला मकान' और 'लड़की' जैसी कहानियाँ नारी से जुडे बहुत से मुद्दे, अनमेल विवाह, देह व्यापार, 'तनतोड श्रम की विवशता' 'अमानवीय अत्याचार' आदि को प्रस्तुत करती हैं।

पीडा-बोध मिश्रजी की कहानियों की मूल चेतना है। उनकी हर कहानी में किसी न किसी पात्र को हम पीडाग्रस्त पाते हैं। यह पीडा कहीं अर्थ की है, कहीं मानसिक और कहीं शारीरिक भी हो सकती है। किन्तु अधिकांश कहानियों में आर्थिक तंगी से उपजी पीडा ही चित्रित है जो पाठक को गहराई से अभिभूत कर देती है।

कवि होते हुए भी मिश्रजी ने अपना कोई विशिष्ट, निजी और अति सचेत भाषिक मुहावरा नही गढ़ा है। भाषिक संस्कार की दृष्टि से वे प्रेमचन्द के निकट हैं। जटिल से जटिल संवेदनाओं और अनुभूतियों को सर्जनात्मक अभिव्यक्ति देने में उनकी भाषा सक्षम है।

'खाली घर' (1968), 'एक वह' (1974), 'दिनचर्या' (1979), 'सर्पदंश' (1982), 'बसन्त का एक दिन' (1982), 'इकसठ कहानियाँ' (1984),

'मेरे प्रिय कहानियाँ' (1990), 'अपने लिए' (1992), 'चर्चित कहानियाँ' (1992), 'श्रेष्ठ आँचलिक कहानियाँ' (1995), 'आज का दिन भी' (1996), 'एक कहानी लगातार' (1997), 'फिर कब आएँगे' (1998), 'अकेला मकान' (1999) आदि प्रमुख कहानी संग्रह हैं।

**निबंध :-** रामदरशजी ने निबंध के क्षेत्र में भी अपनी दक्षता दिखायी है। "कितने बजे है?" (1982), 'बबूल और कैक्टस' (1997) आदि उनके ललित निबंध संग्रह है। 'कितने बजे है?" का गद्य मुख्य रूप से 'कथात्मक' किस्म का है। उसमें 'किस्से' की बुनावट के वे सभी गुण विद्यमान है जो किसी कहानी में सहज ही मिल जाते हैं। इसका शैल्पिक विधान सहसा अतीतोन्मुखी विवरणों से भरा पडा है। मिश्रजी का पहला निबंध है - 'जहाँ मैं खडा हूँ' इसमें भी कवि के व्यतीत जीवन का ही दृश्य अंकित है।

रामदरश मिश्रजी ने अत्यंत परिचित किन्तु सामान्य बातों से अपने निबंधों की शुरुआत की है। 'बबूल और कैक्टस' के प्रारंभ में फूलदान में बबूल की टहनी का ज़िक्र है। 'फागुन' में पच्चीस फरवरी की छुट्टी की सूचना ही प्रतिपाद्य विषय और विचार प्रवाह को रमणीय शुरुआत देती है। मिश्रजी के निबंधों में वैचारिक बिखराव नही है। प्रायः हर निबंध में विचारों का संयोजन सलीके से हुआ है और निबंधकार की शोषण उत्पीडन प्रदर्शन विरोधी विचारधारा एकदम मुखर होकर पाठकों को प्रभावित करती है।

**आत्मकथा** मिश्रजी का आत्मवृत्त 'सहचर है समय' (1991) 'फुरसत के दिन' (2000) आदि नामों से प्रकाशित हुआ है। 'सहयर है समय' संग्रह, 'जहाँ

मैं खडा हूँ' 'रोशनी की पगडंडियाँ' 'टूटते बनते दिन' और 'उत्तर पथ' आदि चारों खण्डों में विभक्त है। ये अलग अलग भी प्रकाशित हो चुके हैं।

'सहयर है समय' का प्रस्थान बिन्दु जीवन के प्रति गहरी आस्था है। इस आत्मवृत्त में एक ओर कछार के अंचल में बीते बचपन से लेकर वाररणसी में उच्च शिक्षा, जीविका-संघर्ष गुजरात-प्रवास, दिल्ली-आगमन, बहु आयामी रचना शीलता और दिल्ली के साहित्यिक परिवेश से जुडे मार्मिक प्रसंगों का जुलूस उमड़ पडा है, तो दूसरी ओर इसके समान्तर स्वतंत्रता पूर्व का ग्रामीण परिवेश, स्वतंत्रता और जनतांत्रिक आकांक्षाएँ, व्यवस्था के अन्तर्विरोध, अध्यापन जगत् की राजनीति, भारत-पाक युद्ध, आपात्काल, इंदिरा गाँधी का निधन, सिख विरोधी हिंसा यानी कि पचास वर्षों का जीवन इतिहास अपनी अनेक विशेषताओं और कुरूपताओं के साथ उभरा है। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के कुछ चर्चित आत्मकथाओं में 'काम संबधी सनसनी' या स्वयं 'अतिविशिष्ट' सिद्ध करने की जो प्रवृत्ति मुखर है 'सहचर है समय' में उसका अभाव है।

मिश्रजी के आत्मवृत्त में दो प्रवृत्तियाँ मुख्य रूप से विद्यमान हैं। किसी भी विसंगति को देखकर क्षुब्ध और क्रुद्ध होने की तथा, आत्म विश्लेषण की। इन दोनों प्रवृत्तियों से लेखक की संवेदनशीलता व्यक्त होती है। चाहे वह सामंती उत्पीडन हो, या डॉक्टरों की व्यावसायिक मनोवृत्ति लेखक ने अपने आक्रोश को छिपाया नही है।

मिश्रजी के आत्मवृत्त को पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका अधिकतर साहित्य विशेषकर कहानी और उपन्यास अपने संपर्क में आये चरित्रों

और स्थितियों से बुना गया है। साथ ही साथ कल्पना और वैचारिकता का योग भी नगण्य नहीं है। फिर भी पाठक को यह पहचानना कठिन नहीं है कि कौन-सी स्थिति और चरित्र वास्तविक है या नहीं। 'जहाँ मैं खडा हूँ' खंड का सुखराम 'जल टूटता हुआ' का कुंजु तिवारी बन गया है। 'टूटते-बनते दिन' खण्ड के गँवार पटेलानी की ममता और निश्छलता, मकान-मालिक जेतली के दुर्व्यवहार, गीता की मृत्यु आदि ने मिश्रजी को क्रमशः 'पडोसन' 'पराया शहर' और 'गीतू' शीर्षक कहानियों की रचना की प्रेरणा दी है। 'दूसरा घर' के डॉ. गौतम मिश्रजी स्वयं है। इसी तरह मिश्रजी के अन्य रचनाओं के स्रोत उनकी 'आत्मकथा' में हम तलाश कर सकते है।

**संस्मरण** मिश्रजी की संस्मरणात्मक रचनाओं में अधिकतर उन लोगों की स्मृति है, जो 'महक-महक' उठते हैं। इन संस्मरणों के आलंबन एक ओर आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, उमाशंकर जोशी, भवानी प्रसाद मिश्र, प्रभाकर माचवे, गिरजा कुमार माथुर, जैनेन्द्र कुमार आदि प्रख्यात साहित्यकार हैं, तो दूसरी ओर बिकाऊ पंडित, मदनेशजी, रामगोपाल शुक्ल आदि मिश्रजी के गाँव-जवार के लोग हैं जिन्होंने उनके साहित्य और जीवन को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है।

मिश्रजी ने उनके संस्मरण संकलन 'स्मृतियों के छंद' के प्रथम चार संस्मरणों में 'जलता हुआ प्रश्न' 'साहित्य का जीवन' 'युवा आचार्य का आश्रम' और 'पागल प्रतिभा' शीर्षकों के माध्यम से अपनी किशोरावस्था से लेकर बनारस अध्ययनार्थ जाने तक की अवधि में परिचित अपने शिक्षा गुरुओं को याद किया है। संस्मरणों में केन्द्रस्थ चरित्रों की दुर्बलताओं को मिश्रजी ने

शालीनतापूर्वक उद्‌घाटित किया है। बूढे मदनेशजी की मस्ती, गिरजा कुमार माथुर का साहबी मिजाज, ये सब इस प्रकार उभारे गये हैं कि सहज और स्वाभाविक लगते हैं। मिश्रजी ने कई प्रसंगों में नामोल्लेख नहीं किया है। इसके पीछे अनावश्यक चरित्र हनन से बचने का भाव है। जिस व्यक्ति के द्वारा गुजरात में उन्हें परिशानी उठानी पडी, उसके विषय में भी संकेत मात्र किया है।

मिश्रजी के संस्मरणों में उनकी काव्यात्मक शैली के प्रति रागात्मकता का परिचय मिलता है। यह शैली अत्यन्त आत्मीय और चित्रात्मक है। मार्मिक घटनाओं और उनके अनुरूप भाषा और कथन पद्धतियों के रचाव ने संस्मरणों को और निखारा है। इन में मिश्रजी के जीवन संघर्ष के संदर्भ, उनकी सारस्वत यात्रा के पडाव, उनकी आलोचना दृष्टि आदि स्पष्ट रूप से व्यक्त हए है। इनसे मिश्रजी के रचना-संसार एवं व्यक्तित्व को समझने में सहूलियत होती है। 'स्मृतियों के छन्द' (1995) और 'अपने-अपने रास्ते' (2001) मिश्रजी के संस्मरणों के संकलन हैं।

**यात्रावृत्त** - रामदरश मिश्रजी ने अपनी सर्जनात्मकता से यात्रावृत्त को भी समृद्ध किया है। उन्होंने अपनी यात्रा के अनुभवों और यादों को 'तना हुआ इन्द्रधनुष' (1989), 'भोर का सपना' (1993), 'पडोस की खुशबू' (1998), में लिपिबद्ध किया है। मिश्रजी ने नेपाल, दक्षिण कोरिया, उत्तर कोरिया, व इंग्लैड की यात्रा की है। उनके प्रकाशित यात्रा विवरण मुख्यतः इन्हीं देशों की जलवायू, खानपान, पहनावे, सामाजिक जीवन, साहित्यिक माहौल आदि का विस्तृत और आत्मीय अंकन करते हैं। 'तना हुआ इन्द्रधनुष' में उत्तर कोरिया की यात्रा का

अनुभव संचित है। इसमें चीन और रूस के नगरों 'बीजिंग' और 'मास्को' के यात्रा-अनुभव भी सम्मिलित हैं। 'भोर का सपना' में दक्षिण कोरिया की यात्रा का बयान है। 'पडोस की खुशबू' में इग्लैंड प्रवास और नेपाल यात्रा की यादें संकलित हैं।

मिश्रजी के यात्रा संस्मरणों की सबसे बडे खूबी है पठनीयता। इनमें न उबाऊ वर्णन है, न ज्ञान बघारने की शेखी, न भाषा की कसरतें। ये विदेशी धरातल के होते हुए भी अपने से लगते हैं। इामें वहाँ की सामाजिक स्थितियों, सांस्कृतिक परंपराओं, रीति-नीतियों, भौगोलिक छवियों, प्रकृति के विभिन्न रूपों, नए जीवन बोधों, चुनौतियों, प्रश्न और संबधों का संश्लिष्ट चित्रण हुआ है। मिश्रजी की तटस्थता, भावात्मकता, विनोद-प्रियता, खीझ, बोल बाज़ी सभी कुछ सहज अनुपात में है। स्थान विशेष और देश विशेष की विभिन्न स्थितियों के रूपायन में या उनके बारे में अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्ति करने में ये यात्रा संस्मरण कहीं कोई झिझक या संकोच नहीं बरतते। उन्होंने कहीं विदेशी ताकतों पर, कहीं अपने नेताओं पर, कहीं व्यवस्था की गलाजत पर, कहीं मानवीय स्थितियों पर, कहीं साहित्यिक प्रश्नों पर, कहीं अपनी भाषा की उपेक्षा पर गहरे व्यंग्य किये हैं।

**आलोचना** रामदरश मिश्रजी ने अपनी समीक्षा-दृष्टि और उससे निर्मित प्रतिमानों की अभिव्यक्ति अपनी आलोचनात्मक कृतियों में विस्तार से की है। लेकिन वे उबाऊ शास्त्रीयता से बौझिल न होकर सहज है, और उनमें सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचना का संतुलन दृष्टव्य है। मिश्रजी के प्रमुख समीक्षात्मक कृतियाँ निम्न लिखित हैं -

'हिन्दी आलोचना का इतिहास' (1960), 'साहित्य संदर्भ और मूल्य' (1961), 'ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा' (1960), 'हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा' (1968), 'आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि' (1975), 'हिन्दी समीक्षा स्वरूप और संदर्भ' (1974), 'हिन्दी कहानी अन्तरंगत पहचान' (1977), 'हिन्दी कविता आधुनिक आयाम' (1978), 'छाया का रचना-लोक' (1981) 'आधुनिक हिन्दी कविता सर्जनात्मक सन्दर्भ' (1986), 'हिन्दी गद्य साहित्य आधुनिक आयाम' (1994), 'हिन्दी गद्य साहित्य उपलब्धि की दिशाएँ' (2000).

**मिश्रजी के उपन्यास**

**1. पानी के प्राचीर**

रामदरश मिश्रजी का पहला उपन्यास है 'पानी के प्राचीर'। यह सन् 1961 में हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी द्वारा प्रकाशित हुआ। इसमें मिश्रजी ने स्वतंत्रता पूर्व पोषक और प्रतिगामी शक्तियों को बहुत स्पष्टता से चित्रांकित किया है। इसमें 'राप्ती' और 'गोर्रा' नदियों के बीच का ग्रामीण अंचल जीवन्त और समग्र रूप में है। इस उपन्यास का गाँधीवादी प्रभावापन्न किशोर पात्र नीरु अत्याचार - अनाचार का पूरी शक्ति के साथ विरोध करता चित्रित हुआ है। इसमें नीरु जहाँ ग्रामीणों की नियति भाष्य करता है, वहीं आज़ादी से जुडी उसकी आशा, जनतांत्रिक मूल्यों में विश्वास को जताती भी है। आज की बदलती स्थितियों और मोर्चों के परिप्रेक्ष्य में रामदरश मिश्रजी के इस प्रथम उपन्यास को पढना एक मर्मस्पर्शि ऐतिहासिक युगबोध के बीच से गुज़रना है।

## 2. जल टूटता हुआ

मिश्रजी के दूसरा उपन्यास 'जल टूटता हुआ' हिन्दी प्रचारक संस्थान द्वारा सन् 1969 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में यथार्थोन्मुख आदर्श है और गांधीवाद तथा समाजवाद के छोर परस्पर मिलते हुए चित्रांकित है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय जीवन में एक व्यापक ह्रास और गिरावट का दौर आता है। वह नगर-जीवन और ग्राम-जीवन को समान रूप से छूता है। ऐसा अनुभव होता है कि सरकार के सारे विकासी प्रयत्नों के बावजूद गाँव टूट रहे हैं, विकास के बाँध दरक रहे हैं। उपन्यास में यही केन्द्रीय पीडा है। इस उपन्यास में व्यक्त यथार्थ स्वतन्त्रता से जुडी आशाओं को तार-तार कर देने वाला है। लेकिन इसमें तथ्य चेतना के समानान्तर जो मूल्य चेतना है वह पाठक को हताश-निराश करने के बजाय अवमूल्यों के प्रतिवाद का बल प्रदान करती है।

## 3. सूखता हुआ लालाब

'सूखता हुआ तालाब' मिश्रजी का तीसरा उपन्यास है जो सन् 1972 में नेशनल पब्लिशिंग हाउस द्वारा प्रकाशित किया गया। इस उपन्यास में भी मिश्रजी ने ग्रामीण जीवन के यथार्थों का चित्रण किया है। इसमें गाँव के भविष्य की चिंता प्रमुख है। इसमें गाँव को तोडनेवाली ताकतें और भी मज़बूत हुई है। 'सूखता हुआ तालाब' में मिश्रजी न कोई घटन-क्रम प्रस्तुत करना चाहते है न किसी सशक्त पात्र की रचना करना उनका उद्देश्य है। इस उपन्यास में उनका उद्देश्य स्वातंत्र्योत्तर काल के गाँव का चित्र प्रस्तुत करना

है। तालाब का सूखना गाँव के पुराने आदर्श जीवन-मूल्यों का चुकना है। कीचड़ के रूप में सिर्फ कुछ पुराने अन्धविश्वास बचे हुए है। स्वातंत्र्योत्तर काल के भारतीय गाँव के संबन्ध में मिश्रजी की इस अवधारणा को व्यक्त करने पर भी अनुभव की प्रामाणिकता ओर रचनाशीलता के कारण यह उपन्यास एक महत्वपूर्ण उपन्यास बना है।

**4. अपने लोग**

'अलने लोग' का प्रकाशन सन् 1976 में नेशनल पब्लिशिंग हाउस द्वारा हुआ। इस उपन्यास में मिश्रजी ने गोरखपुर शहर को बहाना बनाकर समूचे पूर्वांचल को जीवंत रूप में चित्रित कर दिया है। इस उपन्यास में एक संवेदनशील मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी प्रमोद के कोण से अभाव और असमानता के प्रसार को चिंता की दृष्टि से देखा गया है। आधुनिकता, स्वातंत्र्योत्तर बदलाव और परिवर्तित मानसिकता के विविध जटिल सामाजिक स्तरों की पहचान 'अपने लोग' में बहुत स्पष्टता और सार्थकता के साथ उभरी है। यह उपन्यास अपने स्वरूप में राजनीतिक नही है, लेकिन सामाजिक परिवर्तन और नए मानवीय अनुभव राजनीतिक चेतना के बिना आज संभव नहीं है, उपन्यास में इसके भरपूर प्रमाण है। वह मानवीय पहचान को प्रगतिशील राजनीतिक विचारधारा से ही परिभाषित करता है।

**5. रात का सफर**

यह उपन्यास 'राधाकृष्ण प्रकाशन' द्वारा 1976 में प्रकाशित किया गया। 'रात का सफर' में पत्नी के साथ छल और अत्याचार को रवारिज किया

गया है। इस उपन्यास की नायिका ऋतु का अपने डॉक्टर पति को चाँटा मारना पुरुष के सनातन एकाधिकार को चुनौती के साथ-साथ 'सतीत्व' 'पातिव्रत' आदि मूल्यों को नये संदर्भ में देखने-परखने की शुरुआत भी है। आकार में लघु यह उपन्यास की कथा पूर्व-दीप्ति पद्धति पर कहाँ गयी है। यह उपन्यास सिर्फ नारी की व्यथा-कथा बनकर नही रह गया है। लेखक की आधुनिक और विद्रोही दृष्टि ने नारी-चरित्र का एक नया आयाक-ऊर्जा का आयाम उद्‌घाटित कर उसकी अस्मिता की रक्षा की है और उसे ताकत दी है।

## 6. आकाश की छत

'आकाश की छत' का प्रकाशन सन् 1979 में वाणी प्रकाशन द्वारा हुआ। बाढ की पृष्ठ भूमी में उपन्यास की कथा आगे बढती है। दिल्ली महानगर में आयी बाढ में इस उपन्यास का नायक यश अपने किराये के मकान की एकान्त छत पर घिरा भूख, प्यास और बुखार से पीडित, वर्तमान की विभीषिका से टकराकर अपने अतीत में लौटता है। अतीत चित्रण में गाँव का जीवन उभरता है। इसलिए उपन्यास में मूलप्रभाव गाँव का है। गाँव की कथा में एक ओर प्रमुख पात्र कामरोड जगत् का निम्नवर्ग को अन्याय, शोषण आदि के विरोध में तैयार करते दिखाया गया है।

## 7 आदिम राग

यह उपन्यास सन् 1970 में 'बीच का समय' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। बाद में संशोधित करके 1982 में वाणी प्रकाशन द्वारा 'आदिम राग' नाम से प्रकाशित किया गया। आकार में लघु इस उपन्यास में नर-नारी,

संबन्धों के रूप में विवाह, बाल-विवाह, प्रेम और विवाह, अनमेल विवाह के साथ-साथ गाँव से नगर की ओर चले जाने वाले युवकों के साथ-साथ गाँव से नगर की ओर चले जाने वाले युवकों की परिवार से जुडने-टूटने की समस्या को भी पत्नी और परिवार के सन्दर्भ में अपने दायित्व बोध का भी चित्रण किया गया है।

## 8. बिना दरवाज़े का मकान

यह उपन्यास सन् 1984 में प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुआ। आकार में लघु होने पर भी यह अत्यधिक प्रभावशाली है। इस उपन्यास की नायिका दीपा पेट की भूख, संतान की भूख, औरत की अपनी भूख के साथ-साथ सुरक्षा की भूख से एक साथ लडती दिखाई देती है। 'बिना दरवाज़े का मकान' एक प्रतीक है शहर के निम्न मध्यवर्गीय नारी के जीवन का, जहाँ कभी भी, कोई भी बिना अनुमति के प्रवेश करना का खतरा है। इस उपन्यास में दीपा के चरित्र से यह दिखाया गया है कि नारी को 'पातिव्रत' 'सतीत्व' आदि से ज़्यादा 'श्रम की शक्ति' में विश्वास रखना चाहिए। यह नारी-मुक्ति की दिशा नारी के आर्थिक स्वावलम्बन में निहित होने का संकेत भी देता है।

## 9. दूसरा घर

यह उपन्यास वाणी प्रकाशन द्वारा सन् 1986 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में रामदरश मिश्रजी का अपना भोगा हुआ सच प्रतिबिंबित है। नगरों के प्रवासी जीवन के यथार्थ के साथ शिक्षा जगत् की कुरुपता इसमें एक अहम मुद्दा है। प्रबंध तंत्र की निरंकुशता, अध्यापकों का हर तरह का शोषण,

योग्यता पर अयोग्यता को वरीयता, चाटुकारिता के अभाव में प्राप्त अपमान आदि संदर्भ देश के किसी भी हिस्से की शिक्षा संस्थाओं की नियति हो सकती है। इस प्रकार इस उपन्यास में आर्थिक शोषण और सांप्रदायिकता से संबंद्धित बहुत से मुद्दों को नये ढंग से देखा परखा गया है।

## 10. थकी हई सुबह

इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 1994 में इन्द्र प्रस्थ प्रकाशन द्वारा हुआ। असल में यह उपन्यास, लक्ष्मी जो इस उपन्यास की नायिका है, उसके दर्द की महागाथा है जो अंधेरे से लड़ती हुई प्रातः की तरह आती तो है किन्तु जीवन यात्रा में प्राप्त अनेक कटु और अमानवीय अनुभवों के कारण उसे सुबह की ताज़गी नही वरन् थकान ही प्राप्त होती है। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से उपन्यास अत्यन्त कसा हुआ है। रामदरश मिश्र जी लोक जीवन और लोक चेतना से जुडे लेखक है अतएव उनके उपन्यासों में अनुभव की प्रामाणिकता है। वैसे वे कथ्ा कहने में पूर्णतः दक्ष है।

## 11. बीस बरस

'बीस बरस' रामदरश मिश्रजी का सन् 1996 में वाणी प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उपन्यास है। इस उपन्यास का शिल्प उनके अन्य उपन्यासों से भिन्न है। इसो रोपोतार्जात्म उपन्यास कह सकते है। बीर वर्ष के अन्तराल के बाद अपने गाँव आया दमोदर के माध्यम से उपन्यासकार नए गाँव के, बदलते हुए जीवन यथार्थों को प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास को बीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों के भारतीय गाँवों के सामाजिक यथार्थ का दस्तावेज कहा जाए तो वह उचित ही होगा।

## सम्पादित पुस्तकें

मिश्रजी के द्वारा कुछ पुस्तकों का 'संपादन' भी हुआ हैं। वे पुस्तकें हैं -

कथाकार प्रेमचन्द, हिन्दी के आँचलिक उपन्यास, कवि श्री नवीन हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष, जयवर्धन की पहचान।

## सम्मान और प्रतिष्ठा

रामदरश मिश्रजी अनेक महनीय पुरस्कारों से सम्मानित हुए है। उसकी सूची नीचे दी जा रही है -

1. नगरी प्रचारणी सभा देवरिया - 1982
2. हिन्दी अकादमी, दिल्ली से 'अकादमी सम्मान' - 1984
3. प्रगतिशील लेखक संध आगरा - 1985
4. भारतीय लेखक सँगठन - 1985
5. नगरी प्रचारिणी सभा आगरा - 1996
6. उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान से 'साहित्य भूषण सम्मान' - 1996
7 दयावती मोदी कवि शेखर सम्मान - 1998
8. शालाका सम्मान, हिन्दी अकादमी दिल्ली - 2001
9. साहित्य वाचस्पति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग - 2001

अनेक साहित्यिक संस्थाओं के नेतृत्व पर भी उनकी नियुक्ति हुई है उनमें प्रमुख है -

1 प्रधान सचिव, साहित्यिक संघ वारणसी - 1952-55

2. गुजरात विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी केन्द्र के प्रभारी प्रोफसर - 1959-64

3. अध्यक्ष, गुजरात हिन्दी प्राध्यापक परिषद् - 1960-64

4. अध्यक्ष, भारतीय लेखक संगठन - 1984-1990

5. अध्यक्ष, मीमांसा, नई दिल्ली।

**निष्कर्षतः** मिश्रजी एक बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार है। उन्होंने एकांकी और नाटक को छोडकर बाकी सभी साहित्यिक विधाओं में अपनी सृजनात्मकता का परिचय दिया है। साहित्य के क्षेत्र में खासकर वे कवि और कथाकार के रूप से अधिक जाने जाते है। उनके कृतित्व और व्यक्तित्व एक दूसरे से भिन्न नही, जुडे हुए हैं जो सच्चाई, सादगी हम उनके व्यक्तित्व में देखते हैं वे उनके कृतियों की भी विशेषताएं हैं। मिश्रजी ने हिन्दी साहित्य जगत् में इन विशेषताओं से अपनी एक पहचान ज़रूर बनायी है।

.....🕮.....

## दूसरा अध्याय

# मिश्रजी के उपन्यासों में चित्रित ग्राम संवेदना

# दूसरा अध्याय

# मिश्रजी के उपन्यासों में चित्रित ग्राम संवेदना

रामदरश मिश्र मूलतः ग्राम संवेदना के रचनाकार हैं। यही कारण है कि उनकी रचनाओं - कविता, कहानी, उपन्यास - में उस गाँव की मिट्टी की सोंधी गंध है जो भारतीय जीवन की आधारशिला है। उन्होंने स्वयं इसका उल्लेख किया है - "भारतीय जनजीवन की सही और गहरी पहचान गाँव के संदर्भ में ही हो सकती है।"[1]

भारतीय उपन्यासकार विशेषतः आंचलिक उपन्यासकार गाँव की प्रतिष्ठा केवल एक सुवर्ण रूप रस गंधमय अनुभव के नाते नही करते, वे गाँव को शहर से भागने का एक द्वीप मात्र नहीं मानते, वे देखे और भोगे हुए ग्रामीण जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करके हमारी मिथ्या धारणाओं को दूर करते हैं। मिश्रजी ऐसे ही रचनाकार हैं उन्होंने गाँव के अदम्य उत्साह, उत्सव प्रियता और उद्दाम वासनाओं का चित्रण किया हैं - साथ ही वहाँ के कटु कर्कश कठिन यथार्थ को भी प्रस्तुत किया है। उन केलिए गाँव, दूध और शहद की नदी नही हैं। वहाँ के झगडे, जातिभेद आर्थिक विषमताएँ सामाजिक अंतर्विरोध सब उन केलिए यथार्थ है। गाँव के जीवन की असलियत् हैं भूस्वामियों और पुलिस के क्रूर अत्याचारों के समक्ष सामान्य लोगों की लाचारी, हरिजनों, खेत

---

1. रामदरश मिश्र - "सरिका" अगस्त 1981 - पृ. 17

मज़दूरों व नारी की मज़बूरी भूखमरी, अकाल बाढ भी इसमें शामिल हैं। मिश्रजी केलिए ये सब भोगे हुए यथार्थ है। उन्होंने अपने गाँव के बारे इस प्रकार लिखा भी है - "केवल पगडंडियाँ, खेतों के मेड़ और बहुत हुआ तो कहीं कोई छोटी-सी कच्ची सड़क। इन्हीं पगडंडियों पर पूरा कछार गिरता पड़ता चल रहा था। अभावों से अभिशप्त अनंत टूटे-फूटे कच्चे घर थे जिनमें चुपके चुपके न जाने कितने सपने टूट-टूटकर सो जाते थे, कितने आँसु रात भर बहकर सवेरे सूख जाते थे, कितने चूल्हों की आँच कभी जागकर कई-कई दिनों तक बुझी रहती थी। शरीरों पर फटे पुराने वस्त्र झूलते रहते थे। अपने समय पर दहाडती हुई बाढ़ आती थी और खेतों को लूट ले जाती थी। उसके साथ आते थे ज़मीन्दार के कारिन्दे, कुर्क अमीन, पटवारी, थानेदार और न जाने कौन-कौन से लोग जोंक की तरह दुर्बल देहों से खून चूसने केलिए।"[1]

चाहे समकालीन कथासाहित्य में रामदरश मिश्र ने एक आंचलिक उपन्यासकार के रूप में अपनी पहचान बनायी है, फिर भी आंचलिकता उनके अनुभव और अन्वेषण की मर्यादा नही, बल्कि दिशा है। मिश्रजी के उपन्यासों में 'बीच का समय' 'रात का सफर' 'दूसरा घर' 'अपने लोग' आदि में गाँव का चित्रण नहीं है। 'आकाश की छत' में शहर और गाँव दोनों का चित्रण हुआ है। 'पानी के प्राचीर' 'जल टूटता हुआ' 'सूखता हुआ तालाब' और 'बीस बरस' में तो मुख्यतः गाँव के यथार्थ का चित्रण ही हुआ है, लेकिन जिन उपन्यासों का सीधा संबध शहरी जीवन से है, उनके मुख्य पात्र भी अनुभव और सोच के

---

1. रामदरश मिश्र - अभिनव प्रसंगवश पत्रिका - जनवरी जून 2002-लेख "मेरा आत्म संघर्ष" - पृ. 9

धरातल पर हलके या गहरे रूप में गाँव से जुडे हुए हैं। उनके अन्तर्मन में गाँव की स्मृतियाँ बार बार उभरती रहती हैं, लेकिन ये स्मृतियाँ हमेशा मधुर नहीं होती, ये गाँव के अमानवीय और क्रूर स्थितियों की भी होती हैं।

मिश्रजी की रचना प्रक्रिया में हमेशा गाँव की भूमिका रही है। उनके उपन्यासों का गाँव, पूर्वी उत्तर प्रदेश का ऐसे भू-भाग है जो नदियों से घिरा हुआ है। 'राप्ती' और 'गोर्रा' की धाराओं से घिरा यह विशाल भू-भाग के हर कण से मिश्रजी परिचित है। यही विशाल भू-भाग उनके उपन्यासों में सजीव हो उठा है। मिश्रजी ने वहाँ के जन जन के सुख-दुःख को अपनी अनुभव संवेदना से ग्रहण किया है, उसमें हाथ बंटाया है। मिश्रजी की आत्मकथा 'सहचर है समय' के गाँव और उनके उपन्यासों के गाँवों में बहुत सारी समानताएँ हैं। एक ही गाँव उनके उपन्यासों में बार-बार उभरकर पाठकों के सामने आता है चाहे वह 'पानी के प्राचीर' का पाडेंवपुर हो या 'जल टूटता हुआ' का तिवारीपुर।

मिश्रजी के उपन्यास आज़ादी के पूर्व और बाद के वर्षों के देहातों के यथार्थ को समझने की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। इस यथार्थ को लेखक ने गाँव के किसानों व मध्यवर्ग की दृष्टि से देखा है। यह दृष्टि मध्यवर्ग के ऊपरी हिस्से की यानी उच्च मध्यवर्ग की दृष्टि नहीं है। यह बिलकुल गरीब किसानों की यानी मध्यवर्ग के सबसे निचले हिस्से की भी दृष्टि नहीं है। यह तो दरअसल मध्यवर्ग के साधारण हिस्से की दृष्टि है जो बार-बार निम्न मध्यवर्ग की ओर खिसकता और संभलता नज़र आता है। यह वर्ग साधारण रूप से शिक्षित भी है। यह गाँव का सबसे व्यापक और बहु संख्यक किसान वर्ग है।

इसी वर्ग के साथ खडे होकर, इसके संस्कारों और विचारों की दृष्टि से लेखक ने परिवर्तन के प्रवाह में पडे देहाती जीवन को देखा, इन गाँवों की बदलती हुई स्थितियों, उभरती हुई नयी सामाजिक शक्तियों, उनके घात प्रतिघातों, उनके दुःख दर्दों, खुशियों और आशा आकांक्षाओं को चित्रित भी किया।

**उपन्यासों में चित्रित गाँव की भौगोलिक विशेषताएँ**

किसी अंचल को बनाने की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका भौगोलिक पृष्ठभूमि की होती है। कारण, वही उसे विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करती है तथा सामान्य सामाजिक जीवन से भिन्न करती है। भौगोलिक पृष्ठभूमि का संबध उन प्राकृतिक परिस्थितियों से होता है जिनके धेरे में समाज निवास करता है। मनुष्य अपनी अवश्यकताओं केलिए प्रकृति पर आश्रित है। इसलिए प्राकृतिक परिस्थितियों का उस समाज पर गंभीर प्रभाव पडता है। इसी के परिणामस्वरूप विभिन्न भौगोलिक परिवेश में रहनेवालों के क्रिया कलाप और जीवन पद्धति में गहरा अन्तर होता है।

मिश्रजी के उपन्यासों में चित्रित गोरखपुर जनपद का विशिष्ट गाँव अपनी अस्मिता को सुरक्षित रखने में तत्पर है। वह गाँव छोटा न होकर कई कुनबों का मिला हुआ संगठन है। गाँव की भौगोलिक स्थिति गोर्रा और राप्ती नदियों की कृपा पर फलदायी हुआ करती है। यह ग्रामीण अंचल प्रायः बाढ की चपेट में रहता है। धन-जन दोनों की विपुल हानि होती है। जैसे मिश्रजी ने खुद लिखा है - "धीरे धीरे बाढ़ खिसक गयी। धरती विधवा के

समान यहाँ से वहाँ तक उदास, सपाट और भीगी हुई पडी थी। यहाँ-वहाँ कीचड था मगर रास्ते खुल गये थे।"[1]

केवल किसानी पर टिका हुआ गाँव वर्ष भर तबाही के वृत्त में घूमा करता है। देश के स्वाधीन होने के बाद भी सरकारी योजनाएँ गोरखपुर के ग्रामीण अंचल में नहीं पहुँच सकी हैं। बरसात के दिनों में भाटपार का ग्रामीण अंचल अलग टापू ही बन जाता है। भयानक बीमारी में लोगों का कस्बे या शहर न पहुँच सकना मृत्यु का कारण तक बनता है।

लेकिन यही गाँव फागुन या अन्य मौसम में इतनी सुहावना और मन मोहक लगता है कि कोई भी कवि हृदय उसकी सुन्दरता पर कविता लिखने केलिए मजबूर हो जाता है। मिश्रजी के उपन्यासों में गाँव की प्राकृतिक सुन्दरता के अनेक दृश्य मिलते हैं, जैसे - "चाँदनी डहडहाकर खिल गयी है। फागुनी पूनों की रात है। गुलाबी ऊष्मा से सारा वातावरण मस्त हो उठा है। चाँदनी खेत - खलिहानों बाग-बगीचों, टीलों सिवानों को पार करती हुई, पता नहीं कहाँ तक चली गयी है। दूर दूर के गाँव इस चाँदनी में उडते नज़र आ रहे हैं।"[2]

मिश्रजी ने गाँव का वर्णन 'आकाश की छत' में नायक यश के यादों के माध्यम से किया है - "खेतों की बगल में राप्ती थी। वह राप्ती और खेतों के बीच से होता हुआ दूर निकल जाता था। शरद् से लेकर वसन्त तक

---

1. रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" - पृ. 9
2. वहीं - पृ. 105

के दिन उसे विशेष प्रिय थे। डीभियाँ बडी होती-होती हरी भरी फसलें बन जाती थीं। पीली-पीली सरसों, रंग-बिरंगी मटर, तितली के पंखों सी तीसी, हरे कचनार गेहूँ की बाढ़ दिगन्तों तक उमड़ पडती थी। गीत की तरह प्यारी धूप अपने पंख पसारकर उड़ती-उड़ती आती थी और उन पर बैठ जाती थी। वह राप्ती के तट पर बैठकर कभी फसलों को देखता था, कभी राप्ती को। शान्त थिरायी हुई निर्मलवाली राप्ती उसे बहुत प्यारी लगती थी। धारा के बीच बीच में उभरी हुई रेती, उस पर चिड़ियों के पैरों के निशान जल में तैरती हुई उनके उडते पंखों की परछाइयाँ, ऊँचे ऊँचे कगारों को कही से फोडकर उगा हुआ, कोई पौधा, आदि तट पर बने हुए अनेक पशुओं के खुरे चिह्न और उस पार रेती का विस्तार उस विचार में फैले हुए बबूलों के जंगल। वह उस पार कभी नही गया, जाना चाहता है, उस रेती के विस्तार में भटकना चाहता है।"[1] यों मिश्रजी के गाँव के भौगोलिक परिवेश का चित्रण तन्मयता की वजह अत्यन्त जीवंत हो उठा है।

**गाँव की सामाजिक व्यवस्था**

गाँव की सामाजिक व्यवस्था में सामंतीय मूल्यों का बोलबाल था। परंपरा से आयी जाति व्यवस्था के नियम भी सशक्त थे। अंग्रेज़ी सत्ता में शोषक बने ज़मीदार आज़ादी के बाद भी, अपना शोषण जारी रखे हुए थे। अशिक्षित ग्रामीण जनता अपने अधिकारों के प्रति सचेत नही थे। नयी पीढी के शिक्षित युवा गाँव की इस स्थिति पर चिंतित थे। वे एक बदलाव चाहते थे। सामंतीय और जनतांत्रिक मूल्यों के बीच टकराहट शुरू हुआ था।

---

1. रामदरश मिश्र - "आकाश की छत" - पृ. 26

मिश्रजी ने अपने उपन्यासों में, मानव विरोधी सामंती ज़मीदारी व्यवस्था के विरोध में मानवीय व्यवस्था को लाने का संघर्ष प्रस्तुत किया है। उन्होंने व्यवस्था बनाम् व्यवस्था का संघर्ष प्रस्तुत करके इस तथ्य को उभारा है कि कोई भी व्यवस्था हो जब तक मनुष्य का हृदय साफ़ नही होता, तब तक मानव विरोधी तत्वों का सफ़ाया नही किया जा सकता है।

स्वातंत्र्यपूर्व भारतीय ग्राम जीवन की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। ब्रिटिश सरकार और उसके समर्थक ज़मीदार कृषकों और मज़दूरों के प्रति अमानवीय ढंग से पेश आते थे। लेकिन स्वातंत्र्योत्तर युग की ग्राम्य चेतना को भारत का नया संविधान, पंचवर्षीय योजना, ज़मीदारी उन्मूलन, सामंती जीवन का विघटन, चुनाव प्रक्रिया समाजवादी जन चेतना आदि ने ज़बरदस्त प्रभावित किया। नयी पीढ़ी के शिक्षित युवा वर्ग शोषण को पहचानने लगे, उसके विरुद्ध आवाज़ उठाने केलिए भी वे तैयार हो गये, इससे ग्राम्य जीवन में नये संघर्षों का सूत्रपात हुआ। शताब्दियों से पीडित ग्रामीण जनता मुखिया एवं सरकारी अधिकारियों को ही शासन तंत्र समझती थी। लेकिन स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक चेतना, व्यस्क मताधिकार बोध आदि के कारण परिस्थितियाँ बदल रही थी। विशेषतः जब ग्रामीण श्रमिक नगर में नौकरी करके वास गाँव आया तो उसमें वर्ग-संघर्ष की भावना बलवती हो गयी।

**जाती भेद का चित्रण**

भारत की पूरी सामाजिक व्यवस्था युगों से जाति व्यवस्था पर आधारित रहा है। गाँवों में इसका रूप अधिक भीषण है। गाँव में इन्सान नही

बल्कि ब्राह्मण क्षत्रिय, कहार आदि रहते हैं। ग्रामीण बरसों से इस कठोर जाति व्यवस्था के शिकार हैं। गाँव में जाति या धर्म से अलग होकर किसी का भी अस्तित्व नही है। धर्म और जाति के नियमों के अनुकूल अगर व्यक्ति न चले तो उसका सामाजिक बहिष्कार तक होता है। लेकिन जाति व्यवस्था का सबसे अधिक शिकार हरिजन या सबसे निचली जाती के लोग हैं। जाति के नाम पर उच्च जाति के लोग उनका शोषण करते हैं साथ गरीबी से भी ये परेशान रहते हैं। जाति भेद और गरीबी का बहुत ही दिलकश चित्रण मिश्रजी ने 'जल टुटता हुआ' में किया है - "हाँ ये हैं हमारे नेताओं की कल्पना के हरिजन बालक.... बडे...बडे पेट निकाले हुए, नाक बहती हुई, हाथ में सुटुकनी और आँखों में बेहद भय कि उनकी सुअरियाँ कहीं मालिकों के खेत में न पड जाएँ। हाँ सभी बाभन उनके मालिक हैं - ये बाभन चाहे बाहर भीख ही क्यों न माँगते हो, मिलों में दरबानी, चापरासगिरी और कुलीगिरी ही क्यों न माँगते हो, लेकिन गाँव में सभी हरिजनों के मालिक है" "सरकार कहती है कि वह हरिजनों के लड़कों की मुफ़्त शिक्षा की व्यवस्था कर रही है और उनकी नौकरियों केलिए विशेष सुविधाएँ दी गयी हैं, उन केलिए अलग सीटें बना दी गयी हैं.... ठीक है, सरकार यह सब कुछ कर रही है, लेकिन जिन हरिजनों के यहाँ खाने को कुछ नही होगा, वे अपने बालकों को मंजूरी पर लायेंगे या पढ़ने भेजेंगे।"[1]

## दलित नारी

गाँव के अगर हरिजनों की स्थिति शोचनीय है तो उससे भी बद्तर हालत से दलित नारी गुज़र रही है। वह दो तरह से शोषण की शिकार

---

1. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ" - पृ. 222

बनती है। अपनी जाति और परिवार में नारी होने से वह शोषण की शिकार बनती है तो समाज में दलित नारी होने की वजह किनारे कर दी जाती है। उच्च जाति के पुरुषों केलिए वह भोग की वस्तु भी है। दलित नारी का यौन शोषण वे अपना बुनियादी हक समझते हैं। 'पानी के प्राचीर' की चमारिन् बिदिया, 'सूखता हुआ तालाब' की चेनइया, 'जल टूटता हुआ' की लवंगी जैसे पात्र इस तरह के शोषण केलिए उदाहरण हैं। 'जल टूटता हुआ' में सुन्दर दलित युवक हंसिया का यौन शोषण होता है तो अंदाज़ा कर सते हैं कि पुरुषसत्तात्मक समाज में दलित नारी की स्थिति कितनी बद्तर होगी। 'जल टूटता हुआ' में दलित युवक हंसिया के प्रति ब्राह्मण युवती पारबती के बरताव का बहुत ही स्वाभाविक चित्रण हुआ है - "हंसिया हरिजन जो सत्रह - अठारह साल का स्वस्थ सुन्दर युवक था और पारबती के यहाँ ही हलवाहा था। पारबती किसी से प्रेम नही करती थी, उसे तो शारीरिक भूक का उन्माद था, वह कहीं ठंडा होना चाहिए। हंसिया अपना ही हलवाहा था, चौबीस घंटे का और चमार होने से दबा हुआ। कही कोई बात कहेगा भी नही हलवाहा है। बाभन छोकरे तो मज़ा भी लूटेंगे और बांटते भी फिरेंगे।"[1]

लेकिन पकडे जाने पर पारबती सारा दोष, हंसिया के ऊपर लगा देती है। सारे गाँव के ब्राह्मणों का खून खौल रहा है कि चमार ने ब्राह्मण लड़की को बेइज़्जत करना चाहा, यही बात उल्टे ब्राह्मण पुरुषों द्वारा चमार युवतियों पर हो रहा हैं लेकिन गाँव केलिए वह तो एक आम बात है। अपने

---

1. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ" - पृ. 234

भाई को मार खाते देखकर हंसिया की बहन लवंगी यही सवाल उठाती है, यह कहाँ का न्याय है? - "चमार का खून, खून नहीं है? बाभन का ही खून, खून है? हमारी कोई इज़्जत नही होती क्या, बाभनों की ही इज़्जत होती है?"

लवंगी, जग्गू हरिजन की ओर घूम गई जो चुपचाप मुँह लटकाये खडा था जैसे हंसिया ने बहुत बडा गुनाह करके हरिजन मंडली की नाक कटा ही हो। वह उनसे बोली - "क्यों नेताजी, आप चुप क्यों हो? कल तक झंडा लिए घूमते रहे और वोट दिलाने केलिए लेक्चर झाडते रहे कि अब देश आज़ाद हो गया है, सभी बराबर है, सबको खेत मिलेंगे, सबकी इज्ज़त बराबर होगी और आज आपका लेक्चर आपके मुंह में चला गया है? जब चमरौटी की तमाम लड़कियों पर ये बाबा हाथ साफ़ करते है तो कोई परलय नही आती और कोई चमार बाभन की लड़की को छू दे तो परलय आ जाती है।"

"हरिजनों के नेता, मैं तुम से फरियाद करती हूँ कि वोट लेनेवाले नेताओं से जाकर कहो कि हमारा खून खून नही, हमारी इज्ज़त इज्ज़त नहीं बै तो हमारा वोट ही वोट क्यों है? ये देखो जग्गू नेता, तुम्हें याद है कि जब मुझे दलसिंगार बाबा ने पकडकर बेइज्ज़त करना चाहा था तो मैं फरियाद केलिए कहाँ-कहाँ नही रोई, लेकिन सबने मज़ाक करके टाल दिया था। और तुमने भी कहा था कि जाने दो, बाबा लोगों से कौन लगे? बाप-पूत दीनदयाल बाबा से पूछिए, कितनी बार काम करते समय मेरी बाह पकड कर घसीटा है इन्होंने और मैं भीतर भीतर रोकर चुप हो गई हूँ। यह जानकर कि मेरी कोई नही सुनेगा। और, और तो और पारबती बहिनी के बाबूजी उस बार जब होली में आये थे तो गली में मुझे पकडकर रंग लगाने के बहाने खूब बेइज्ज़त करना

चाहा था, और, और जब फरियाद की थी तो लोगों ने मज़ाक में उडा दिया था जैसे चमारों की बहु बेटियाँ इसीलिए होती है। और ये जग्गू नेता है जो कल तक चिल्लाते थे कि नया ज़माना आ रहा है, नयी जिनगी आ रही है..."[1]

'पानी के प्राचीर' में बैजनाथ जो ब्राह्मण है चमारन बिटिया से प्रेम करता है। दोनों के संबध को लेकर गाँव में बहस हो रही है। जब दोनों को दरोगा पकडता है तो गाँव के पुरुष जो चमारिन बिटिया को भोगने न मिलने की वजह, बैजनाथ से जलते हैं। सब वहाँ इक्कट्ठा हो जाते हैं। दरोगा गरजता है - "छोड क्या दें? इसी तरह अपराधियों को छोडते रहे तो हो चुकी थानेदारी। ऐसी हरामियों का तो मैं जानी दुश्मन हूँ। कहाँ यह साला बाभन जाति में जनमा और कहाँ इस हरजाई चमाइन के दलदल में पडकर पतित हो रहा है। मैं क्षत्रिय हूँ, इस तरह धर्म का नाश नही देख सकता हूँ" घोडा बढ़ाकर उसने फिर बैजु की पीठ पर दो एँड जमा दी और बिदिया की छाती पर पैर जमाकर हल्का-सा धक्का दिया।"[2] इसी उपन्यास में गाँव के मुखिया और उच्च जातवाले मिलकर फैसला करते हैं कि अगर बैजनाथ गंगा नहाने और भागवत सुनने के अलावा पूरे दो दिन गाँव को भोज दे तो उसे जाति में वापस ले लिया जायेगा। अपनी बहन केलिए बैजनाथ गाँववालों के इस फैसले को मान भी लेता है। गाँव में जाति से अलग करने का मतलब सभी तौर पर व्यक्ति या परिवार का सामाजिक बहिष्कार होना है।

गाँव में किसी का भी जाति से अलग होकर गुज़ारा करना नामुमकिन है। धर्म और जाति की पकड व्यक्ति के जीवन में उतनी गहरी होती

---

1. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ" - पृ. 235, 236
2. रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" - पृ. 44

है। गाँववालों में ऊँच नीच का भाव इतना दृढ़ है कि उच्च जाति के लोग निम्न जातिवालों के यहाँ से पानी तक नही पीते हैं। 'आकाश की छत' उपन्यास के यश और रूपमति की बातचीत इसका स्पष्ट उदाहरण है -

"मुझे प्यास लगी हैरूपमति। पानी नही पिलाओगी?

पानी मैं कैसे पिलाऊँ, बाभन के लड़के को?

क्यों बाभन का लड़का होना कोई गुनाह है, रूपमति? क्या उसे प्यास लगी हो तो पानी नही माँग सकता?

'गुनाह तुम्हारा बाभन होना नहीं है, गुनाह है एक अछूत जाति की औरत से पानी माँगना"[1]

'जल टूटता हुआ' का पात्र 'मास्टर सुग्गन' गाँववालों की थोथी धार्मिक भावनाओं के प्रति तीव्र मोह के संबध में अत्यधिक चिंतित है। गाँववालों का यह विश्वास है कि यदि परंपराओं का निर्वाह न किया जाय तो अनेक भयंकर परिणाम सामने आयेंगे। धर्म और जाति के नाम पर होते शोषण का मुख्य कारण दरअसल गाँववालों की अज्ञता ही है। इसका आधार तो शिक्षा के प्रकाश से गाँवों का दूर रहना है।

## अन्धविश्वास और कुरीतियाँ

गाँव में अन्धविश्वासों का बोलबाला है, साँप काटने पर या कोई बीमारी होने पर डॉक्टर को बुलाया नही जाता या दवा नही दी जाती। (जो

---

1. रामदरश मिश्र - "आकाश की छत" - पृ. 78

वहाँ मिलता भी नहीं) बल्कि सोखा ओझा को बुलाते है। इनको गाँववाले झाड-फूँक विशेषज्ञ मानते हैं। साँप को गाँव में लोग भूत प्रेत का रूप मानते हैं। 'जल टूटता हुआ' में इसका चित्रण किया गया है कि तिवारीपुर गाँव के वंशी की लड़की को साँप काटता है। उपचार केलिए ओझा को बुलाया जाता है।

'पानी के प्राचीर' के पाँडेपुखा गाँव का मेला अन्धविश्वासों का मेला है। काली माई के मंदिर के आगे औरतें हैं। ऐसा विश्वास है कि सभी की देह में कोई न कोई भूत है.- "पास पडोस के जर-जबार के अनेक गाँवों से लोग देवी दर्शन केलिए तथा अपना टोना-टटका भूत-परेत उतरवाने आते हैं।"[1]

इस प्रकार गाँव में अगर कोई महामारी आती है, अनेक लोगों की जान ले जाती हैं, तो भी लोगों का यही विचार है कि वह शीतला माई का क्रोध है। 'पानी के प्राचीर' में गाँव में प्लेग के फैलने का चित्रण है। सुमेश पांडे गाँववालों की मदद केलिए सबसे आगे है। उन्होंने शीतला देवी को देखा है, इसलिए उन्हें कोई बीमारी छू भी नही सकती। शीतला माई की बहनों में एक उनकी मृत पत्नी है -

"लगता था हर डगर में शीतला माई का रथ उड रहा है। ताऊन मत कहो मूर्ख! हाँ दो अक्षर पढ़ लिये तो प्लेग-प्लेग चिल्लाने लगे अरे निगोडे! यह तो सब भगवतीजी की कृपा है। जब आदमी बहुत अपेल करता है तब शीतला फूलमती अपनी सातों बहनों के साथ रथ पर सवार होकर घूमती है और बद्माशों को मारती है। जय शीतला माई की।"[2] गाँव के लोगों का

---

1. रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" - पृ. 38
2. पृ. 169

शोषण साधु महात्मा ज्योतिषियों के द्वारा भी होता है। 'सूखता हुआ तलाब' में ज्योतिषि के नेतृत्व में भूत प्रेतों को भगाने केलिए जुलूस निकाला जाता है। गाँव के लोग उसमें शामिल होकर नाचते हैं। गाँववालों का एक और अन्धविश्वास 'पेडमुडवा' के बारे में है। 'सूखता हुआ' तालाब में इसका चित्रण है कि मोतीलाल के अभाव में 'पेडमुडवा' को निकालने केलिए उसकी पत्नी सारा खर्चा उठाने केलिए तैयार होती है। गर्भ में मारे गये बच्चों की आत्मा को गाँव के लोग 'पेडमुडवा' के नाम से डरते हैं।

**शिक्षा**

ऐसी बात नहीं है कि गाँव की परंपरागत सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन बिलकुल नही होता है। शिक्षा की सुविधा गाँव में नही है तो भी मध्यवर्ग अपने पुत्रों को पढ़ने गाँव के बाहर भेजते हैं उनके द्वारा गाँव में ज्ञान का नया उजाला फैलता है। रूढियों से मुक्त होकर सोचने व आचरण केलिए शिक्षित युवक तैयार हैं। ऐसे भी युवक हैं जो शिक्षा प्राप्ति के बाद गाँव और उसकी संस्कृति की घृणा और तिरस्कार करते हैं। गाँव में किसी भी प्रकार के प्रगतिशील परिवर्तन इनका लक्ष्य नही, अपने को शहरी तौर तरीकों के अनुसार ढालकर गाँव की अशिक्षित जनता पर अपना रोष जमाना इन्हें भाता है। 'जल टूटता हुआ' में इसका चित्रण है - "गाँव के लड़के शहर में पढ़ते है, वे मेले में आते है एक अजनबी की तरह मानो वे गाँववालों से सम्मान पाने केलिए अपने को भीड़ में अलगाये खडे रहते हैं और जब गाँव के आदमी उनकी ओर सम्मान से देखकर उनके बडप्पन के बारे में बात करते हैं तो वे उपेक्षा - सी दिखाकर

उनकी बातें सुनते हैं।"[1] कुछ शिक्षित तो गाँव से अपना नाता तक तोडकर शहर में बस जाते है। इस केलिए उत्तम उदाहरण है मलिन्द और उसकी बहन संध्या। 'पानी के प्राचीर' के ये पात्र शहर जाकर वहाँ के हो जाते हैं। मलिन्द नीरु से कहता भी है - "गाँव में क्या रखा है नीरु! देखो न सखियों के नाम पर गेंदा, चमेली जैसी आवारा छोकरियाँ है। गाँव के लौंडे है जो बिंटिया चमाइन के पीछे पडे रहते हैं। गाँव के लोग चोरी करते हैं, खेत उजाडते हैं, घर फूँकते हैं, चुगली करते हैं - ऐसे गाँव में क्या रखा है? और तो दिल बहलाने केलिए कोई तरीका नहीं। किसी से बात करो तो वह दूसरों की शिकायत करता है। औरतों है तो उन्हें एक दूसरे के घर की पोल खोलने में ही मज़ा आता है।"[2]

**गाँव का पिछडापन**

गाँव से लोगों के शहर की ओर भागने के अनेक कारणों में मुख्य है गाँव का पिछडापन। शहर की जैसी सुख सुविधाएँ और कमाई के अवसर गाँव में विरल है। बाढ और गरीबी से पीडित किसान शहर जाकर कूलिगिरी तक करने केलिए मजबूर हो जाते हैं। स्वतंत्रता के साथ गाँववालों का भी अपने गाँव को लेकर अनेक सपने थे। लेकिन जल्द ही वे समझ गये कि ये सपने टूटकर बिखरने केलिए मात्र है। अंग्रेज़ी राज हो या अपने नेताओं का राज, गरीबों केलिए कोई फ़रक नही पड़ता। 'जल टूटता हुआ' का एक पात्र रामकुमार का कथन है - "हाँ आज पन्द्रह आगस्त है..... आज़ादी की वर्ष गाँठ! कोई नेता आया इस इलाके में आज तक? ये जग्गू नेता बैठे हुए है; इन्ही से

---

1. रामदरश मिश्र - "जलटूटता हुआ" - पृ. 66
2. रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" - पृ. 132

पूछा जाय क्या पाया इन्होंने? गाँधीजी कहते थे सुराज्य होगा, खेत हीनों को खेत मिलेगा, मकान हीनों को मकान मिलेगा; जिसके पास ज़रूरत से ज़्यादा खेत है, उनके खेत छिन जायेंगे, वहाँ बंजर जमीन है वहाँ हरियाली लहलहायेगी; बाढ़ में डूबी हुई धरती को वाराह की तरह सरकार ऊपर खींच लायेगी, गोर्रा-राप्ती के बीच छाती पीट-पीटकर रोती हुई अपार गरीबी के आँसु हसने लगेंगे। क्या किया सरकार ने? क्या पाया हमने? आज भी बेगारी जारी है, मज़दूरों को कम मज़दूरी मिलती है, उनके लड़के आज भी बड़ा सा पेट लिए खाने केलिए रोया करते हैं। आज भी उनके बच्चों केलिए कोई शिक्षा की व्यवस्था नही हुई, आज भी हरिजनों को ज़मीन नहीं मिली।"[1]

**आर्थिक व्यवस्था**

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे राष्ट्रनिर्माताओं ने ग्रामजीवन के उत्थान को अत्यन्त आवश्यक समझा था। इसी केलिए उन्होंने पंचवर्षीय योजनाओं का आयोजन किया, जिससे ग्रामवासियों की आर्थिक दशा में अपेक्षित सुधार आ सके, लेकिन इन योजनाओं का लाभ निम्न स्तर के गरीब जनता तक नही पहुँचा। योजनाएँ सिर्फ योजनाएँ बनकर रह गयीं। उस समय का ग्राम जीवन अनेक विशेषताओं एवं असंगतियों से ग्रस्त था। आर्थिक दृष्टि से उसकी दशा अत्यंत दयनीय थी। ज़मींदार, उनके कारिन्दे, महाजन आदि सभी उसका शोषण बडी निष्ठुरता के साथ कर रहे थे। महँगाई और बेरोज़गारी, और बढ़ती जनसंख्या तो ग्रामजीवन का ही नही, वरन् समस्त राष्ट्र की संश्लिष्ठ समस्या थी और अब भी है।

---

1. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ" - पृ. 6

खेती गाँव के लोगों की मुख्य पेशा है। कतिपयों के पास सिर्फ दो बीगे खेत है तो, कुछ लोगों के हिस्से में गाँव की अधिकतम ज़मीन जमी हुई है। खेतों में काम करनेवाले भूमिहीन हरिजन या हलवाहे है। खेती-बारी पूर्णतः प्रकृति पर आधारित है। राप्ती और गोर्रा नदियों के बीच के इस भू विभाग में इन नदियों की वजह ही अच्छी फसल होती है। कभी भीषण बाढ़ में यही नदियाँ भीषण रूप धारण कर फसल उडा भी ले जाती हैं। गरीब भूख मिटाने महाजनों के पास सब कुछ कभी अंत में खेततक गिरवी रखने की नौबत आती है - "सेठ चोंकरदास के पास बहुत से खेत है और धान की मिलें भी हैं। सोने चाँदी की दूकानें भी हैं। यानी वे ज़मीदार और व्यवसायी दोनों है। लेकिन सबसे बडा व्यवसाय है कर्ज देना। कर्ज़ देकर गाँव के गरीब लोगों से उनके जेवर लेते हैं और पिताजी बता रहे थे कि जेवर बन्धक रखकर उसका चौथाई मूल्य देते है यानी चौथाई मूल्य में खरीद लेते है। सूद के साथ मूल इतना हो जाता है कि गरीब आदमी अपने जेवर को छोड देना ही पसंद करते हैं।"[1] हलवाहों की स्थिति इससे भी बहतर है। वे लोग गरबी व भूखमरी में भीख माँगते फिरते हैं। गाँव के बुद्धवारी बाज़ार के चित्रण द्वारा 'जल टूटता हुआ' में गाँव की गरीबी का चित्रण ही हो रहा है। - "कोई चार सेई जौ खरीद रहा है, कोई दो सेर मटर ले रहा है, कोई इस फिराक में है कि उसकी पहचान का बनिया दो-एक सेई अन्न उधार दे दे। किंतु वह बनिए की झिडकी खाकर दूसरी ओर चला जाता है। क्या होगा अगर बनिए ने उधार नही दिया तो? इस बाढ़-

---

1. रामदरश मिश्र - "आकाश की छत" - पृ. 36

बूढ़ा में हफ़्ते में एक ही दिन बाज़ार लगता है, वह भी आज खाली हाथ निकलगया, तो क्या खाएँगे घर के लोग? कई दिनों के भूखे परिवार की आशा बनकर यह बुधवार आया है, भगवान यह भी जायेगा क्या? लड़के अपने पिताओं या भाइयों के पीछे चक्कर काट रहे है..... काश उन्हें कुछ खाने को मिल जाता - एक डली गुड की ही सही! किंतु यहाँ तो खाने केलिए अन्न का ठिकाना नही है, मिठाई और गुड की बात कौन करे? लड़के अपने घरों की मजबूरियाँ समझते है।'[1]

बाढ़, गरीबी, व भूखमरी से तंग आकर गाँव के लोग बाहर भी मज़दूरी करने जाते है। गरीब तो कलकत्ता जैसे शहरों के कारखानों में मज़दूर बन जाते है, कतिपय छोटे मोटे व्यापार करने में समर्थ बनते हैं। गाँव में बेकार रहने से तो यही बेहतर है। शहर में अपना पेट काटकर भी वे गाँव के अपने परिवार की हालत सुधारना चाहते हैं, कर्ज़ों से मुक्ति पाना चाहते हैं। गाँव के संपन्न और मध्यवर्ग शिक्षा पाने के कारण शहर में अफ़सर बन जाते हैं। गाँव उन केलिए छुट्टियाँ बिताने की जगह मात्र रह जाती है। कुछ लोग तो पूर्णतः शहरी सभ्यता में खुल मिल जाते हैं कि गाँव की ओर मुड़कर भी नही देखते। सिंगापुर और बरमा जैसे विदेश में भी गाँव के कुछ लोग पहुँच गये थे। उनके रुपये भेजने से उनके घरों की स्थिति ज़्यादा बेहतर है। 'जल टूटता हुआ' में दीनदयाल का परिवार इस केलिए उदाहरण है - "दीनदयाल के दो छोटे भाई बंका में नौकरी करते थे। राम जाने वहाँ क्या करते थे, मगर रुपये खूब भेजते

---

1. रामदरश मिश्र - "जलटूटता हुआ" - पृ. 18

थे। सुनने में आता था कि वे वहाँ दूध का व्यापार करते हैं, या कि बैंक में दरबानी करते है या कि उनका नाव का करोबार है या कि.... जो भी हो, इतना तो साफ़ था कि वे दोनों अनपढ़ है इसलिए जो कुछ भी करते होंगे कुछ वैसा ही करते होंगे..... और वहाँ से पैसे खूब आते थे।"[1]

लेकिन परदेश में कामकरने वाले सभी की हालत ऐसी नही है। वहाँ भी उनका भयंकर शोषण होता है। 'जल टूटता हुआ' में परदेश में कमानेवाले बंसी तिवारी की स्थिती का चित्रण यह स्पष्ट ज़ाहिर करता है - "आज़ादी के कई वर्षों बाद भी बाढ़ वैसे ही आती रही, रबी की फसल वैसे ही कमज़ोर होती रही, महँगाई दिन-दिन बढ़ती जा रही थी। किस ओर के होंगे ये बीस रुपये। बंसी साल-भर पर घर आया तो उसकी गोरी देह काली पड गयी थी, उसने कपडे निकाले तो सलोना उसे देखकर रो पडी-इतनी भरी-पुरी देह क्या हो गई? परदेस ने पूरी देह ही सोख ली है। बंसी मुश्किल से घर तक महीना रह पाया, कि घर उसे परदेश की ओर ठेलने लगा।"[2]

गाँव के हरिजनों की स्थिति तो जानवरों से भी बद्तर है। उनका गुज़ारा खेती पर आश्रित है, लेकिन उनके पास कहने केलिए एक बीधा ज़मीन तक नही, अपने मालिकों की मेहरबानी पर कही रह लेते हैं। मध्यवर्गीय ब्राह्मण परिवारों की स्थिति इस तरह है तो उनके हलवाहे हरिजनों की तो पूछों मत। अपने बच्चों को भूख से मरते देख, और मालिकों के अत्याचारों से तंग आकर कुछ तो शहरों की ओर भाग जाते है। वापस आने पर अपने वर्ग को

---

1. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ" - पृ. 222
2. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ" - पृ. 263

शोषण से मुक्ति दिलाने का प्रयास भी कतिपय करते हैं। 'जल टूटता हुआ' के जगपतिया का चरित्र इस केलिए उत्तम उदाहरण है। जगपतिया और अन्य पढे लिखे लोगों के कारण गाँव में परिवर्तन होता है गरीब हरिजन जाग उठते हैं, वे शोषण के खिलाफ खडे हो जाते हैं। 'आकाश की छत' का सेठ, मंगरू से कहता है अपने बेटे को अपनी जगह काम करने लगा दो। लेकिन मँगरु ने इनकार कर दिया। बेटा तो और भी रिसिया गया बोला कि वह पढ लिखकर हरवाही करने केलिए नही आया है - "वह बहुत बडी बडी बातें बोलता है। अपने कामरेड बाबु है न, उनके साथ उठता-बैठता है। कहता है हम करान्ती करेंगे। कामरेड बाबु भी इन सबको करान्ती का पाठ पढाते है। कहते है - तुम लोग हज़ारों साल से मुट्ठी भर खून चूसनेवाले लोगों का बोझ ढोते आ रहे हो। ये लोग तुम्हें जानवरों से भी गिरा हुआ समझते है। अब चेत जाओ, इन्हें अपना खून मत चूसने दो। एक होकर इनके जुलमों का सामना करो। एकता ही तुम्हारी ताकत है, उसी से तुम लोग जीतोगे। और उन्होंने पूरी हरिजन बस्ती की मीटिंग बुलाई और कहा कि आप लोग एक होकर लडिए। किसी पर जुलम होता हो तो उसे अपने ऊपर जुलुम समझिए और उसका सामना कीजिए।"[1]

## राजनीति का चित्रण

गाँव की राजनीति में आमूल चूल परिवर्तन हो रहा है। पंचायत राज की स्थापना सरकार द्वारा लागू हो गई है, जनता अपने मताधिकार का

---

1. रामदरश मिश्र - "आकाश की छत" - पृ. 78

उपयोग करने केलिए अति उत्सुक हैं। मगर अज्ञात के अन्धेरे से घिरी जनता यह फैसला नही कर पाती कि किसको चुने। उचित शिक्षा का अभाव, जाति-बिरादरी, पट्टीदारी जैसे पुराने मूल्यों के असर और गरीबी के कारण गाँव वाले अपने अधिकारों का इस्तेमाल नही कर पा रहे हैं।

गाँव के शोषक वर्ग बदलती राजनैतिक परिस्थितियों के अनुसार अपने शोषण को जारी रखने की योजना बना रहे हैं। ब्रिटीश सरकार के चमचे राजा, ज़मीदार, महाजन सब अब अचानक काँग्रसी बनकर देश भक्त बन गये। इसलिए कि अब शासक काँग्रेस सरकार है। 'जल टूटता हुआ' के ज़मीदार महीपसिंह का चरित्र इस तरह की कपट देश भक्ति केलिए उज्वल नमूना है। ये लोग काँग्रेस में शामिल होकर अपना धन, जाति, वर्ग आदि के ब पर सत्ता हासिल करना चाहते हैं। गाँव के साधारण जनता के नेता, जो सच्चे अर्थ के काँग्रेसी थे, महात्माजी के भक्त थे, उन्हें दूध की मक्खी की तरह राजनीति से निकाल दिया गया - "आज़ादी तो इन्हीं सब को मिली है। पिताजी बताते है कि वे भी काँग्रेसी थे और स्वाधीनता आन्दोलन में बडी तेज़ी से शरीक हुए थे। बडे बडे नेताओं के साथ उन्होंने काम किया था, घर द्वार छोडकर अलख जगाते घूमे थे। लेकिन जब आज़ादी मिली तो उन्हें किसी ने पूछा ही नहीं। बडी मुश्किल से प्राइमरी में टीयरी मिली और तभी से वे बडे सन्तोष के साथ यह कार्य कर रहे है और यह सेठ अंग्रेज़ों का पिट्ठू था किसानों का खून चूसनेवाला बडा ज़मींदार, बडा व्यापारी अब स्वदेशी सरकार का चहेता बन गया। बडे बडे नेता आते हैं, इसके यहाँ ठहरते है।"[1]

---

1. रामदरश मिश्र - "आकाश की छत" - पृ. 37

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त परंपरागत भारतीय ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण केलिए भारत सरकार द्वारा किये गये प्रयासों के अन्तर्गत ग्राम पंचायत की पुनः स्थापना एक महत्वपूर्ण चरण था। भारत की सच्ची आत्मा ग्राम पंचायत में ही है। भारत की यह पंचायत व्यवस्था सबसे पुरानी रही है। पंचायत सचमुच सत्य और असत्य, पाप और पुण्य का फैसला कर सकता है। गाँव के ही पंच होते है, वे गाँव के सारे, लोगों और परिस्थितियों से परिचित होते है वे वकीलों की बहस से नही, प्रत्यक्ष अनुभव और जाँच से फैसला करते हैं।

स्वतंत्रता के पूर्व ग्रामीण समाज में जातिगत पंचायतें थीं। प्रत्येक जाति की एक पंचायत। ब्रिटिश सरकार के द्वारा मनोनीत मुखिया होता था जो ग्रामीण कृषकों से कर वसूल करने में सरकार की सहायता करता था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ग्राम पंचायतों का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर होने लगा। प्रत्येक ग्राम के प्रत्येक नागरिक चुनाव में भाग लेने, विचार अभिव्यक्त करने एवं अपने उम्मीदवार के पक्ष में बोलने एवं प्रचार करने का अवसर प्राप्त हुआ।

'जल टूटता हूआ' में ग्राम पंचायतों के चुनाव में अपने उम्मीदवार के पक्ष में प्रचार करते हुए कार्यकर्ताओं का चित्रण हुआ है। अभियान के दौरान सतीश के प्रचार केलिए कुंज, गीत गाते हुए मस्ती के साथ प्रचार कर रहा है -

*"कि अइहो लोगवा!*

*जुग जुग बाद*

*बढिया आइल बा समइया कि अइहो लोगवा!*

*चुनइ पंचइतिया में*

*जे हो धरमी भइया कि अइहो लोगवा!"*[1]

ग्राम पंचायत चुनाव के उम्मादवार सतीश जनता की राजनीतिक चेतना को जागृत करते हुए कहता है - "आप सभी लोग जानते हैं कि पंचायत राज्य कायम होनेवाला है। यह पंचायती राज्य पिछली पंचायतों से भिन्न होगा। यह सरकारी राज्य होगा, इसमें पंचों के सरकार की ओर से मटिस्ट्रेट के अधिकार दिये जायेंगे। इसलिए जो अब तक ब्रिटिश सरकार के पिट्ठू ज़मींदार मुखिया और दलाल रहे हैं वे इस बहती गंगा में हाथ धोना चाहते हैं। वे आज देश भक्त होगये हैं। वे पंच सरपंच बनकर अपना उल्लू सीधा करने और लोगों सेबदला लेने की सोच रहे हैं। पंच बनने केलिए तरह-तरह की बुरी चालें चलाते हैं। कहीं किसी का खेत कटवा रहे हैं, कही किसी को व्यभिचार में फसा रहे हैं, कही ओर तरह से बद्नाम कर रहे हैं।"[2]

वयस्क मताधिकार के आधार पर ग्राम पंचायतों में यद्यपि क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है, परन्तु ग्राम पंचायतों को प्राप्त सरकारी सुविधाओं के अधिकांश का लाभ लगभग उन्हीं व्यक्तियों को मिलता रहा है जो स्वतंत्रता से पूर्व किसी न किसी रूप में प्रशासन से सबद्ध रखते थे। आँचलिक उपन्यासों में इस बात को बहुत ही व्यापक स्तर पर वाणी दी गयी है। अंचलों में भी परंपरागत सत्ता वर्ग ही पंचायतों में आसीन हुआ है। उन्होंने ग्राम पंचायत की

---

1. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ" - पृ. 300
2. पृ. 300-301

शक्ति एवं सुविधा को वैयक्तिक पारिवारिक एवं वर्गीय हितों केलिए इस्तेमाल किया। सब कहीं भ्रष्टाचार रिश्वतखोरी एवं सिफारिश का राज चलने लगे। 'पानी के प्राचीर' में मास्टरों की नियुक्ति के चित्रण के संदर्भ में इन बातों का खुलासा किया गया है -

"सवाल उठा मास्टरों की नियुक्ति का, सो किसनपुर के बूढे पंडित देवदास तिवारी ने जो मिडिल स्कूल की मास्टरी से अवकाश प्राप्त कर बेकार बैठे थे, अपने को इस कार्य केलिए निवेदित किया। सो सेक्रटरी की सिफारिश पर उनकी नियुक्ति हो गयी। वे आठ नव और दस को सभी विषय पढायेंगे, किन्तु इंगलिश का क्या होगा? इंगलिश केलिए किसी को बाहर से बुलाना पडेगा। सो उसके लिए भी विशेष परेशानी नही उठानी पडी। हुरदेख राय का साला बी.ए. फेल होकर बैठा था, न पढ रहा था, न नौकरी मिल पा रही थी। सो हुरदेख राय ने अपने योग्य साले से बहुत आरजू मिन्नत की अँगरेजी विषय पढ़ाने तथा हेडमास्टरी का पद् संभालने केलिए।"[1] योग्य होने पर भी, मास्टरों की लिस्ट में नीरु का नाम नही आया। जिन-जिन लोगों का सिफारिश हुआ वे सब लिस्ट में आगये।

"नीरु भइया, मास्टरों की लिस्ट में तुम्हारा नाम तो नही है।" नीरु के दिल पर जैसे एक वज्र टूट गया। वह उदास सा गुमसुम बैठ गया। रमेश ने कहा - "अरे भाई, कैसा अन्याय है कि बहुत से थर्ड क्लासी लोग लिए गए और फर्स्ट क्लास को नही लिया गया।"

---

1. रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" - पृ. 88

अब नीरु को मलिन्द की बात का महत्व जान पडा - "किसी से सिफारिश ले गये थे कि नही?"[1] फिर धीरे धीरे ग्रामीण जनता के सुशिक्षित वर्ग प्रशासन के भ्रष्टाचारी सेवकों का विरोध करने लगा। इससे एक हद् तक सरकारी सेवक गण उनसे सावधान रहने लगे। मगर वैयक्तिक स्वार्थ एवं हित सिद्ध केलिए यह सुशिक्षित वर्ग भी अधिक निपुणता के साथ भ्रष्टाचार में शरीक होने लगा।

स्वतंत्रता के बाद सरकार द्वारा अनेक योजनाएँ बनायी गयीं, लेकिन इन से फ़ायदा सिर्फ कुछ, लोगों को ही मिला। 'जल टूटता हुआ' में हम देखते हैं कि बाढ़ से गाँव की रक्षा केलिए सरकार ने एक नयी योजना बनायी कि गाँव के चारों ओर ऊँची मिट्टी पटवा दी जाय और जो लोग अपने मकान की ज़मीन को ऊँचा कराना चाहते है, वे ऊँचा करा सकते है। बस लोगों में होड मच गयी। गाँव के पैसेवाले धूर्त लोगों ने शहर के इंजिनियर को घूस देकर अपने घरों केलिए, ज़्यादा मिट्टी डलवा दी। गरीबों को किसी ने नही पूछा। जिन लोगों ने अधिक रूपए दिए उन्हें अच्छी मिट्टी मिली। इस प्रकार सरकार की विकास योजनाएँ सिर्फ कुछ धनिकों की अपनी विकास योजनाएँ रह गयी।

गाँवों में विविध राजनैतिक दलों के कार्यकर्ता हैं। 'जल टूटता हुआ' में जग्गू हरिजन पुराने काँग्रसी नेता है, गाँधी भक्त भी है। सोष्यलिस्ट रामकुमार गाँव के एक अन्य नेता है। इस प्रकार 'पानी के प्राचीर' का मलिन्द,

---

1. रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" - पृ. 105

'आकाश की छत' का कॉमरेड बाबु ये सब विविध राजनैतिक दलों के प्रतिनिधि के तौर पर उपन्यासों में आते हैं। लेकिन अशिक्षित ग्रामीण जनता का राजनैतिक सिद्धान्तों से कोई वास्ता नहीं, इसलिए नेता लोग इन भोले भालों को आसानी से अपने वश में कर सकते हैं।

गाँव के लोग अब भी पुराने विचारों के हैं, रामकुमार को वे अधार्मिक समझते हैं, क्योंकि वह ब्राह्मण होकर भी निम्न जाति के लोगों के साथ संपर्क रखता है, मुसलमानों और इसाईयों के साथ खाता पीता है। इसका मतलब है, गाँव की राजनीति में परंपरा से चली आयी मूल्यों की अहमियत हैं, जाति और बिरादरी से अलग कोई भी व्यक्ति नही सोच पाता है। इसका मुख्य कारण है अज्ञानता। मगर शिक्षित मध्यवर्ग की नयी पीढ़ी भी इन संस्कारों से पूर्णतः मुक्त नहीं है। जग्गू हरिजन को एक सभा में सभापति बनाने पर सतीश तक सह नही पाता। गाँव के पुराने काँग्रसी नेता होने पर भी जग्गू, सतीश एवं रामकुमार को मालिक समझता है क्योंकि वे ब्राह्मण हैं - "मलिक लोगों और भाईयों, मैं अदना आदमी आपके सामने क्या कहूँ? दोनों मालिकों ने बातें कही है, वे ठीक है।"[1]

रामकुमार जैसे सोष्यलिस्ट नेता भी सिर्फ नाम के सोष्यलिस्ट है। वे राजनैतिक सिद्धन्तों को आत्मसात् कर सोष्यलिस्ट नही बने थे बल्कि 'मिस सेन' द्वारा मारे तमाचे के कारण, अचानक उस के मन में वर्ग बोध जाग उठा था। रामकुमार अपने वैयक्तिक स्वार्थ केलिए किसी से भी मिलने तैयार है।

---

1. रामदरश मिश्र "जल टूटता हुआ" पृ.

लेकिन इसी गाँव में क्राँन्तिकारी जगपतिया भी है। वह पहले महीप सिंह के अत्याचारों को सहनेवाला मात्र एक नौकर था, फिर कलकत्ते में वह सोष्यलिस्ट सिद्धांतों से प्रभावित होता है। अपने गाँव में भी क्राँति लाने की कोशिश करता है। हलवाहे उसके नेतृत्व में मज़दूरी बढाने केलिए हड़ताल पर उतर आते है। नकली क्राँन्तिकारी रामकुमार इसके विरुद्ध काम करता है। यही रामकुमार अपने विद्यालय में जहाँ वह काम करता है, ब्राह्मण और क्षत्रियों की यानी जाति की राजनीति भी खेलता है। उसके नेतृत्व में ब्राह्मण विद्यार्थी क्षत्रिय अध्यापकों के खिलाफ़ साजिश करते हैं।

**परिवार एवं व्यक्ति**

भारतीय ग्रामीण समाज में सामंतीय आर्थिक व्यवस्था के कारण शताब्दियों से संयुक्त परिवार - व्यवस्था का प्रचलन था। सामाजिक परिवर्तन के अनुसार आज संयुक्त परिवार अणु परिवार में तब्दील हो रहा है। लोग नौकरी केलिए शहर की ओर जाने लगे, अपने हिस्सों का खेत बेचकर नगर में ही बसने लगा। गाँव की मुख्य पेशा खेती उतना आकर्षक नही रहा। अपने उपन्यासों में आर्थिक व नैतिक आधारों पर बनते टूटते पारिवारिक जीवन को भी चित्रित करने का प्रयास मिश्रजी ने किया है।

ग्रामीण समाज का परिवार पुरुषसत्तात्मक है। पुरुष नारी को सिर्फ भोग की वस्तु समझता है। परिवार के बारे में अहम फैसला लेने का अधिकार सिर्फ पुरुष को है। उच्च और मध्यवर्गीय परिवारों की नारियाँ घर से अधिक बाहर न निकलती है। पति और बच्चों की सेवा में ही अपना आनंद

खोज लेती हैं। लड़का और लड़की की परवरिश में ज़मीन आस्मान का फ़रक है।

'जल टूटता हुआ' में शारदा गाँव की लड़कियों की स्थिति को लेकर चिंतित है - "इस गाँव में लड़कियों को कौन खतियाता है? वे तो पाँव तले की जूती हैं..... हे राम, लड़की का जीवन भी क्या नरक का जीवन है! लड़के दूध पियेंगे, घी खोयेंगे, मिठाई खायेंगे, सामने उनसे छोटी लड़कियाँ टुकुर-टुकुर ताकती रहेंगी। बाद में तो ताकना भी छोड देती हैं क्योंकि लड़कों में और अपने में इस अंतर को स्वाभाविक मान लेती हैं। हाय ईश्वर! तूने लड़की जाति पैदा ही क्यों की? लड़का पैदा होने पर माँ को एक महीना तक दूध पीने को मिलता है मगर लड़की के पैदा होने पर पंद्रह दिन तक। इतना बडा अपमान नारी जाति का? जैसे लड़की पैदा होने पर माँ को आधा ही दरद होता है..... लड़का पैदा होने पर सोहर होता है, लडकी पैदा होने पर मातम मनाया जाता है..... इतना बडा अपमान लड़कियों का, जैसे-कीडा-मकोडा हों - गाँव के घर-घर में तो यही देख रही है।"[1] लड़कियों को हमेशा मर्द के आगे दबकर रहने की सीख मिलती है। दहेज प्रथा के प्रचलन के कारण समाज में लड़की केलिए अपने ही जात के सुयोग्य वर मिलना भी मुश्किल है। फिर भी गरीब और मध्यवर्गीय लोग कर्ज लेकर या ज़मीन गिरवी रखकर समाज के नियमों के अनुसार लड़की को ब्याह कर ससुराल भेजते है। लेकिन वहाँ ससुराल वालों की तरफ़ से भी ज़्यादती होती है।

---

1. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ' - पृ. 193

## गाँव की नारी

भारतीय समाज में नारी के साथ हमेशा भेद भाव रहा है। उसे रूढियों और परंपराओं से मुक्ति अभी तक नही मिली है। भारतीय समाज सचमुच पुरुष केन्द्रित समाज है। गाँवों में यह व्यवस्था अपने मूर्त रूप में दिखायी देती है। स्वतंत्रता के बाद नारी शिक्षा का काफ़ी प्रचार हुआ लेकिन गाँवों में लड़कियों को सिर्फ घरवाली बनने केलिए ही तैयार की जाती है। गाँवों में जहाँ भूख और गरीबी के कारण लड़को को भी शिक्षा नसीब नही होती वहाँ एक लड़की का स्कूल जाना सोचा भी नहीं जा सकता। 'थकी हुई सुबह' में गाँव की लड़की होने के कारण लक्ष्मी को स्कूल जाने केलिए अपने परिवार वालों से बहुत कुछ मिन्नते माँगनी पड़ती हैं। पिता लक्ष्मी को समझाते हुए कहते है -

"नहीं बेटी, लड़कियाँ कहाँ पढ़ती हैं? लड़कियों को पढाई-लिखाई से क्या वास्ता? उन्हें अपना घर बसाना होता है।" फिर भी वह ज़िद पर अड़ी रही। बोली - "मेरा बहुत मन करता है। पढ़ाई लड़कियों केलिए खराब हैक्या बाबूजी? "खराब हों या अच्छी लेकिन लड़कियों के पढ़ने का चलन नही है। देखो सुन्दर तो इस गाँव के सबसे रईस आदमी है, उनकी बेटी कहाँ पढने जाती है?"[1]

गाँव में लड़की को परायाधन समझा जाता है। पैदा होते ही परिवार में उसे एक बोझ समझा जाता है। बचपन को पार करते ही उसकी शादी की चिंता परिवारवालों को सताने लगती है। दहेज गाँव की प्रमुख

---

1. रामदरश मिश्र - "थकी हुई सुबह" - पृ. 9

समस्या है। दहेज न जुटा पाने के कारण कभी कभी अनमेल विवाह भी गाँवों में होते हैं। बालिकाओं को बूढों के गले बाँधकर माँ-बाप बोझ से छुटकारा पाते है। 'थकी हुई सुबह' में शोभा बुआ की शादी का जिक्र योंा हुआ है -

"इस साल उनकी शादी हो गयी। हम लोग बहुत उत्साह में थे कि शोभा बुआ की शादी हो रही है। उनके दुल्हे को देखने की बडी ललक भर आयी थी। इस सुन्दर-सी, उत्साह की-तरंग सी बुआ का दुल्हा कैसा होगा? मन में कुछ वैसे ही दुल्हे की तस्वीर उभर रही थी। द्वारपूजा के समय हमलोग बहुत उमंग से दुल्हा देखने पहूँचे और देखकर दंग रह गये कि दूल्हे की जगह पचास साल का एक मरद बैठा हुआ है।'[1]

"कैसा लगेगा शोभा बुआ को? क्या किसी ने बताया नही होगा? बताया भी हो तो क्या कर लेंगी। औरत तो गाय है न, जहाँ बाँधे बँध जायेगी। मैं वहाँ ठहार नहीं सकी। घर आ गयी। माँ से बताया तो माँ कुछ चुप रही। लगा जैसे भीतर-भीतर किसी जाल में फँस गयी हो।"[2]

घर के मामलों में हो या घर के बाहर पंचायत आदि में नारियों की राय की कोई कदर नही होता है। बच्चों को जन्म देना और उनका पालन-पोषण घर के काम काज ही नरी के मुख्य दायित्व माने जाते हैं। भारतीय समाज में परिवार की एक आदर्श रूप दिया गया है। लेकिन अचरज की बात यह है कि इस परिवार में नारी का ही अधिक शोषण होता है। सामंती मूल्यों

---

1. रामदरश मिश्र - "थकी हुई सुबह" - पृ. 9
2. पृ. 12

पर अधिष्ठित परिवार में पति को 'परमेश्वर' माना जाता है। उसकी सेवा करना ही पत्नी का धर्म है। दरअसल नारी को लज्जा, क्षमा, त्याग आदि का मूर्त रूप मानते हुए परिवार में ही उसका भरपूर शोषण होता रहता है।

उच्च और मध्यवर्ग की महिलाएँ घर में ही सीमित रहती है। निम्न वर्ग की औरतों केलिए मर्दों के साथ रोज़ी रोटी केलिए काम करना पड़ता है। गाँवों में किसानों के हलवाहों के रूप में दलित औरतें खेत में काम करती हैं। उनका यौन शोषण भी उच्च जाति के मर्दों द्वरा होता है। यहाँ तक की उनके साथ खिलवाड करना उच्च जाति के मर्द अपना हक भी समझते है। 'जल टूटता हुआ' की लंवगी 'पानी के प्राचीर' की बिदिया आदि चरित्र इसकेलिए उदाहरण हैं।

**बदलता हुआ गाँव**

1996 में प्रकाशित मिश्रजी का उपन्यास है 'बीस बरस' इसमें भारत के आधुनिक गाँव का चित्रण हुआ है। दामोदर जो दिल्ली में एक पत्रकार है, बीस बरस के बाद अपना गाँव वापस आ जाता है; रहने केलिए नही अपने लोगों से मिलने। उसे गाँव कुछ बदला बदला सा दीख पड़ता है। दामोदर गाँव के उन हजारों, लाखों लोगों का प्रतीक है जो रोज़ी रोटी केलिए गाँव से नगर पहूँचकर वहाँ के होने के लिए मजबूर हो जाता है। और एक दृष्टि से दामोदर कोई व्यक्ति नही, मानसिकता भी है। वह मध्यवर्ग का प्रतिनिधि है जो अपने गाँव को छोडकर शहर की सुविधाओं में अपनी अस्मिता को खो देता है।

जैसे सूचित किया गया दामोदर को गाँव कुछ बदला सा दिखाई देता है। सड़क बेकार तो सही लेकिन गाँव के बीच से जा रही है। छोटे-मोटे वाहन सड़क पर आ जा रहे है। सड़क के किनारे तमाम दुकाने खुल गई हैं। चाय की दुकानें तो जगह-जगह दिखाई दे रही हैं। गाँवों के खपरैल मकान धीरे-धीरे पक्के मकान में बदल रहे हैं। दामोदर के गाँव के मित्र अंगद भाई के अनुसार गाँव यो बदल दया है -

"लोगों को आदत पड गयी है गाँव को बदनाम करने की। अरे भाई हम लोगों के ज़मानें के गाँव को देखा होता। क्या था तब गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा, बाढ के अलावा। अब अपने गाँव के पास ही अंग्रेज़ी स्कूल, कालेज खुल गया है। तमाम लड़के पढ़-पढ़कर अफ़सर हो गये हैं। लोगों ने खेत खरीद लिये हैं, पक्के मकान बनवा लिये हैं, नदी पर बाँध बाँध गया है, बाढ़ भी रुक गयी है, तमाम ट्यूबवेल गड़ नये हैं, खेतों में फ़सल भी अच्छी होती हैं हरिजन टोली भी अब वह नही रही। वे अब किसी के वश में नही रहे। भाग-भागकर परदेश पकड़ लिया। वहाँ से पैसे भेज रहे हैं।"[1]

हालांकि अंगद भाई की यह दृष्टि मध्यवर्गीय ब्राह्मण व्यक्ति की है फिर भी गाँव में बदलाव तो ज़रूर आये हैं। कुछ बदलाव ऐसे हैं जो सकारात्मक कहा नही जा सकता। गाँव में लोगों के बीच अब आत्मीयता नही रही। पर्व, त्योहार आदि इकट्ठा होकर खुलकर मनाने की वह सामूहिक भावना अब नही रही। शहर का अकेलापन और अजनबीपन अब गावों में भी

---

1. रामदरश मिश्र - "बीस बरस" - पृ. 19

महसूस होने लगे हैं बिजली के आने से रेडियो और टी.वी का भी खूब प्रचार हुआ है अब शाम होते ही लोग अपने घरों में सिकुड़कर रह जाते हैं।

गाँव के त्योहार रीति-रिवाज़, आचार, अनुष्ठान आदि उसकी अपनी संस्कृति का हिस्सा है। लेकिन आज ये सब लुप्त हो रहे है। शिक्षा के प्रचार से रूढियों अन्धविश्वासों से मुक्ति पाने के साथ साथ संस्कृति के साकारात्मक अंश भी मिटते जा रहे है। दमोदर देखता है, होली के दिन भी लोग शहरों की तरह टी.वि. के सामने बैठकर होलीके कार्यक्रम देख रहे हैं। गाँव की होली अब पहले जैसे नही रही -

"सभापती के दरवाज़े से छोटी-मोटी भीड़ होली दहन स्थान की ओर चली तो मैं भी शामिल हो गया। कुछ और दिशाओं से लोग आ गये। कब होली जली, कब बुझी और कब लोग वहाँ से सरक कर अपने-अपने घरों को चले गये, पता ही नहीं चला।

मैं लौटा तो सभापति से बोला" का हो ब्रजेश, चौताल वौताल नही होगा क्या?" "कोई गानेवाला नही रहा भइया। नये लोग चौताल सीखते नही। और जो गाते थे उनमेमं से बहुत थोडे लोग रह गये है।"[1]

दलितों के हालात में भी काफी बदलाव आ गया है। शिक्षा का प्रसार हुआ है। कुछ दलित गाँव से बाहर निकले है और काम करके घर पैसे भेज रहे है। गाँव के इस यथार्थ का वर्णन दामोदर के भतीजा मंजुल के माध्यम से हुआ है। किसानों केलिए कटाई का संकट का समय होता है, हरिजन जो

---

1. रामदरश मिश्र - "बीस बरस" पृ. 23

पहले कटाई का काम करते थे अब उतने नही मिलते हैं। हरिजनों की नयी पीढी में काफ़ी लोग अब पढे लिखे हैं, कतिपय अकेले और कुछ सपरिवार कमाने केलिए बाहर चले गये है। लेकिन इन बदलावों को पूर्णतः स्वीकार करने केलिए गाँव के उच्च जाति के लोग तैयार नही है, उनकी मानसिकता में परिवर्तन आना अभी बाकी है। खुद मंजुल कहता है -

"आप नहीं समझेंगे चाचाजी। जो लोग भोगते है वे समझते हैं। इन हरिजनों के असहयोग, गुस्ताखी और ऊँची मजदूरी के कारण हम लोगों का काम होना मुश्किल हो गया है।"

"ठीक कहते हो, जो भोगता है वही समझता है। सदियों से जो दुःख और अपमान इन हरिजनों ने भोगा है उसे वे ही समझ सकते हैं, ऊँचे वर्गों और जातियों के लोग नही। हम आज भी चाहते हैं कि वे हमारे सामने लाचारगी से बिछे रहें। हमारे जायज नाजाज़ हुक्म की तामील करते रहें, बेगार करते रहें, मार खाते रहें।

"नहीं, यह सब अब कौन करता है चाचाजी? लेकिन छोटे-बडे का लिहाज तो नही भूलना चाहिए। वे प्रणाम तो कर सकते है, हमें आता-जाता देख चारपाई परस उठतो सक्ते है।"[1]

दामोदर गाँव के एम.एल.ए. और दलित वर्ग के नेता मास्टर हनुमान भाई से बातचीत के संदर्भ में गाँव के उच्चजातिवालों की मानसिकता का पता चलता है। दामोदर तो दलित के प्रगति पर गर्व करता है लेकिन हनुमान भाई कहता है -

---

1 रामदरश मिश्र - "बीस बरस" - पृ. 42

"गर्व? हनुमान ठाकुर थोडा मुस्कुराये। आप इतने बडे आदमी है और मुझपर गर्व करने की बात कह रहे है? लेकिन ज़रा इधर की बडी जाति के लोगों से चर्चा करके देखिए वे किस तरह मुझे याद करते हैं। उनकी बातों से तो आपको ऐसा लगेगा कि मुझे न शिक्षा में आना चाहिए था, न विधान सभा में। मुझे अपने बाप-दादों की तरह पालकी ढोनी चाहिए थी, घरों का पानी भरना चाहिए था, भार ढोना चाहिए था, जूठे पत्तल साफ़ करने चाहिए थे और गाहे-बगाहे पिटना चाहिए था।"[1]

**निष्कर्षतः** यही कह सकते है, ग्रामीण जीवन के चित्रण में मिश्रजी ने असीम क्षमता, हासिल की है। उनके गाँव से संबंधित उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर भारत के ग्रामीण जीवन का जीता जागता यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं। ये उपन्यास अपने अंचल विशेष के जीवन की समग्र स्थितियों, परंपराओं, द्वन्द्वों राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक संघर्षों, तनावों आदि का संवेदनात्मक बयान है। मिश्रजी के उपन्यासों का गाँव भारत के अनेकानेक गाँवों का प्रतिनिधि है। यथार्थ के धरातल पर खडे रहकर, मिश्रजी ने भोगे हुए यथार्थ को ही कल्पना से संजोकर इन उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। उनकी ग्राम संवेदना के पीछे 'नोस्टालजिया' को उल्लंघित करके, मानवीय मूल्यों की पहचान एवं रेखांकन के आधार पर प्रस्तुत करने का अंदाज स्पष्ट है जो उन्हें अलग खडे कर देता है।

.....🕮.....

---

1. रामदरश मिश्र - "बीस बरस" - पृ. 70

## तीसरा अध्याय

# मिश्रजी के उपन्यासों में चित्रित नगर संवेदना

## तीसरा अध्याय

# मिश्रजी के उपन्यासों में चित्रित नगर संवेदना

### स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज और नगर जीवन

नगर सभ्यता का केन्द्र माना जाता है और नगर निवासी अपेक्षाकृत अधिक सभ्य माने जाते हैं। सत्ता नगरों के द्वारा ही शासन का कार्य संपादित करती है। इसलिए राजनीति की बनती बिगडती स्थितियों से सबसे पहले नगर ही प्रभावित होता है। आज़ादी के बाद प्रजातांत्रिक सरकार ने नगरों को ही सुसज्जित व आलोकित करने का काम किया है। यह सरकार केलिए इसलिए भी आवश्यक है कि व्यवस्था को चलानेवाले यही निवास करते हैं। आज़ादी के बाद भी सरकारें उसी तरह चलती रही जैसे पहले थीं। लूट-खसोट, भाई-भतीजावाद, जातीयवाद, पक्षपात, भ्रष्टाचार, और नौकरशाही ने अपनी पुरानी परंपरा को बनाये रखा। नौकरशाही के साथ जनता को मसीहे मिल गये जो जनता के प्रति निर्मम होते गये। स्वार्थ-पूर्ति सत्ता लिप्सा और क्षतिपूर्ति का नंगा आयोजन नेताओं के द्वारा होता रहा। पूँजीवादी, प्रतिक्रियावादी ताकतों के साथ आज़ाद देश की सरकार ने गुपचुप संधि कर ली और जनता आश्वासनों, 'रामराज्य' की परिकल्पना, समृद्धि के नारों के बीच सुखद सपना संजोती रही।

आज़ाद भारत में नगरों का विकास हुआ। नगर महानगर बनते गये, कस्बे नगर बन गये। नगरों-महानगरों में बडे बडे कल-कारखाने लगे।

गाँधीवादी नीति के अनुसार लघु-उद्योग पनपना चाहिए था, लेकिन नयी व्यवस्था ने बडे बडे उद्योगपतियों के साथ कदम मिलाकर ही चलना पसन्द किया। नगरों में स्कूल और कॉलिज खुले। विश्वविद्यालय भी खुले। यानी शिक्षा का काफी प्रसार हुआ, एक ऐसी शिक्षा जो कि रोज़गारोन्मुख नही थी फल स्वरूप काफी संख्या में लाखों-करोडों की संख्या में बेरोज़गार बनते गये। रोज़गार मिलना सबसे बडी समस्या हो गयी। मध्यवर्गीय परिवार अधिकांशतः सत्ता में पहले से ही घुसे हुए थे और उनके पास उच्च शिक्षा भी थी, इसलिए उन लोगों ने सत्ता का गलत इस्तेमाल अपनी आमदनी बढाने केलिए किया और अचानक उच्च वर्ग में शामिल हो गये। नगर में रहनेवाला निम्न मध्यवर्ग शोषित होता रहा।

जैसे सूचित किया गया कस्बों, नगरों और महानगरों में ही देश की पूरी सत्ता केन्द्रित है। यही से सारे देश का शासन संचालित होता है। महानगरों में ही देश और राज्यों की राजधानी स्थिति है, नगरों में जिले और कस्बों में तहसील या अनुमंडल स्थित होते हैं। शासन और विकास कार्य यही पर केन्द्रित होता है। नगरों में जिला-जज, नगर पालिका, जिला-परिषदें, कचहरी अदालतें आदि स्थित हैं। यही से आम आदमी को शासित भी किया जाता है और न्याय भी दिया जाता है, यहीं रोज़ी रोटी देनेवाला आफ़िस, कल-कारखाने, दूकानें, चिकित्सालय, विद्यालय सभी कुछ हैं। यही से देश, राज्य और जिलों के विकास की रूपरेखा खींची जाती है, सारी योजनायें बनती हैं और कार्यान्वयन के प्रयास भी होते हैं। गाँव से लेकर शहर तक के आम आदमी का पैसा महानगरों में केन्द्रित किया जाता है और विकास भी। यही वह

वजह है जहाँ कार्यालय से लेकर सचिवालय तक है, जहाँ विकास की कागज़ी नाव तैयार होती है और पैसे भ्राष्टाचारी नेताओं, अफ़सरों और ठेकेदारों के पेट में पच जाते है। विकास के घपले भ्रष्टाचार का नंगा नाच, घुसखोरी का बोलबाला, भाई-भतीजावाद का रोग यहां कैंसर की तरह फैल चुका है। काला बाज़ार जहाँ गर्म है और जहाँ रातों रात कोई साधारण आदमी इमारतें खरीदने की स्थिति में आ जाता है और बगल की झुग्गी-झोपडियों में जहाँ बच्चे भूखों मरते होते हैं, भंगी जहाँ सर वे साहबों का पौखाना ढोकर पेट भरता हैं। बेरोज़गार इसी जगह पर पेट भरने केलिए पॉकेटमारी का धन्धा करता है।

सारी सुविधाएँ चूँकि नगर में ही केन्द्रित हो गयीं इसलिए नौकरी पाने की गुंजाइश भी यही है। यही कारण है गाँव से शिक्षा पाने युवक यहीं आते हैं, यहीं पढते-लिखते है और यही के होकर रह जाना चाहते है। इसलिए बेरोज़गार युवकों की भीड़ भी यही चक्कर काटती है और रोज़गार की आशा में आवेदन पत्र भेजते रहते हैं। भीड़ शहरों में रोज़ बढती ही जा रही है। इस भीड़ ने कई तरह की समस्याओं को जन्म भी दिया है - रोटी की, रोज़ी की, रहने की, पहनने की समस्या बद् से बद्तर होती जा रही है।

मध्यवर्ग आर्थिक मार से जूझ रहा है, जीने केलिए महंगाई और व्यवस्था ने उसे इस ढंग से मजबूर किया है कि रिश्वतखोरी के बिना कोई काम नही चला सकता और यही निम्न वर्ग टूट-टूटकर मज़दूर या चपरासी में तब्दील हो जाता है।

कार्यालय, सचिवालय, नगर निगम, नगर पालिका आदि संस्थाओं में जहाँ भी कार्यरत है, उसमें राजनैतिक चेतना इतनी ज़रूर आयी है और

अगर स्वतः नही आयी है तो स्वार्थी नेताओं द्वारा ही सही लायी गयी है। संघर्ष केलिए उसने संगठन बनाये है और वह अपनी माँगों केलिए हड़ताल करता है, लठियाँ खाता हैं, जेल जाता है और कभी कभी शहीद भी हो जाता है। कार्यालय हो या कारखाना हर जगह वह यूनियन बनाकर ही लड़ रहा हैं।

नगरीय क्षेत्र में वर्ग ध्रुवीकरण तीखा तथा प्रभावकारी है। कुछ वैभवपूर्ण जीवन जीते हैं। उन्हें धन से खरीदा जा सकने वाला हर सुख प्राप्त होता है। इसी नगर में अनेक लोग बेरोज़गारी, आवास, स्वास्थ्य और शिक्षा संबधी समस्याओं का सामना करते हुए अति निर्धनता व अपमान का जीवन जीते हैं। और वे प्रायः एक सांस्कृतिक तथा अध्यात्मिक शून्य में रहते हैं। उनके भी सपने हैं, आशाएँ हैं लेकिन वे उनके साकार होने के विषय में सशंकित है।

**मिश्रजी के उपन्यासों में चित्रित नगर संवेदना**

रामदरश मिश्र की सृजनात्मक मानसिकता में गाँव और शहर एक साथ समाये हुए है। उन्हें अलगाना मुश्किल है। शहर की कहानी लिखते-लिखते वे कब गाँव में लौट जायेंगे और गाँव की कहानी कहते कब शहरी ज़िन्दगी की परतें उघाटने लगेंगे कहना कठिन है। मिश्रजी के उपन्यासों में 'अपनेलोग' 'दूसरा घर' 'बिना दरवाज़े का मकान' 'बीच का समय' (आदिम राग) आदि उपन्यासों में नगर जीवन का चित्रण हुआ है। नगर जीवन में भी उन्होंने नगर के प्रवासियों के जीवन का चित्रण अधिक किया है। इस प्रकार नगर का चित्रण करते समय भी वे गाँव से जुडे हुए है।

रचना में रचनाकार का उद्देश्य समाज शास्त्रियों की भाँति सामाजिक समस्याओं अथवा सामाजिक अंतर्विरोधों का वैज्ञानिक वर्णन विवेचन, स्वरूप निर्धारण अथवा उनके समाधानों का प्रस्तुतीकरण नही होता है। यह कार्य समीक्षक का है। रचनाकार तो अपने संवेदनात्मक ज्ञान के आधार पर उन सामाजिक समस्याओं से जिनमें वह जीता और जूझता है, प्रेरित-प्रभावित होकर उनके अनुभवों को इंद्रिय - संवेद रूप में संप्रेषित करता है। उससे यह आशा नही की जाती कि वह समाज की एक एक समस्या उठाकर उसका सर्वांगीण विवेचन-विश्लेषण अपनी रचना में प्रस्तुत करे।

मिश्रजी ने हमेशा भोगे हुए यथार्थ की नीव पर साहित्य सृजन किया है। प्रवासी जीवन के दुःख दर्द को उन्होंने स्वयं भोगा है इसलिए उनके उपन्यासों में नगर संवेदना अपनी मिट्टी से अलग हुए लोगों की समस्यायों के रूप में ज़ाहिर हुई हैं जो अपनी मिट्टी के भी न रहे और न दूसरे ओर बस भी सके। अपने घर से दूर रोज़ी रोटी केलिए नगरों में बसने वाले लोग नगर को अपना दूसरा घर समझ तो लेते हैं लेकिन पूर्ण रूप से शहरी नही बन पाते हैं। जब वे अपने क्षेत्र या गाँव लौटते है तो गाँववाले भी उन्हें अजनबी लगने लगते हैं। 'अपने लोग' का अध्यापक प्रमोद और 'बीस बरस' का पत्रकार दामोदर ऐसे ही भाव से गुज़रते है। प्रमोद का अपना छोटा सा शहर और गाँव जहाँ उसके अपनेलोग रहते है उसे एकदम अलग प्रतीत होते हैं। उसे लगने लगता है उसने खुद महानगर में रहकर उसकी सत्ता को आत्मसात् कर लिया है - "गाडी शहर की सीमा में प्रवेश कर गयी है। सनाक-सनाक लाइन के पास पेड, जंगली सुनसान, बीच-बीच में डूबे, टूटे-मूटे मकान, गंदे मैदान आते चले

जा रहे है और प्रमोद इन सबसे आज नये ढंग का रिश्ता महसूस करता हुआ खिडकी से लगातार बाहर देख रहा है। लगभग बीस वर्षों का अंतराल....। बीच-बीच में गाँव जाते समय वह इस शहर से गुज़रता रहा है लेकिन इससे इधर कुछ खास लगाव नही रहा। इन बीस वर्षों में एक यात्री की तरह गुज़रा है - यहाँ की सड़कों से, बाज़ारों से और यह हल्के-हल्के अनुभव भी करता रहा है कि कुछ बदल रहा है लेकिन इस बदलाव की गहराई में नही डूब सका। धीरे-धीरे उसे लगता रहा कि वह दिल्ली का होता जा रहा है और इस शहर का अस्तित्व उसके भीतर से धुंधलाता जा रहा है, और जितना बचा है वह बहुत प्रीतिकर नही है। दिल्ली की तुलना में यह शहर अपने घोर गंवारूपन के साथ प्रकट हो उठता है।"[1]

मिश्रजी 'अपने लोग' में गोरखपुर शहर के समग्र व्यक्तित्व को उभारना चाहते थे, लेखन की प्रक्रिया में उनका कथाकार अनांचलिक होता गया और उपन्यास गोरखपुर के समग्र व्यक्तित्व को उभारने के स्थान पर उसके यथार्थ परिवेश और परिवेशगत अनुभवों के माध्यम से उस शहर को उभारने लगा जो स्वयं अपने पुराने रूप में भीतर से उग रहा है, जो आधुनिक हो रहा है किन्तु उसकी आधुनिकता में गाँव घसा हुआ है। 'गोरखपुर' पूर्वि उत्तर प्रदेश और बिहार के शहरों का प्रतिनिधि बन गया। लेखक की धारणा है कि 'यह शहर-भारत का प्रतिनिधि' बन गया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के दौरान सामंतवादी व्यवस्था का रूप बदला उसकी जगह नवपूँजीवादी व्यवस्था ने ले लिया। पूँजीवादी व्यवस्था में आर्थिक

---

1. रामदरश मिश्र - "अपने लोग" - पृ. 1

लाभ कमाना ही व्यक्ति का एकमात्र उद्‌देश्य रह जाता है। हर संभव तरीके से पैसा कमाने के प्रयास में जनता की दृष्टि आर्थिक हो गयी। सामंतवादी व्यवस्था में संयुक्त परिवार होते थे संपत्ति का स्रोत ज़मीन मात्र था। संयुक्त परिवार के टूटने और अणु परिवार के अस्तित्व में आने से ज़मीन का बँटवारा हो गया। प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता के अनुरूप ज़मीन कम पड़ने लगी। अतः परिवार के पालन पोषण केलिए कतिपयों को गाँव से शहर जाना पडा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नए-विकास कार्यक्रम नगरों को केन्द्र में रखकर हुआ इसलिए वहाँ व्यवसाय की संभावनाएँ बढीं ग्रामीण युवक शहर की ओर आकृष्ट हुए। गाँव के उच्चवर्ग के कुछ लोग ऊँची नौकरी, उच्च शिक्षा प्राप्त करने केलिए और निम्न मध्यवर्ग के लोग क्लर्की, शिक्षा या अन्य छोटी मोटी नौकरी पाने केलिए शहरों की ओर उन्मुख हुए। फलतः शहरों में जनसंख्या की वृद्धि हुई। बेरोज़गरी, आवास, पानी, बिजली आदि की समस्याओं से ज़िन्दगी कुंद होने लगी।

भूखमरी से बचने लोग शहर आते रहे। उन केलिए शहर सपनों का शहर था, वे सोचते गये आज नही तो कल अवसर मिलेंगे, धन कमायेंगे। गाँव के लोग शहर में बसे अपनों से आर्थिक मदद चाहते थे। निम्न मध्यवर्ग के लोग अपना पेट काटकर रुपये शहर से गाँव भेजते थे। 'दूसरा घर' उपन्यास के अनेक पात्र इस केलिए उत्तम उदाहरण हैं। शंकर जो प्राइमरी स्कूल का अध्यापक है अपनी पढाई की वजह घरवालों की आर्थिक मदद नही कर पाता है - "ठीक ही तो कहते है घरवाले। मैं घर केलिए क्या कर सका? सात साल से प्राइमरी में पढा रहा हूँ। प्राइमरी स्कूल में मिलता ही क्या है! मैं क्या खाऊँ,

क्या बचाऊँ? घर पर खाने-पीने की कमी नही है। इतने खेत है कि खाने भर को हो ही जाता है। लेकिन केवल खाना ही ज़रूरी नही है न! कच्चा मकान है तो पक्का मकान बनवाना है। अगर कही खेत बिक रहा है तो चढ़ा-ऊपरी करके उसे खरीद भी लेना है नही तो घर की इज्ज़त चली जायेगी! जिसके घर के लोग परदेस में हो उसके घर पेट्रोमैक्स, कालीन, फोनोग्राफ, नई-नई दरियाँ वगैरह-वगैरह होनी ही चाहिए और जिसके घर के लोग अहमदाबाद जैसे मिलों के नगर में कमाते हो, उसके यहाँ अच्छे अच्छे कपडे न हो तो शान में कमी आती है। हर खाते-पीते घर के लोग बाहर कमानेवाले सदस्यों से बहुद-बहुत उम्मीदें पालते हैं और जब उम्मीदें पूरी नही होती तो वह सदस्य नालायक करार वे दिया जाता है - घर में ही नहीं गाँव-जवार में भी उसकी नालायकी की चर्चा होने लगती है।"[1]

लेकिन इसी उपन्यास का एक अन्य पात्र है 'पारस' जो शंकर के समान अध्यापक है, वह तीन चार ट्यूशन स्कूल के बाद कर लेता है, इतना कंजूस है कि अहमदाबाद शहर के लोग उसका मज़ाक उडाते हैं, उसकी हालत पर तरस खाते हैं, शंकर के अनुसार पूरे प्रवासियों पर इसका असर, इस राज्य में हो रहा है, लेकिन पारस केलिए गाँव को पैसे भेजना एक मात्र लक्ष्य रह गया है -

"सवाल निरंतर विकास का है न। जर जवार में धन-दौलत से ही मान बढ़ता है। हमारे घर में आप शहर की अनेक चीज़े पाएंगे कालीन, तिरपाल, कुर्सियाँ, फोनोग्राफ़, नये नये छाते, कपडे, पैट्रोमैक्स सइकिलें वगैरह।"

---

1. रामदरश मिश्र - "दूसरा घर" - पृ. 2

"और यहाँ आपके पास क्या-क्या हैं?"

"यहाँ रखने की क्या ज़रूरत? यहाँ तो परदेस है। यहाँ मेरी कौन इज्ज़त होनेवाली है? यहां कौन देखता है?"

"क्यों आप अपनी कोई इज्ज़त ही नही समझते? आप तो शिक्षक है क्या, यह नही समझते कि यहाँ आपकी इज्ज़त का सवाल केवल आपस ही नही समूचे उत्तर भारत के लोगों के साथ जुडा है? क्या आपको लगता कि यहाँ के लोग हम लोगों का रहन-सहन देखकर व्यंग्य करते हैं?

"करने दो। उससे हमारी सेहत पर क्या असर पडता है? मुझे तो अपना घर-द्वार देखना है।"

"आपकी सेहत पर तो नही, लेकिन हमारे प्रदेश की सेहत पर अवश्य पडता है।"[1]

"बिना दरवाज़े का मकान" में भी शहर में रहनेवाले निम्न मध्यवर्गीय लोगों के जीवन का चित्रण है। पृष्ठभूमि में दिल्ली महानगर है। इसकी नायिका दीपा का पति बहादूर गाँव का हट्ठा युवक था। वह रिक्शा चलाकर रोज़ी रोटी कमाता था। दुर्घटना के बाद अपाहिज बनकर उसे घर बैठना पडता है, उसकी पत्नी दीपा को उसकी जगह शहर में ज़िन्दगी गुज़ारने के वास्ते संघर्षों से जूझना पडता है। सिर्फ बहादूर ही नही बहादूर के समान दिल्ली महानगर में अनेक लोग मज़दूरी करते हैं या रिक्शा चलाते हैं -

---

1. रामदरश मिश्र - "दूसरा घर" - पृ. 17

"जहाँ हम लोग रहते थे, वहाँ आसपास अपनी ओर के बहुत से पुरबिया रहते थे - रिक्सेवाले, बेलदार, मिस्त्री, खोमचेवाले और बहुत तरह के लोग। घर से दूर, बाल बच्चों से दूर"

"कैसी है ज़िन्दगी इन बेचारों की। ये यहाँ अकेले तड़पते हैं, घर पर बीवियाँ अकेले - अकेले दिन बिताती होंगी"[1] अक्सर मज़दूर गाँव की गरीबी, भूखमरी, कर्ज़ आदि से पीछा छुडाने केलिए ही नये अवसर खोजकर शहर चले आते हैं। लेकिन शहर में उन्हे शहर की, अमानवीय व्यवस्था के शिकार बनने पडते हैं। गाँव में अगर ज़मीदार, धर्म और जाति के नेता द्वारा इनका शोषण होता था तो यहाँ बडे बडे उद्योगपतियों या मित्र मालिकों, पूँजिपतियों द्वारा उनके श्रम का भरपूर शोषण कर उनका नामोनिशन मिटाया जाता है। 'दूसरा घर' उपन्यास से फेंकु की कहानी भी कुछ ऐसी ही है।

"बाबूजी, पहले मैं उनकी हरवाही करता था, उनका कुछ कर्ज हो गया था। उनके द्वारा दी जानेवाली तनखाह पूरी नही पडती थी। इसलिए उनके यहाँ गल्ला - पताई लिया करता था। फिर बहन की शादी पड गई। उनसे सौ रुपये कर्ज़ लिये। फिर तो सूद में ही नौकरी बीतने लगी। मैं एक दिन घर से यहाँ भाग आया और ठाकुर साहब को चिट्ठी लिखवा दी कि मैं यहाँ कमा-कमाकर उनका कर्ज पूरा चुका दूँगा। मेरी माई को परेशान मत करे। लेकिन मेरे पास इतने रुपये कहाँ कि हर महीने उसके पैसे भेजता रहूँ। आखिर घर पर माई और बीवी है, बच्चे है उनके लिए भी तो भेजना पडता है।

---

1. रामदरश मिश्र - "बिना दरवाज़े का मकान" - पृ.

इसलिए वे अक्सर मेरी माई और बीवी से बेगार कराते रहते है और अक्सर ज़मीन उजाड देने की धमकी देते रहते है। उन्हें कमी किस बात की है। घर पर खेती-बारी है और उनके दो बेटे बंका में कमाते हैं। वे खूब रुपये भेजते हैं। लेकिन उन्हें सन्तोष नही। बंका के रुपयों से ही वे धनी हुए हैं। और ज्यों ज्यों धन बढता गया है उनके जुलम बढ़ता गया है।"[1]

**नगरीकरण और प्रवासी जीवन के कारण**

गाँवों में जन संख्या में निरंतर वृद्धि होती रही। भूमि पर अधिक दबाव पडना, खेती की भूमि का जनसंख्या में वृद्धि के कारण कम पडना, ग्रामीणों का अपने गाँवों को छोडकर नगरों की ओर व्यवसाय की खोज में जाना, आदि कारणों से नगरों की जनसंख्या में वृद्धि होती गयी। प्रवासी बढ़ते गये।

उद्योग - धन्धों ने नगरों के विकास को तेज़ किया है। एक स्थान पर मशीनीकरण के कारण उद्योगों का केन्द्रीकरण हो गया। एक स्थान पर अनेक कल-कारखाने खुले। औद्योगीकरण जहाँ-जहाँ हुए वहाँ-वहाँ पर जनसंख्या भी बढ़ीं। धीरे-धीरे वे स्थान कस्बे, नगर और महानगर बन गये।

गाँवों की तुलना में नगरों में अनेक सुख-सुविधाएँ होती हैं। व्यवसायों की बहुलता, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य, शिक्षा, पुलिस, न्यायालय, डाक-तार, बैंक-ऋण आदि की सुविधाऐं ऐसे अनेक भौतिक कारण है जिससे लोग आकर्षित होकर नगर में बसना चाहते हैं। आधुनिक सुख-सुविधाएँ, नए फैशन,

---

1. रामदरश मिश्र - "दूसरा घर" पृ. 17

नवीनतम पाश्चात्य जीवन शैली, अत्याधुनिक मनोरंजन के साधन, होटल, क्लब, सिनेमाधर, वस्त्र, आभूषण, मकान आदि।

**नगर जीवन की समस्याओं का चित्रण**

हर कोई आदमी सुखमय एवं खुशहाल जीवन की खोज में गाँव से नगर आता है। उसके मन में बहुत सारे सपने होते हैं। शहर को नया-नया पाकर उसे आश्चर्य होने लगता है। 'बिना दखाज़े का मकान' में दीपा जब पहली बार शहर आती है तो उसे सब कुछ नया और अच्छा लगती है -

"कितने अच्छे दिन थे। मैं दिल्ली में पहली बार आयी थी, सब कुछ नया-नया, अच्छा-अच्छा लगता था। बहादूर रिक्से पर बैठाकर कभी कभी तिलक नगर ले जाता था। कभी सिनेमा ले जाता था। इतने बडे-बडे मकान, इतनी सुन्दर-सुन्दर सडकें, इतने मोटोर, स्कूटर, सुन्दर-सुन्दर कपडे पहने हुए, इतने सुन्दर-सुन्दर मरद-औरत मैं ने पहली बार देखे थे।"[1]

शहर में पहली बार आनेवाले सब की स्थिति ऐसी होती हैं। लेकिन जल्दी ही उनके सपने, शहर के कडे यथार्थ से टकराकर चकनाचूर हो जाते है। उसे जीवन संग्राम-भूमि पर उतरना पडता है। धीरे धीरे सुख सुविधाओं से युक्त सुन्दर शहर का गन्दा और यथार्थ चेहरा उसके सामने प्रकट होता है। उसे नगर की असंख्य समस्याओं से जूझना पडता है। असुरक्षा, मानसिक तनाव, आर्थिक विसगतियाँ, दुर्घटनाएँ, धुआँ, घुटन, भीड़, शोर, गन्दगी, भीड

---

1 रामदरश मिश्र - "बिना दरवाज़े का मकान" - पृ. 32

में भी अकेलापन, बीमारियाँ, खाने-पीने और रहने जैसी समस्यायें तो किसी भी छोटे-बडे नगर केलिए सामान्य बातें है। नशीले पदार्थों का व्यवसाय, भ्रष्टाचार बेरोजगारी जैसी समस्याओं के केन्द्र नगर और महानगर बनते जा रहे हैं। नगरवासियों केलिए आज की प्रमुख आवश्यकता स्वस्थ एवं निरापद जीवन है।

जनसंख्या की वृद्धि के कारण आवास, पानी, बिजली आदि का मिलना शहर में दुर्लभ हो गया है। गरीब नौकरी से ज़्यादा आवास की समस्या से परेशान है। सत्ताधारी और उनके चेले गुण्डे गरीबों की इन समस्याओं का पूरा फ़ायदा उठाकर अपनी जेब भारी करते हैं। 'दूसरा घर' का 'गेरख पहलवान' जो चली से किराया भी वसूल करता है साथ अवैध रूप से पचास झोपडियाँ बनाकर खुद मालिक भी बन बैठा है -

"लेकिन छः बजदे-बजते बाहर नल पर शोर होने लगा। पहले तो उसने शोर की उपेक्षा करनी चाही जब शोर गाली-गलौज में बदल गया तब वह सो नही सका। आँख मलता हुआ बाहर निकला। बडी यातना है कि उसके कमरे के आगे ही म्यूनिसिपलटी का नल हैं। प्रायः यह दृश्य देखना पड़ता है और अब तो यह दृश्य और बढ़ गया है। यह चाली एक गुजराती सेठ की है, लेकिन इसका किराया वसूलते है गोरख पहलावान। बल्कि ये ही मालिक है। इन्होंने इधर चाली के आहाते में पचासों झोपडियाँ डलवा दी है, उनका किराया खुद लेते है। इन झोपडियों के बस जाने के कारण, पानी और संडास की मुसीबत और बढ गई है। लाइन लम्बी हो गई है। चालीवाली औरतें यह समझती है कि इस चाली की सुविधाएँ भोगने का अधिकार केवल उन्हीं को है, ये झोपडीवाले तो विदेशी है। और झोपडीवाली सोचती हैं कि किराया वे भी दे

रही हैं, पानी और संडास पर उनका भी उतना ही अधिकार है। बस तू-तू मैं-मैं होती रहती है। वैसे यह चकरार चालीवालियों में आपस में भी होती है लेकिन तब वह मात्र तकरार होती है, किन्तु चाली और झोपडियों की तकरार वर्ग-संघर्ष बन जाती है।"[1]

शहर के मध्य और उच्चवर्ग चाली में रहते मेहनती लोगों को असभ्य, अशिक्षित समझकर उनसे घृणा करते हैं। झगडों, गालियों और गन्दे माहौल की वजह, उनकी यह धारणा और अधिक दृढ होती है। लेकिन जहाँ इतनी असुविधाएँ हैं, पानी, आवास, स्वस्थ वायु, आदि की कमी होने के बावजूद ये लोग इतनी आत्मीयता से रहते हैं शायद शिक्षित सभ्य लोग इसी माहौल में रहते तो इससे ज़्यादा असभ्य तरीके से झगडा करते। 'दूसरा घर' का शंकर जो इन दोनों वर्गों से परिचित है जो खुद चाली में रहता है, सोचता है-

"चाली के एक-एक कमरे में छः छः, सात-सात आदमी रहते हैं। बहुत कम लोग है जो एक कमरे में अकेले रहते है या अपने परिवार के साथ रहते हैं। छोटी-छोटी बातों को लेकर प्रायः तू-तू मैं-मैं हो जाती है, फिर भी एक आत्मीयता की गन्ध वातावरण में तैरती रहती है। अभी चन्दा और असरफी लडी है, कल चौपाल पर बैठी हुई गपशप करेगी। लेकिन शहर का पढा लिखा शरीफ वर्ग तो केवल सभ्य अन्दाज़ में बात करता है। लगाव की गन्ध कही, महसूस ही नही होती। मैं भी कितना अकेला हूँ, परिवार से दूर। परिवेश की विसंगतियों से मिसफ़िट। कालेज की दुनिया में खोजता हुआ अतृप्त।"[2]

---

1. रामदरश मिश्र - "दूसरा घर" - पृ. 19
2. पृ. 32

**नगर के विभिन्न वर्गों का चित्रण**

आर्थिक दृष्टि से शहर के लोगों को तीन प्रमुख वर्गों में बांटा जा सकते है। उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्न या श्रमिक वर्ग।

**उच्चवर्ग** पूँजिवादी व्यवस्था में समाज में सर्वोपरी स्थान उच्च वर्ग का होता है। ये लोग अत्यधिक साधन संपन्न होते हैं। इनमें विलासिता की वस्तुओं का अधिकतम उपभोग पाया जाता हैं। ये लोग उच्च-स्तरीय राजनैतिक, अभिजात होते हैं। इसी वर्ग के लोग बडी-बडी मिलों, कारखानों, फर्मों, उद्योगों, व्यापारिक प्रतिष्ठानों के मालिक होते हैं। राजनैतिक दलों में भी इन धनी लोगों का वर्चस्व बढ रहा है। ये लोग सभी प्रकार से अधिकतम संपन्न होते है। सिर्फ महानगरों में ही नही गोरखपुर जैसे छोटे शहरों में भी इस प्रकार के उच्चवर्गीय लोग रहते हैं। उनका आवास भी नगरों के अभिजात मुहल्लों में होते हैं। 'अपने लोग' में ऐसे ही एक अभिजात मुहल्ले का चित्रण है -

"और यह है बेतियाहाता - इस नगर का सबसे अभिजात् मुहल्ला। एक खुला हुआ चौडा गहर गंदा नाला बद्बू की परतें उडाता इसके आगे बह रहा है। इस पार चौराहे पर रिक्शे खडे हैं, सड़क की पट्टी पर बहुत सारे नाई बोरा बिछाकर बैठे हुए हैं, कुछ भिखारी कुछ कोढी नंगी ज़मीन पर पसरे हुए हैं, सब्जी और फलों के टोकरे लिये कुछ औरतें बैठी है और मक्खियाँ भिनभिना रही है। और पास् शुरु होता है, बेतियाहाता। यहाँ कमिशनर की कोठी है, यहाँ शहर के नामी वकील, मुख्तार, डॉक्टर, नेता, साहित्यकार

प्राध्यापक, अफ़सर, व्यवसायी, टूटे हुए ज़मीदार और व्यवसाय की ओर बढ़ते छोटे-मोटे महाराजे रहते हैं।"[1] इसी तरह अभिजात उच्चवर्ग के शहर का वर्णन 'दूसरा घर' उपन्यास में भी मिलता है। लेकिन यह अहमदाबाद शहर, गोरखपुर से अधिक साफ़-सुथरा और सुन्दर है। 'कमलेश' जो इस उपन्यास का एक प्रमुख पात्र है, उत्तर प्रदेश के एक गाँव से नौकरी केलिए आया है। वह अहमदाबाद के उच्चवर्ग को देखकर आश्चर्य चकित होता है। इतना साफ़ सुन्दर शहर। इसका निर्माण करने वाले मज़दूर उत्तर प्रदेश बिहार आदि राज्यों से आये प्रवासी हैं जो खुद इसी नगर के गन्दी नालियों में नरकीय जीवन बिताकर, जीवन संघर्ष कर रहे हैं। उसे यह शहर अपने राज्य के शहरों से अधिक साफ़-सुथरा लगा। यह अंतर लोगों की संस्कृति की वजह से है। 'काँकरिया' अहमदाबाद का एक अभिजात मुहल्ला है, उसकी सुन्दरता का वर्णन 'दूसरा घर' में यों हुआ है -

"कितनी खूबसूरत जगह है काँकरिया। इतनी सुन्दर जगह उसने ज़िन्दगी में पहली बार देखी है, उसे पहली बार लगा है कि कहीं इतनी समृद्धि है। बीच में स्वच्छ पानी की विशाल झील। झील के किनारे जैसे रंगों का प्रवाह उमड उठा हो। सुन्दर रंग-बिरंगे परिधानों में सजी हुई औरतें, बच्चे, पुरुष। औरतों के जूडों में फूलों की वेणियाँ, तरह-तरह के माडल की कारें।

झील के चारों ओर आइने-सी चमकती सड़क। सड़क के किनारे कृत्रिम पहाडियाँ, पहाडियाँ पर उद्यान, बाल वाटिका, चिडियाघर। सब कुछ

---

1. रामदरश मिश्र - "अपने लोग' - पृ. 4, 5

साफ़-सुथरा, सजा-धजा व्यवस्थित। अपने यहाँ के शहरों में यह सफ़ाई कहाँ? ऐसे ऐसे उद्यान कहाँ? शंकर भाई बता रहे थे कि सारे माली अपनी ओर के है। विचित्र है - कला अपनी ओर की, और उपयोग यहाँ हो रहा है।"[1]

पूँजिवादी व्यवस्था में सत्ता, धर्म, शिक्षा आदि सभी क्षेत्रों में उच्चवर्ग का अधिकार होता है। शहर के सारी सुविधाएँ मानो सिर्फ इन्हीं केलिए ही हो। राजनैतिक दलों के नेता, शैक्षिक संस्थाएँ, अस्पताल, मिल, कारखाने आदि इन्हीं का होता है इसलिए नगर की सामाजिक व्यवस्था में इनका ही वर्चस्व हैं।

'अपने लोग' का डॉ. सूर्यकुमार 'दूसरा घर' का रूपलाल पहलवान जो कॉलिज के चेयरमैन है, गंगाराम शास्त्री जो जाली सर्टिफिकेट से प्रिंसिपल और फिर राजनीति में उतरकार शिक्षा मंत्री तक बनता है आदि उच्चवर्ग के शक्ति का परिचय देते हैं। समाज में मुखौटे पहनकर किस प्रकार ये लोगों को ठगते हैं और उनका शोषण करते हैं, इन सब का सही चित्रण मिश्रजी के उपन्यासों में हुआ हैं।

**मध्यवर्ग :-** इस वर्ग के अन्तर्गत छोटे व्यवसायी, अध्यापक, सौदागर, तकनीकिज्ञ, लिपिक आदि आते हैं। इनकी आर्थिक स्थिति भी संतोष जनक कही जा सकती है। समाज को नयी दिशा देने यानी परिवर्तन लाने में इनकी मुख्य भूमिका है। इनका शिक्षित समाज है। शिक्षित होने के कारण अपने अस्तित्व की परवाह इन्हें हैं। समाज में घटित हर घटना से भी इनका परिचय है। बडे बडे साहित्यकार, दार्शनिक, कलाकार आदि भी मध्यवर्ग में शरीक हैं। लेकिन इस

---

1. रामदरश मिश्र - "दूसरा घर" - पृ. 43

में हमेशा उच्चवर्ग के तौर तरीके और जीवन रीति का अनुकरण करने की प्रवृत्ति रहती है। सामाजिक यथार्थ से टकराकर इनके आदर्श मिट जाते हैं। हमेशा आत्म संघर्ष, अकेलापन, अस्तित्व की समस्या आदि से यह वर्ग घेरे रहता है। इसलिए इन्हें मजबूरन एक समझौते की ज़िन्दगी जीनी पड़ती हैं।

मध्यवर्ग का प्रत्येक आदमी जिसके मन में शोषण के प्रति विद्रोह है और शोषितों और निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूति है, पर मौकापरस्त होता है। अवसर का पूरा फ़ायदा उठाकर जाने या अनजाने वह उच्चवर्ग में शामिल हो जाना चाहता है। कभी सफल भी बनता है। उसकेलिए वह अपने आदर्शों को भी बलि पर चढाने तैयार होता है।

समाज में अपनी आर्थिक स्थिति सुरक्षित रखने केलिए उसे समझौता करना पडता है। उचित अवसर पर चाहकर भी वह विद्रोह नही कर पाता, या अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त नही कर पाता। 'अपने लोग' उपन्यास का प्रमोद जो पेशे से एक अध्यापक है, अपने समाज वे प्रति जागरूक और संवेदनशील भी है, लेकिन उतना विद्रोह नही कर पाता जितना वह मन ही मन चाता है। लेकिन जब अपने बेटे को जिसे वह आवारा समझता था, उसे विद्रोही के रूप में देखता है तो मन ही मन खुश हो जाता है। लेकिन प्रमोद यह नही समझ पाता है कि पवन अभी जीवन सिर्फ जीने लगा है, मध्यवर्गीय जीवन में उसे करने केलिए अनेक समझौते आगे आयेंगे। शायद वह अपने पिता की उम्र का होगा तब उसकी स्थिति क्या होगी। इसी उपन्यास का भूपत वकील इसका उत्तम उदाहरण है जिसका परिवर्तन देखकर खूद प्रमोद भी चकित होता है -

"प्रमोद को लगा कि भूपत की आँखों में एक आर्द्रता उभर रही है और उस आर्द्रता के पीछे खोये हुए लापरवाह मस्त दिन उसी प्रकार उग रहे है जैसे कोहरे के पीछे से धीरे-धीरे सूर्य उगता है। उस भूपत को पाकर प्रमोद एक आहलाद से भर गया और कचहरी के माहौल में ताज़गी अनुभव करने लगा।

"सो सुकुलजी, मैं जब कचहरी में आया तो मेरी इच्छा थी कि देहात से आनेवाले गरीबों, अभागों और मजलूमों की सेवा करूँ। एक हल्की-सी फीस लेकर सत्य के पक्ष में लडाई लडूँ और कचहरी में न्याय तक पहूँचनेवाली नदी में घाट-घाट पर जो मगरमच्छ बैठे हुए है उनसे गरीबों को बचाऊँ। युवा रक्त था। मेरे ही समान कुछ और युवा लोग थे जो एक सपना लेकर शहर आये थे किंतु क्या कहूँ सुकुलजी, वह सपना कितना बेबुनियाद था, इसका पता कचहरी में शुरु करने के दिनों बाद ही चलने लगा। कुछ घुटे हुए सयाने वकील लोग हमें देखकर हँसते थे और हम लोग बडे गर्व से उनकी हँसियों को ठोकर मारते हुए आगे बढ़ रहे थे। मैं ने और साथियों ने तय किया था कि सही केस ही लिया जाय। केवल लंबी-सी फीस लेकर झूठ को सही न साबित किया जाय।.... लेकिन कुछ नही हो सका, कुछ नही हो सका और नही तो मैं भूखों मरने लगा।"[1]

'अपने लोग' का ही एक ओर चरित्र 'रामजन्म दूबे मध्यवर्गीय समाज का एक ओर प्रतिनिधि है, जो शहर में रहकर भी कट्टरवादी है, नारी

---

1. रामदरश मिश्र - "अपने लोग' - पृ. 37

शिक्षा व प्रगतिशील विचारों से घृणा रखता है। लेकिन जो बिं. लाल को रंडीबाज़ कहता है वही दूबेजी उच्चवर्ग के डॉ सूर्यकुमार के तुलवा चाटता है। आर्थिक उन्नति ही यहाँ उसका भी लक्ष्य है। उसके आदर्श किनारे कर दिए जाते हैं। रामजन्म दूबे जानता है, शहर में किस तरह रुपया कमाया जा सकता है। मुँशी होकर भी वह शहर में रहते हुए बहुत कुछ कमा चुका है, सीधे नही टेढे रास्ते से -

"दूबेजी ही इस मकान के मालिक है। नीचे की मंजिल में प्रमोद रहता है और ऊपर की मंजिल पर स्वयं दूबेजी। ऊपर की मंजिल भी क्या है? एक कमरा है, एक रसोईघर है, बाहर की छत पर कुछ टाट-वाट घेर कर थोडी और आड कर ली है। उसी में अपनी बीवी सात बच्चों और एक बूढे बाप साथ रहते है, वैसे नीचे का मंजिल जिसमें प्रमोद रहता है बहुत अच्छी है - तीन कमरे, ससोई घर, आंगन, अच्छी अलमारियाँ तभी तो दो सौ किराया ले रहे है। प्रमोद को फिर भी दिल्ली की तुलना में बहुत सस्ता ही लगा। सुना है इनका अपना कोई और मकान है उसे भी किराये पर उठा रखा है। ये कितने पुरुषार्थी है? मुंशी होते हुए भी कितना कुछ कर डाला। वाह दूबेजी, एक हाथ से लोगों की जेब पकडे हुए है दूसरे हाथ से हनुमानजी की लंगोटी और दोनों ही खुश है इन पर....."[1]

दूसरी ओर 'दूसरा घर' का गौतम जैसे अध्यापक उनका प्रतिनिधि है जो अपने गाँव से शहर में जीविकोपार्जन केलिए आते हैं, लेकिन वे अपने

---

1 रामदरश मिश्र "अपने लोग' पृ. 58

ओर के या यहाँ के, हो नही पाते हैं। 'बीच के समय' (आदिम राग) का नायक यश उस मध्यवर्गीय युवक का प्रतिनिधि है जो अपने गाँव के निम्न मध्यवर्गीय परिवेश से उबरकर शहर के उच्च वर्ग से जुडना चाहता है। लेकिन यह उसकी विडंबना है कि वह अपनी मिट्टी को चाहकर भी पीछा न छुडा पाता है। अपनी शिष्या और प्रेयसी से जुडने केलिए वह अपने पार कर गये रास्तों को भूलने की कोशिश करता है लेकिन सफल नही हो पाता। यही उसकी त्रासदी है।

इसी तरह अपने अस्तित्व, आदर्श और जीवन यथार्थ से संघर्ष करनेवाला एक चरित्र है 'अपने लोग' का उमेश। लेकिन इस पागलनुमा पात्र के डायरी के पन्नों से ही उसके संघर्ष का उसली रूप ज़ाहिर होता है। मार्क्सवादी विचारधारा पर दृढ विश्वास रखनेवाला यह युवक अपनी प्रेयसी माधवी के प्रति अपना भावनाओं को और अपने रोमानी व्यक्तित्व को दबाने की भी कोशिश करता है। उच्चवर्ग के प्रति विद्रोह और उसी वर्ग के माधवी से प्रेम में उसका व्यक्तित्व दोहरा होकर संघर्ष अनुभव करता है। अपनी जीवन यात्रा में अपने आप को वह हारा हुआ, ढगा हुआ, अकेला महसूस करता है। धीरे-धीरे अहं और यथार्थ की लडाई में उसके मन का नियंत्रण खोने लगता है।

'पानी के प्राचीर' का मलिंद जो अपने गाँव का शिक्षित और प्रगतिशील पिचारधारा का युवक है शहर में आकर एकदम बदल जाता है, गाँव से आनेवाला अपना मित्र नीरु की ओर वह उतना ध्यान नही देता जितना उसे देना चाहिए था। अवसर पाकर एकदम बदल जाता है। यह बदलाव शहर की मध्यवर्गीय मानसिकता का लक्षण है। इतना ही नही कभी उच्चवर्ग में शामिल होकर, अपने वर्ग पर जिसका वह पहले एक हिस्सा था, व्यंग्य करने भी लगता है।

मिश्रजी संवेदनशील उपन्यासकार है, आज के सामाजिक यथार्थ से वे विचलित हुए है। वे समाज की यथास्थिति को ईमानदारी से उभारना चाहते है। एक सीमा तक मध्यवर्गीय बुद्धिजीवि वर्ग के तनावों को अभिव्यक्ति देने में उन्हें सफलता भी मिली है। 'अपने लोग' का प्रमोद कॉलिज अध्यापक और साहित्यकार है उसके मन में गरिबों और शोषितों के प्रति सहानुभूति भी है, लेकिन जनता से जुडने का और अपने लोगों के बीच रहकर उनके सुख-दुखों से एकाकार होने का गुण प्रमोद के व्यक्तित्व में नही देखता है। उमेश, रामविलास आदि लोगों की मदद करने पर भी यह कहा जायेगा कि अपने लोगों से तन्मय होनेवाला व्यक्तित्व प्रमोद का नही है। जनता के प्रति उसकी आत्मीयता सद्भावना से परिपूर्ण है लेकिन दिमागी अधिक लगती है। इसलिए लोगों के प्रति जिस लगाव की बात वह करता है उसमें मध्यवर्गीय बुद्धिजीवि की बड़बोलेपन की बू अधिक है। प्रमोद का चरित्र आज के समाज से कटे मध्यवर्गीय बुद्धिजीवि का यथार्थ है।

**निम्न वर्ग** यह वर्ग स्तरीकरण के सोपान में (आर्थिक दृष्टि से) निम्नतम स्तर पर होता है। इस वर्ग के सदस्यों की आय बहुत कम होती है। इस वर्ग में सेवा करनेवाले श्रमिक, कारिगर, घरेलू उद्योगों के श्रमिक आदि होते हैं। इनके जीविकोपार्जन के साधनों की स्थिति अनिश्चित रहती है। कभी काम मिलता है, कभी नही मिलता है। इनकी आय निश्चित नही होती है।

श्रमिक वर्ग या निम्न वर्ग के लोग ही नगर में सबसे अधिक अभाव ग्रस्त जीवन बिताते हैं। सिर्फ अर्थ का ही नही, कभी कभी आवास, शुद्ध पानी,

Cochin - 682 022

हवा, बिजली आदि का भी अभाव होता है। 'दूसरा घर' उपन्यास में शंकर कमलेश से कहता है -

"यह भी अहमदाबाद ही है दोस्त। यह काँकरिया का पिछवाडा है। इनमें भी आदमी रहते हैं। वे रेंगकर अन्दर बैठते हैं और रेंगकर बाहर आते हैं। लोग समझ लेते हैं कि शहर का अर्थ होता है समृद्धि। लेकिन गरीबी और तकलीफ़ के जितने स्तर शहर में है, उतने गाँव में नहीं। शहर की समृद्धि तो थोडे से लोगों केलिए हैं। ये मिलवाले, बडे-बडे व्यापारी, बडे बडे नेता, बडे बडे वकील, डाक्टर - शहर तो इन्हीं का हैं, बाकी लोग तो शहर के हैं, शहर के शिकंजे में पिसते हुए। शहर न जाने कितनी तरह से उन्हें नाच नचाता है। गाँव में कुछ खाते-पीते लोग हैं, कुछ अभावग्रस्त। यहाँ तो अभाव के न जाने कितने चेहरे हैं। देखो कमलेश जहाँ मैं खडा हूँ वह नरक है किन्तु जहाँ तुम्हारे मामा रहते है उसे देखते हुए लगता है कि हम फिर भी ठीक है और इन झोपडियों को देखकर लगता है, तुम्हारे मामा जैसे लोग भी ठीक से रहते हैं। यहाँ अभाव पैसों का ही नहीं शुद्ध हवा, पानी और खुले वातावरण का भी है। देहात का आदमी कुछ नही तो, खुला आकाश और खुली धरती तो पा लेता है, वह भूखे पेट सो सकता है किन्तु धुएँ और बद्बू में कैद तो हो सकता।"[1]

"बिना दरवाज़े का मकान' की नायिका दीपा घरेलू काम करके अपने अपाहिज पति के साथ जीवन चला रही है उसका सपना है दिल्ली महानगर में सिर छिपाने केलिए अपना एक घर। उस केलिए सुबह से रात तक

---

1. रामदरश मिश्र - "दूसरा घर' - पृ. 45

वह मेहनत करके, पेट काटके एक एक पैसा जुडाती रहती है। आखिर निम्न वर्ग की दीपा का जो घर बनता है वह बिना दखाज़े का ही रहता है। 'बिना दरवाज़े का मकान' उस मजबूर निम्न वर्गीय जीवन का ही प्रतीक है जो महानगरों में असुरक्षित और अधूरी ज़िन्दगी जीने केलिए मजबूर है।

इसी तरह निम्न वर्ग का एक और पात्र है 'अपने लोग' उपन्यास का रामविलास। वह पूरी तरह योग्य होते हुए भी एक सौ चौंतीस रुपये का मास्टर है जिसे महीनों तक वेतन नही मिलता है। जैसे-तैसे ट्यूशन करके एक गन्दे मकान में नारकीय यातनाओं से गुज़रता है। साहुकारों और मकान मालिक की घुडकियाँ सहता है। उसकी अस्थायी नौकरी भी डॉ. सूर्यकुमार के नृशंस व्यवहार से चली जाती है। उसके स्थान पर सूर्यकुमार अपने एक रिश्तेदार को नियुक्त करवाना चाहता था। उधर गाँव में विधवा भाभी का परिवार भी उसपर निर्भर है। घर का खर्च नही चलता है। गाँव में खेत जोने-बोतने का समय आ गया है। घर में बीज नही है। गाँव के गुण्डों ने भाभी के अरहर का खेत काट लिया है फिर भी रामविलास कुछ नही कर पाता, वह अकेला है, असहाय है। लोग कमज़ोर पर वार करते हैं। ताकतवरों से टकराने की हिम्मत नही करते। रामविलास अपनी पत्नी का अन्तिम गहना बेचकर अपने पुत्र का इलाज कराता है। बेटा गुज़र जाता है पर हृदयहीन डाक्टर उसकी लाश के पास खडा तीस रुपये फ़ीस माँगता है। रामविलास वेदना से दहाड उडता है। उस दहाड में पुत्र के खोने के साथ-साथ तीस रुपये खोने का दर्द भी छिपा था। लेखक ने बडी सहानुभूति के साथ इस पात्र की त्रासदी को उभारा है।

## नगर में जाति

समाज शास्त्रियों ने ग्राम और नगरों का भेद स्तरीकरण के आधार पर किया है। नगरों में स्तरीकरण के आधार शिक्षा, व्यवसाय और आय हैं तो गाँवों में जाति प्रथा है। जाति का प्रभाव नगरों में भी है। नगरों में उच्च जाति उच्च वर्ग में तथा निम्न जाति निम्न वर्ग में परिवर्तित हो रही है। नगरों में शिक्षा, पद् व्यवसाय आदि जाति से संबन्धित हैं। उच्च जातियों को ही उच्च शिक्षा, व्यवसाय व आय मिलती है तथा मध्यम एवं निम्न वर्ग में इनका स्तर क्रमशः मध्यम और निम्न मिलता है। एक प्रकार से भारत के नगर भारत के ग्रामों का ही एक विस्तृत रूप है। भारत के शहर और गाँव की सामाजिक संरचनाओं में बहुत अधिक अन्तर नही मिलता है।

शहरी समाज में लोग एक दूसरे को जानते तक नही है। भाग दौड भरी ज़िन्दगी में जाति व्यवस्था के नियमों का पालन करना मुश्किल पडता है। इसलिए जाति भेद को अनदेखा करने केलिए मजबूर है। दूसरी ओर पूँजिवादी सामाजिक व्यवस्था में धन कमाना या आर्थिक लाभ पाना ही जीवन का लक्ष्य है। इसलिए जाति से बढकर वर्ग भेद ही शहरी समाज में अधिक ज़ाहिर होता है।

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था का आधार पहले कर्म था कालान्तर में वह जन्म के आधार पर होने लगा। कुछ जाति या पेशे उच्च माने गये जिनसे अर्थ और अधिकार प्राप्त होता है जो जातियाँ सेवा या श्रम से जुडे पेशे से होती थी वे निम्न मानी गयी। सामंतवादी सामाजिक व्यवस्था में निम्न

जातियों का भरपूर शोषण किया गया। जब सामंतवादी व्यवस्था पूँजीवाद में तब्दील होने लगी तब भी शोषण जारी रहा, सिर्फ शोषण का रूप बदला मगर जाति-श्रेणी के नींवाधार में परिवर्तन नही आया। यह सही है कि जिन पेशों को निम्न जातेवाले करते आये थे उन में कुछ पेशों को आय पाने केलिए उच्चजात वाले अपनाने लगे क्योंकि पूँजिवादी व्यवस्था में पूँजि का महत्व अधिक था। मगर जिन सामंतीय मूल्योंने युगों से भारतीय जनता के मानस का निर्माण किया था वे नही बदले। इसलिए उच्च जाति के लोगों ने आर्थिक लाभ केलिए निम्न स्तरीय कामों को अपनाया पर उनसे जुडी जातियों का तिरस्कार आगे भी करते रहे।

'दूसरा घर' उपन्यास में ऐसी विडंबनाओं का चित्रण है - गंगाराम शास्त्री जो शहर का एक बडे नेता है अपने दो चमचों के साथ होटल में चाय पीने आ जाता है, शंकर और विनोद, से बातें करते करते वह कहने लगा यहाँ का चायवाला भी जाति से कोई नाई-धोबी होगा। प्रवासी चायवाले ब्राह्मण का जातीय अभिमान तब सिर उठाता है -

"आपलोग मुझे तमीज़ सिखा रहे है? इन्हें तमीज़ नही सिखा रहे है जो बिना जाने-बूझे मुझे नई-धोबी बना रहे है। मैं करकरा सरयूपारी ब्रह्मण हूँ"

"तू कुछ भी है, बेच तो चाय ही रहा है। जानता है तू किससे बात कर रहा है।"[1]

---

1 रामदरश मिश्र - "दूसरा लोग" - पृ. 30

गाँव में जिन कामों को नीच समझा जाता है उनके अहमदाबाद जैसे शहर में जीविकोपार्जन केलिए अपनाने में उच्चजातवालों को अब संकोच नही लेकिन अंतर्मन में उच्चजाति का गर्व खो नही पाता।

पूँजिवादी व्यवस्था में सिर्फ उच्च जातिवाले ही नही, निम्न जातिवाले भी शहर में आकर कमा रहे हैं, अर्थ पाने केलिए। पैसा कमाने पर तेली भी सेठ बन जाता है जैसे 'दूसरा घर' का रम्पतिया -

"यह रम्पतिया उन्नाव के एक गाँव का तेली है। वहाँ से पिटकर आया था। यहाँ दर-दर भटक रहा था। मुझसे कहा कि नौकरी दिला दीजिए मैं ने सलाह दी कि नौकरी-वौकरी क्या करेगा, चाय की एक छोटी सा दूकान खोल ले। उसने दूकान खोल ली। दूकान क्या खोल ली जैसे यह चायवाला बैठा है न, इसी तरह फुटपाथ पर बैठ गया। लेकिन साला निकल पडा चालू। एक-एक पैसा बढोरता गया। धीरे-धीरे अपने यहाँ के मज़दूरों को कर्ज़ देने लगा और सूद बटोरने लगा। बस हो गया सेठ।"[1]

नगर के शिक्षित और सभ्य समाज भी जाति, वर्ग आदि की गिरफ्त से मुक्त नही है। ऊपर से प्रगतिशील दिखाने की कोशिश करनेवाले ये लोग भीतर से रूढिमुक्त नही। अपने निजि जीवन में विशेष रूप से 'विवाह' आदि के संदर्भ में अपने ही जाति, बिरादरी की खोज करने लगते हैं। 'दूसरा घर' उपन्यास में दिनेश जो पहले शंकर के साथ चाली में रहता था, संस्कृत का लेक्चेरर होने पर, फ्लैट में रहने लगा उच्च वर्ग के लोगों के साथ मेल

---

1. रामदरश मिश्र - "दूसरा लोग" - पृ. 30

जोल बढाने लगा। उसने अपने नाम के साथ 'वर्मा' भी ल गा दिया। शायद शिक्षित होने पर भी नीच जाति के होने से वह मन ही मन हीन भावना से परेशान है। उच्च वर्ग में तो वह शामिल हुआ। उच्च जाति का मुखौटा भी पहनकर शायद वह उस हीन भावना से मुक्ति पाना चाहता है।

नगरों में क्षेत्रीयता और जाति से बढ़कर वर्ग का वर्चस्व है। इसका प्रमाण 'दूसरा घर' में है। अहमदाबाद के फूटपाथ में शंकर देखता है प्रवासी चायवाले ने अपने मराठी ग्राहक केलिए अपने ही क्षेत्र से आये नौकर को गालियाँ दीं। नगरों की पूँजिवादी समाजिक, व्यवस्था में धर्म, जाति और क्षेत्रीयता से बढकर वर्ग प्रमुख हो जाता है - "वैसे जाति का बोध शहर में आकर फण नही फुफकारता, भीतर-भीतर रहता तो ज़रूर है, किन्तु वर्ग बोध फण फ़ुफकारता रहता है। अब देखो, यह सेठ जिस बच्चे को मार रहा था वह बच्चा हो सकता है उसी की जाति का हो, लेकिन उसके वर्ग का नही है।"[1]

## राजनीति और जाति का मिलीभगत

जैसे सूचित किया गया भारतीय समाज शहर हो या गाँव धर्म, जाति और सांप्रदायिकता से मुक्त नहीं है। इस सच से अवगत होकर ही भारत के राजनैतिक दल भी धर्म और जाति को सत्ता में आने केलिए इस्तेमाल करते हैं। धार्मिक और जातीय संगठन भी इस सौदेबाज़ी में पीछे नही रहते, वे भी राजनैतिक दलों और सत्ता का पूरा फ़ायदा उठाते हैं। इस प्रकार धर्म और राजनीति के सौद्धादिक पक्ष ओर प्रयोगक पक्ष में फ़रक होते हुए भी ये अपने मतलब निकालने के वास्त आपसी समझौतों में शरीक होते हैं।

---

1. रामदरश मिश्र - "दूसरा लोग" - पृ. 64

धर्म और जाति के नाम पर राजनीति सिर्फ विधान सभा या संसद के चुनावों तक सीमित नही है। समाज के हर क्षेत्र में हर संस्थाओं में व्याप्त है। शहरों में शैक्षिक संस्थाओं पर इसका सबसे गन्दा और भीषण रूप दिख रहा है। यहां सैद्धादिक मतभेद से ज़्यादा हर एक दल, गुट अपनी निज स्वार्थ पूर्ति केलिए लड़ता हुआ दिखाई पडता है। हर एक जातीय दलों को वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल करते हुए यह गन्दी राजनीति बहुत गहरी जडें भारतीय समाज में जमा चुकी है।

नगरों में गाँव से ज़्यादा राजनैतिक गतिविधियाँ चलती हैं। शैक्षिक संस्थाओं में सिर्फ छात्र ही नही अध्यापक भी क्षत्रिय, ब्राह्मण, कायस्थ आदि दलों में विभाजित होकर आपस में लडते हैं। प्रत्येक गुट सत्ता पाने एवं एक दूसरे को नीचा दिखाने में बेकरार हैं। गोरखपुर जैसे छोटे शहर में यह राजनीति ज़ोरों पर हैं। 'अपने लोग' उपन्यास का कॉलेज अध्यापक प्रमोद के माध्यम से इस जातिगत राजनीति स्पष्टतः ज़ाहिर है -

"प्रमोद कॉलेज से लौटते हुए बहुत उदास था। उसने सुन रखा था कि इस कॉलेज में ब्राह्मणों और क्षत्रियों के दो दल है। तीसरा कायस्थ गुट भी इधर रहता है, कभी उधर। वही हार-जीत का निर्णायक हो जाता है। मैनोजिंग कमेटी में कभी क्षत्रियों का बहुमत होता है कभी ब्राह्मणों का। मैनेजिंग कमेटी के चेयरमैन है पंडित महेन्द्र चंदा ओझा जो एक नामी वकील है और प्रमुख डोनर है बाबु रामकिशोर सिंह। प्रिंसिपल मदन भी ब्राह्मण है। नियुक्तियों की सिलसिले में ब्राह्मणों और क्षत्रियों का संघर्ष चला करता है। उसीकी नियुक्ति नही हुई होती, यदि इस समय पंडित महेन्द्र चंद्र ओझा

चेयरमैन न होते। वह सोचता है कि यह नियुक्ति न हुई होती तो अच्छा ही रहा होता। दिल्ली के कॉलेजों पर विश्वविद्यालय का सीधा निमंत्रण होने की वजह से कॉलेजों की स्थानीय टुच्चा राजनीति उतना सिर नही उठा पाती।"[1]

जाति पर आधारित यह दलीय पक्षधरता किस हद तक जीर्ण और अनैतिक हो गई है, इसकी भी अभिव्यक्ति इस उपन्यास में हुई है। कॉलेज के फीस माफी का मीटिंका उदाहरण है।

"आज कॉलेज में फीस माफी की मीटिंग थी। कुछ क्षत्रिय प्राध्यापक, कुछ ब्राह्मण प्राध्यापक उस मीटिंग में थे, वह भी एक था। जब वह बैठा तो देखा कि कुछ लड़कों केलिए चेयरमैंन की, कुछ लड़कों केलिए डोनर की, कुछ केलिए प्रिंसिपल की, कुछ केलिए मैनेजिंग कमेटी के एक दूसरे प्रभावशाली सदस्य की सिफारिश मौजूद थी। लड़के आते गये, सिफ़ारिशी कागज़ देख-देखकर उनकी फ़ीस माफी का फैसला होता गया और उसे देखकर बडा आश्चर्य हुआ कि फीस माफी पाने वाले अधिकांश छात्र खाते-पीते अच्छे घरों के है और लोफर है। क्लास में या तो आते नही या आकर बहुत अनुचित रीति से बैठते है। सिफारिशी कोटे से जो जगहें बचा उनकेलिए ब्राह्मण और क्षत्रीय प्राध्यापकों में तू-तू मैं-मैं होने लगी। उसे बडी शरम आयी।"[2]

---

1. रामदरश मिश्र - "अपने लोग" - पृ. 77
2. पृ. 77

## सिफारिश और भ्राष्टाचार के माहौल का चित्रण

नगर भ्रष्टाचार और सिफारिशों का अड्डा है। बिना सिफारिश या जान पहचान के तो शहर में कुछ भी पाना मुश्किल है। राजनीति शिक्षा, स्वास्थ्य, धर्म कोई भी क्षेत्र इससे मुक्त नही है। मूल्यहीनता ही आज समाज का मूल्य बन गया है। स्वार्थ और लाभ से बेहत्तर शहर में और कोई मूल्य नही। हकीकत यह है कि यह शहर का ही नही पूरे भारतीय समाज का मूल्य बन गया है। अनैतिकता के प्रति आवाज़ नही उठाते हैं, अपनी बात आने पर ही रीति-नीति की बात आती है, जब अपना अवसर कोई और छीन लेता है तो हक की बात करने लगते हैं।

'दूसरा घर' उपन्यास में मनोहर नामक दलाल जो खुद तो एक क्लर्क है रुपयों के लालच में कमलेश नामक लड़के को कॉलेज में काम दिलवान गौतमजी से सिफ़ारिश करवाना चाहता है। इसके लिए कमलेश को लेकर प्रो. गौतम का प्रिय शिष्य शंकर से मिलने आता है। तब शंकर कहता है -

.....लेकिन नही, मैं उम्मीदवार इसलिए नही हुआ कि गौतमजी को मेरे लिए रूपलाल पहलवान के नालायक लोगों से जूझना होगा। आप जानते ही है, एक्सपर्ट कमेटी में यदि गौतमजी रहेंगे-रहेंगे इसमें मुझे सन्देह है - तो रूपलाल पहलवान भी चेयरमैन की हैसियत से रहेगा और गवर्निंग बाडी (जिसे उसने बनाया होगा) के कुछ मेम्बर रहेंगे और ये सभी उन लोगों को नियुक्त करेंगे जो उनकी जान-पहचान के होंगे या रूपलाल पहलवान को साष्टांग करते होंगे।"[1]

---

1. रामदरश मिश्र - "दूसरा घर" पृ. 36

भ्रष्टाचार, कामचोरी, अलसता समाज की नस नस में व्याप्त है। आम नागरिक शासकों, राजनीतिज्ञों की निंदा करते समय यह कभी नही सोचते है कि एक नागरिक की हैसियत से वह कितना ईमानदार है। 'बिना दरवाज़े का मकान' उपन्यास के आरंभ में चित्रित नायिका दीपा की बस यात्रा और उसके दौरान प्रस्तुत छोटे छोटे वार्तालाप समाज की इन सच्चाइयों को उन्मीलित करते हैं -

"तू क्या सरकार और समाज से बाहर है? तुम्हीं लोग तो उस सरकार के पुर्जे जो हो भ्रष्ट हो गयी है। तुम लोग अपनी सीट पर कितने घंटे बैठते हो? कितना काम करते हो? हमेशा काम टरकाने के चक्कर में लगे रहते हो। कभी चाय की दूकान पर बैठोगे कभी लॉन पर। कभी कमेंटरी सुनोगे, कभी हडताल करोगे। सरकार तो तुम्हीं लोगों के ज़रिये काम करोगी न!"[1]

**नगरों का नारी जीवन**

नगरों में स्त्रियों की हालत पुरुषों के बराबर तो बिलकुल नहीं है। परंपरा से चलती आ रही पितृसत्तात्मक व्यवस्था की असमानताएँ नारी की ज़िदगी में स्पष्टतः नज़र आती है। वास्तव में भारतीय नगरों की ज़िन्दगी भारतीय गाँवों का विकसित रूप ही है। फिर भी नगरों में हर वर्ग की स्त्री कुछ हद् तक घर से बाहर आयी है, शिक्षा भी प्राप्त करने लगी है। नौकरी भी करती है। व्यापार तथा राजनैतिक क्षेत्रों में भी उसकी भूमिका है। फिर भी

---

1. रामदरश मिश्र - "बिना दरवाज़े का मकान" - पृ. 30

आबादी के आधे हिस्से तक आनेवाली स्त्री का योगदान सामाजिक क्षेत्र में बहुत कम रहा है। क्योंकि परंपरा की सीमा लांधकर परिवार से अलग, अन्य क्षेत्रों में काम करनेवाली औरतें बहुत कम हैं। आज भी कुछ निर्धारित क्षेत्रों को छोडकर राजनीति, विज्ञान और तकनीकी क्षेत्रों में पुरुषसत्तात्म समाज उसे आने नही देता है।

शिक्षा के प्रचार से अवश्य कुछ बदलाव तो ज़रूर आ गये हैं लेकिन मौजूदा पितृसत्तात्मक व्यवस्था को बदलने केलिए यह सक्षम तो प्रतीत नही होता है। नगरों में पर्दा-प्रथा काफी कम हो गई है। बाल-विवाह की प्रथा भी कम हो गई है। प्रेम-विवाह, विधवा-पुनर्विवाह, अन्तर्जातीय विवाह आदि का प्रतिशत नगरों में गाँवों की अपेक्षा अधिक है। फिर भी वांछित सुधार और प्रगति संभव नही हो पाए है। इतना ही नहीं सांप्रदायिक शक्तियों की दखल अंदाज़ी और प्रचार प्रसार से ये दकियानुसी प्रथाएँ फिर एक बार उभर कर आने लगी हैं।

दरअसल नगरों में स्त्रियों की स्थिति उतनी शोभनीय नही कहा जा सकता। प्रत्येक वर्ग के परिवार से लेकर संस्था तक स्त्री को पुरुषसत्तात्मक मूल्यों के ढाँचे में डालकर ही गढा जाता है। अपने प्रति अमानवीय आचरण और भेदभाव को पुरुष वर्चस्व मूल्य दृष्टि के कारण औरत पहचान नही पाती है। परिवार से ही उसका शोषण शुरु होता है। इसमें उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग का कोई भेद नही है।

परिवार से अलग होकर आज भी नारी का कोई अलग मज़बूत अस्तित्व नही है। इसलिए उच्च शिक्षा प्राप्त, कुशल काम-काजी औरत भी

परिवार के बिना अपने आप के अधूरी और असफल समझती है। यानी पुरुषसत्तात्मक पारिवारिक मूल्य गाँवों के साथ नगरों में भी गहराई में जडीभूत है। नारी के कार्य क्षेत्र, बुद्धि विवेक आदि में ज़रूर विकास हुआ है लेकिन परिवार तक में स्त्री-पुरुष समानता का मूल्यबोध उभरकर नही आया है। इसका परिणाम आज भी कामकाजी महिला को दूहरा बोझ उठाना पडता है। एक औसत घरेलू नारी के समान घर का सारा काम संभालना पडता है। साथ ही आर्थिक मदद करनेवाली शिक्षित नौकरी शुदा नारी की भी।

आज भी छोटे शहरों के मध्यवर्गीय परिवारों में औरत को पुरुष का निजि संपत्ति ही माना जाता है। उसका शिक्षित होने का भी सिर्फ यही लक्ष्य है कि बच्चों को पढाने में या नौकरी करके घर की आर्थिक स्थिति सुधारने में मदद करना। आज भी औरत की अपनी स्वतंत्र अस्मिता की परिकल्पना पर ताला लगाया गया है। शहरों के उच्च मध्यवर्गीय पुरुष औरत का क्षेत्र हमेशा घर-परिवार तक ही सीमित रखता है। 'अपने लोग' उपन्यास का एक पात्र है भूपत वकील वह प्रमोद का पुराना मित्र भी है अपना शहर गोरखपुर में नये आये प्रमोद को भूपत अपने घर पर बुलाता है। प्रमोद भूपत के घर की औरतों की हालत देखकर सोचने लगाता है -

"लेकिन इन औरतों का क्या दोष? पूरब के पढे-लिखे लोग भी इन्हें घर में पर्दे की रानी बनाकर रखते हैं तो वे क्या करें? दिल्ली तक में ये पूरब के लोग इन्हें गुडिया बनाकर रखते है। दूसरे प्रदेशों की स्त्रीयाँ पुरुष का आधा काम बंटाकर जीवन यात्रा को सुखद तो बनाती ही हैं। अपने व्यक्तित्व का विकास भी करती है। वहाँ पूर्व यू.पी. और बिहार की मध्यवर्गीय स्त्रियाँ

गुडिया बनकर भार बन जाती हैं और खाना बनाने, बर्तन माँजने तथा गलचौर करने तक इनकी ज़िन्दगी सीमित रह जाती है। गरीब घरों की हुई तो अपनी आर्थिक परेशानियों में उलझी हुई निरुपायता भोगती रहती है, अच्छे खाते-पीते घर की हुई तो पान खाकर दीवारों पर पच्च-पच्च थुकती रहती है, न वे घर साफ रख सकती है, न कपडे। अब यही वकील साहब की कोठी है न, इसे ही देखिए। कैसा कूडाखाना बना रखा है इसे! यह बाहर का कमरा बैठक है यानी ड्राइंग-रुम। खूँटी पर कुछ फटे हुए गंदे तहमद तथा कमीज़े अस्त व्यस्त ढंग से लटका हुई एक कुर्सी पर एक पहनी हुई धोती रखी हुई है तो दूसरी पर उतारा हुआ गंदा चोगा। तख्त पर एक फटी हुई दरी बिछी है जिस पर जगह-जगह स्याही के दाग बिखरे हुए हैं। नौकरानी के दरवाज़ा खोलने पर उसके सामने सीथे आँगन तक का भाग आ गया था - खाटों पर लटकी गंदी चादरें, आंगन में बिखरे हुए जूठे बरतन अलगनी पर औरतों की गंदी साडियाँ और पेटीकोट। अरे क्या करेंगे वकील भूपत इतना बडा घर बनाकर?"[1]

शहर में कामकाजी महिलाओं का जीवन सुरक्षित नही है। जिस समाज में घर से बाहर निकलनेवाली औरतों को इज्ज़त की नज़र से नही देखी जाती, वहाँ घर की मजबूरियों के कारण या अपनी स्वतंत्र अस्तित्व केलिए नौकरी करनेवाली औरतों को अनेक समस्याओं का सामना करना पडता है। औसत भारतीय समाज जो पुरुष सत्तात्मक है, औरत का मुख्य कार्य क्षेत्र परिवार मानता है। परंपरागत मूल्यों के विरुद्ध परिवार से बाहर निकलती

---

1. रामदरश मिश्र - "अपने लोग" - पृ. 14-15

औरत को अपने कार्य क्षेत्र में सहयोग विरले ही मिलता है। ऊपर से उनका भरपूर शोषण भी किया जाता है। शोषण में भी, यौन शोषण अधिक होता है। इसलिए भारतीय शहर हो या गाँव घर के दहलीज पार करती नौकरी पेशा औरत का जीवन असुरक्षित और संघर्षों से भरे हैं।

'बिना दरवाज़े का मकान' उपन्यास की नायिका दीपा अपनी जीविका केलिए शहर में नौकरानी बनी है। काम करनेवाले घरों के मर्दों के व्यवहार से परेशान है। दीपा का यौन शोषण करने की भरपूर कोशिश की जाती है। दीपा अपने एक अनुभव को याद करती है -

"दीपा, तुम इतने दिनों से हमारे यहाँ काम कर रही हो लेकिन मैं भी कितना अंधा था कि तुम्हारी ज़रूरतें नही पहचान सका। मरद बेबस होकर पडा हुआ है और तुम अकेले खट रही हो। पैसों की ज़रूरत तो पड़ती ही होगी।"

कहकर उन्होंने अपनी जेब से रुपयों की एक गड्डी निकाली और उसमें से सौ का एक नोट मेरी ओर बढाया, 'लो ले लो'।

"नहीं साहब, मैं इस तरह के काम नही करती हूँ।" कहकर मैं झटके से भाग आयी थी।"[1]

इसी दीपा को दिन दहाडे दिल्ली जैसे महानगर के एक सुनसान रास्ते से गुण्डे गाडी में उठाकर ले जाने की कोशिश भी करते हैं। असल में

---

1. रामदरश मिश्र - "बिना दरवाज़े का मकान" - पृ. 92-93

दीपा का जीवन, जो लाखों, करोडों कामकाजी महिलाओं के जीवन का प्रतीक है, असुरक्षित है उपन्यास के शीर्षक के समान बिना दरवाज़े का मकान है, जहाँ कोई भी, कभी भी प्रवेश कर सकता है।

'अपने लोग' उपन्यास का एक पात्र है नर्स मंजरी। मंजरी का जीवन भी दीपा से कुछ अलग नही, अपनी छोटी सी ज़िदगी में मंजरी ने बहुत देख-सह लिया है। नर्स की पेशा करनेवाली मंजरी को दो डॉक्टरों के प्रेमजाल में फँसकर यौनशोषण का शिकार बनना पडता है। जीवन के कटु अनुभवों से वह अधिक सतर्क और व्यावहारिक हो गयी है। ज़िदगी में हर कदम वह सोच समझकर रखती है। जब आवारा बि. लाल उसके यौवन और सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसके आगे पीछे घूमता है और अंत में उससे अपनी प्रेम भावनाओं को ज़ाहिर करता है। तब मंजरी को अपने पुराने अनुभव याद आते हैं -

"सुनिए मंजरीजी इस तरह भागिए नही, मैं मर जाऊँगा आपके बिना। मैं कब से तडप रहा हूँ।"

मंजरी खिलखिला पडी। वह ऐसे वाक्य तो बहुत सुन चुकी थी और कितने ही डॉक्टर और मरीज़ उसकी आखों के सामने से गुज़र गये और उसे महसूस हुआ कि दो-एक ज़िन्दगियाँ ज़िदगी की याचना करती हुई उस पर से गुज़र चुकी है और गुज़रने के बाद खुद गरम होकर उसे ठंडी कर गयी है। वह नर्स है न, उस पर ईसाई। बंगाली से ईसाई बनी हुई। यह शहर तो वैसे ही बहुत बैकवर्ड है। फिर वह इसाई से ब्याह का संबध भला कैसे रचने लगा? लेकिन छूत तो ब्याह में है, शरीर भोगने में नही न। उसे याद आये दो डॉक्टर।

दोनों ही नये-नये। दोनों ही ऊँची हिन्दु जाति के। दोनों ने ही अपने नये खून और नये विचारों का मंत्र जप कर उसे पाना चाहा। उसने विश्वास भी किया- लेकिन दोनों ही उसे भोग-भोगकर चले गये, भोगने के बाद वे हिन्दु ही रहे और वह ईसाई की ईसाई रह गयी।"[1]

'उपन्यास का ओर एक पात्र डॉ. सूर्यकुमार वह भी मंजरी को पाना चाहता है। जब से मंजरी उसके क्लिनिक में काम करने आयी तब से, मित्र की बेटी होने पर भी सूर्यकुमार उसके शरीर से आकर्षित होता है। एक रात मरीज़ के घर जाने के बहाने वह मंजरी को गाडी में सुनसान जगह ले जाकर उसके साथ शारीरिक संबध करना चाहता है। मंजरी उस समय टूट जाती है। अपना सारा दुःख और आक्रोश ज़ाहिर करते हुए वह कहती है -

"डॉक्टर साहब, आप मेरे पिता के मित्र थे, मैं अपने को आपकी बेटी समझकर आयी थी। मैं पिताजी के अभाव में अपने को कब से असुरक्षित अनुभव करती थी, कितने पुरुषों ने मुझे अपनी भोग्या बनाना चाहा और मैं असहाय यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ भागती रही। आपके यहाँ आकर समझती थी कि मुझे पिताजी मिल गये और मैं सुरक्षित हो गयी..... कहते कहते उसकी हिचकियाँ बंध गयी, "मेरे विश्वास की रक्षा कीजिए डॉक्टर, रक्षा कीजिए पिताजी, मैं बहुत भटकी हूँ, बहुत भटकी हूँ....."[2]

दीपा, मंजरी आदि पात्र भारत के शहरों की कामकाजी महिलाओं का प्रतीक है, जो असुरक्षा की भावना से ग्रस्त हैं। नारी होने पर हर पल सतर्क

---

1. रामदरश मिश्र - "अपने लोग" - पृ. 138
2. पृ. 322

रहने केलिए मजबूर है। शोषण का शिकार बनने पर भी खुलकर उसका विरोध न करने केलिए मजबूर है।

**शहरों की गन्दगी का चित्रण**

रिश्वतखोरी, जातियता, क्षेत्रीयता, भाई-भतीजाबाद, गन्दी राजनीति खोखला साहित्य, बिगडे शिक्षा संस्थान आदि के कारण शहर की संस्कृतिक परिवेश जिस प्रकार गंदा होता जा रहा है उससे ज़्यादा भौतिक रूप से शहर में गन्दगी दृश्यमान है। बढ़ती आबादी, पर्यावरण को नज़र अन्दाज़ करती विकास-योजनाएँ, नागरिकों की गन्दी दिनचर्याएँ आदि के कारण नगर में गन्दगी बढती जा रही है। सचमुच गन्दगी सिर्फ गरीबी से मात्र जुडी नही है। लेकिन गन्दगी और गरीबी का रिश्ता बहुत पुराना है।

गन्दगी के मामले में सभी भारतीय शहरों की स्थिति को एक जैसा नहीं कहा जा सकता है। गन्दगी का अनुपात उस शहर के स्थानीय और प्रवासी जनता के संस्कृति और सभ्यता से और स्वास्थ्य और सफ़ाई के प्रति उनके नज़रिये से भी जुडा हुआ है। अशिक्षित गरीब जनता में नागरिकों का कर्तव्यबोध उत्पन्न करवाने में शासक और स्वयं सेवी संस्थाएँ अभी तक कामयाब नही हो पाई है।

गन्दगी, बीमारी आदि का रिश्ता वर्ग भेद के स्तर पर देखा जाये तो निम्न वर्ग के आवास स्थान और परिवेश में ही यह अधिक नज़र आती है। दरअसल नगर की संरचना ही उच्चवर्ग केलिए हुई है। यहाँ तक कि सारी सुख सुविधाएँ ही नही, स्वच्छ वायु, जल, मिट्टी भी धन के आधार पर इस व्यवस्था

में हासिल होते है। उच्चवर्ग की सारी गन्दगी भी शहर के उस कोने में फेंकी जाती है जहाँ शहर के सबसे पिछडे वर्ग रहते है। नगर की चालियों और गन्दी बस्तियों की स्थिति सोचनीय है। 'दूसरा घर' उपन्यास में अहमदाबाद नगर के एक गन्दी चाली का जीवंत चित्रण मिलता है -

"चाली क्या थी, दुर्गन्धशाला थी। चालियों के सामने एक गन्दी चौडी नाली बह रही है जिस पर जगह-जगह बैठे हुए बच्चे फारिग हो रहे थे। नाली के बजबजाते पानी में मल तैर रहा था। एक भयानक दुर्गन्ध उठ रही थी। पब्लिक पाखानों की दीवारों पर चिथडे टँगे हुए थे। कुछ सूख रहे थे, कुछ पाखानों में आड करने केलिए थे। मक्खियाँ भिन-भिन रही थीं, और पास में ही एक चाय की दूकान खोली हुई थी जिसमें कुछ खाने पीने की चीज़ें खुली हुई रखी थीं। एक सीधी रेखा में कुछ कमरे बने हुए थे। कमरे क्या थे, मिट्टी से ईंट जोड दी गई थी और उन पर टिन का छप्पर रख दिया गया था और उन कमरों के सामने एक पतला-सा बरामदा चला गया था।"[1]

'अपने लोग' उपन्यास में गोरखपुर शहर का सजीव चित्रण है। यह शहर उत्तर भारत किसी भी एक शहर का प्रतीक बन गया है। इसमें भी अनेक स्थानों पर शहर के गंदे-सडे माहौल का चित्रण है। उदाहरण केलिए-

"रीठ साहब के धर्मशाला की दूकानों पर जवार के कुछ स्थायी कचहरिया मिले-सलाम हुआ। आगे बढा तो सड़क धीरे-धीरे अंधेरे में डूब गयी। दायी और सूखा नाला कितने वर्षों से उसी तरह बरकरार है। उसके तट पर

---

1. रामदरश मिश्र - "दूसरा घर" पृ. 41

खडे होकर लोग पेशाब कर रहे थे। धुएं की कडवाहट आँख में पैढी तो समझ गया टाउन-हॉल वाला मोड आ गया है - अहरा सुलगाये हुए कचहरिया लोग...। सड़क के दोनों ओर गिरा हुआ पानी..... सडता हुआ कीचड..... फिर सड़क और टाउन-हॉल की दीवार के बीच बिखरा हुआ मलमूत्र.... और दूसरी ओर दिन-भर के शोर शराबे के बाद चुप हो गई कचहरी.... उसे लगा कि जैसे षड्यंत्र, झूठ, घूस खोरी, हत्या, बलात्कार-भरा एक दिन कागज़ के पन्नों की तरह फट-फट कर फर्श पर बिखर गया है या एक विराट षड्यंत्र का चुप्पी फटने के पहले धीरे-धीरे साँस ले रही है....."[1]

**निष्कर्षतः** यह कहा जा सकता है ग्राम हो या नगर रामदरश मिश्रजी के उपन्यासों में उसका चित्रण यथार्थ के धरातल पर हुआ है। अपने उपन्यासों के माध्यम से मिश्रजी ने यह ज़ाहिर किया है कि वे मात्र ग्राम संवेदना के उपन्यासकार नही है। आंचलिकता के दायरे से बाहर निकलते हुए, समाज की समस्याओं को प्रस्तुत करने में वे सफल हुए है। नगर जीवन के चित्रण में, नगर के प्रवासी जीवन पर वे अधिक ज़ोर देते है। फिर भी स्वातंत्र्योत्र भारतीय नगरों की अनेक ज्वलंत समस्याओं को मिश्रजी ने अपने उपन्यासों के द्वारा पाठकों के सामने रखा हैं। इससे उनके सामाजिक उपन्यासकार की छवि उभरकर आयी है। नगर समाज के चित्रण करते हुए उन्होंने अपने 'सामाजिक प्रतिबद्धता' को एक रचनाकार के रूप में निभया है।

.....🕮.....

---

1. रामदरश मिश्र - "अपने लोग" पृ. 99

# चौथा अध्याय

# मिश्रजी के उपन्यासों के प्रगतिशील आयाम

# चौथा अध्याय

# मिश्रजी के उपन्यासों के प्रगतिशील आयाम

सामाजिक यथार्थ के प्रतिक्रिया स्वरूप लेखकों ने सामाजिक बदलाव के अपने रूझानों को अपनी रचनाओं के माध्यम से स्पष्ट किया है। आज़ादी के पहले की रचनाओं में गुलामी से मुक्ति केलिए अवश्यंभावी संघर्ष का चित्रण है। इस संघर्ष का संकेत आज़ादी के बाद के साहित्य में, खासकर उपन्यास साहित्य में मिलता है। आज़ादी से कोई खास फ़रक जन सामान्य को नही हुआ। शोषण पहले की तरह जारी था। यह शोषण एक तरफ़ सामन्तवादी जीवन दृष्टि का परिचायक था तो दूसरी तरफ़ नवीन पूँजीवादी मानसिकता का नतीजा भी था। इन दो स्थितियों के विरोध में आज़ादी के बाद का उपन्यास साहित्य 'सामाजिक बदलाव' को बेहत्तर परिप्रेक्ष्य में प्रक्षेपित कर रहा था।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकारों की संवेदनशीलता पर आधुनिक मानवतावादी दर्शनों और विचारों का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। ये दर्शन साहित्यकार की रचनादृष्टि को प्रभावित ज़रूर करता है। बेहतर सामाजिक व्यवस्था के संकेतों को रचनात्मक स्तर दिये जाने के पहले कही न कही दर्शन और विचरधाराएँ प्रेरणा स्रोत के रूप में रचनाकारों के मस्तिष्क को अवश्य मथती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उपन्यासकारों को प्रभावित करनेवाले प्रमुख दार्शनिक है गाँधी, मार्क्स और फ्रायड। इनमें सामाजिक और प्रगतिशील

उपन्यासकारों को सबसे अधिक प्रभावित करनेवाले दर्शन गाँधी और मार्क्स के है। गाँधीवादी समाजवाद और मार्क्सवादी समाजवाद दोनों का ही अंतिम ध्येय सामाजिक और आर्थिक विषमता से पीडत मनुष्य जाति को अन्याय व अनाचार से मुक्ति दिलाकर सुख, संतोष और शांति प्रदान करना है। नवीन समाज रचना केलिए मार्क्सवादी सशत्र क्रान्ति को मान्यता देता है तो गाँधीजी के कार्यक्रम अहिंसा पर आधारित है। गाँधीवाद पर स्वतंत्रता के बाद भारतीय जनता की आस्था कम होती गयी।

**प्रगति शील उपन्यास साहित्य**

प्रगति शील साहित्यिक आँदोलन के इतिहास का 'प्रगतिशील ेखक संघ' के संगठन से गहरा संबन्ध है। लेखकों के इस संगठन के बनने पर शिक्षित मध्यवर्ग ने आगे बढ़कर उसका स्वागत किया। विदेशी दासता और सामंती व्यवस्था के नीचे छटपटाती भारत की उत्पीडित जनता सन् 1930 के बाद संघर्ष के जिस दौर से गुज़री उसमें प्रगतिशील बुद्धिजीवियों के संगठन की अत्यधिक भूमिका रही थी। उनमें अनेक प्रकार की विचारधारा और संस्कार के बुद्धिजीवी थे। प्रायडवादी, मार्क्सवादी, सोश्यलिस्ट और गाँधीवादी आदि। प्रगतिशील आँदोलन विश्व के फासीवाद विरोधी आँदोलन का भी एक अंग था। वह ज़माना दरअसल साम्राज्यवाद, सामंतवाद और फ़ासिस्ट विरोधी संघर्ष का युग था।

उपन्यासकारों की समाजोन्मुखी और प्रगतिशील जीवन दृष्टि पूर्व प्रेमचन्द युग में उपदेशात्मकता एवं समाजसुधार की भावना के निरूपण तक सीमित थी। वह तिलस्मी, मनोरंजन प्रधान व जासूसी प्रधान उपन्यास लेखन में

उलझ गई थी। प्रेमचन्द ने समाजोन्मुखी दृष्टि से तत्कालीन उपन्यास लेखन को मंडित किया। उनके बाद स्वातंत्र्योत्तर स्थितियों से लेखकीय जीवन दृष्टि में उतार चढाव आये।

प्रगतिशील साहित्य की विषयवस्तु तत्कालीन भारतीय जीवन रही थी। उसका सैद्धांतिक पक्ष मार्क्सवादी विचार धारा तथा अन्य नये प्रगतिशील विचारों से प्रभावित रहे थे। इस प्रगतिशील धारा ने सामाजिक अन्याय को मिटाने केलिए, वर्गवादी चेतना को जगाने का प्रयत्न किया। प्रगतिशील साहित्य मार्क्सवादी विचारधाराओं से प्रभावित तो अवश्य हुआ, किन्तु वह सर्वथा विदेशी वस्तु नही बना रहा। भारतीय देश-काल के अनुरूप उसका निजी अस्तित्व भी है। प्रगतिशील साहित्य भारतीय सामाजिक जीवन से उत्पन्न साहित्य की एक वैचारिक दृष्टि है, जिसका मूल्यांकन सिर्फ मार्क्सवादी चिन्तन के अन्तर्गत नही किया जा सकता। उपन्यासकारों ने भारतीय जनता की बद्हाली और बेकसी को अपनी नंगी आँखों से देखा। भारत के सर्वहारा-वर्ग की ज़िन्दगी को नज़दीक से देखकर ही हिन्दी के प्रगतिवादी उपन्यासकारों ने अपने लेखन में प्रेरणा प्राप्त की। प्रेमचंद, रेणु, यशपाल आदि लेखकों ने तो सबसे पहले भारतीय जन-जीवन को गहराई से देखा, तब कहीं उसमें मार्क्स के सिद्धांतों की अनुरूपता ढूँढी। शोषण और उत्पीडन से चीत्कार करती धरती की वेदना को प्रभावपूर्ण ढंग से व्यंजित करना और क्रांति केलिए मशाल जलती चलनेवाली सर्वहारा की चेतना को उद्बुद्ध करना ही हिन्दी के प्रगतिवादी उपन्यासकारों का परम लक्ष्य रहा है। अतः उपन्यासों में अपने देश समाज की परिस्थितियों के अनुकूल प्रगतिवादी दृष्टि बहुत कुछ स्वाभाविक रूप से ग्रहण होती चली है।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में अपने देश समाज की परिस्थितियों के अनूकूल प्रगतिशील दृष्टि बहुत कुछ स्वाभाविक रूप से ग्रहण होती चली है। फलतः हिन्दी के उपन्यासकारों ने अपनी कृतियों में समाजवादी यथार्थ की अभिव्यक्ति मुक्त भाव से की है। इस अभिव्यक्ति केलिए जनता में उपन्यासकार की गहरी पैठ का होना जितना आवश्यक है, उतना आवश्यक उसका मार्क्सवादी होना नही। जनता में गहरी पैठ के बिना कोरे मार्क्सवादी विचारों की खाल ओढनेवाला लेखक बनने के बजाय सच्चे प्रगतिवादी उपन्यासकारों ने सबसे पहले सामाजिक यथार्थ चित्रण के दायित्व को सफलतूपूर्वक निभाना पसंद किया तदुपरांत मार्क्स के समाजवादी सिद्धांतों की भी गहरी परख की।

**मिश्रजी के उपन्यासों के प्रगतिशील आयाम**

हिन्दी में प्रगतिशील उपन्यास लेखन की परम्परा का आरंभ प्रेमचन्द से हुआ, लेकिन प्रगतिशील विचारों को ज़ोरदार वाणी प्रदान करनेवाले उपन्यासकार अत्यधिक नही दिखाई देते। प्रेमचन्द के बाद निराला, यशपाल, रंगेय राघव, नागार्जुन फणीश्वरनाथ 'रेणु', राहुल साँकृत्यायन, अमृतराय, भीष्म साहनी अमृतराय, भैरवप्रसाद गुप्त, जगदीश चन्द्र आदि इस क्षेत्र में प्रमुख रहे।

हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों ने प्रगतिशील आन्दोलन को पुरस्सरित किया है। रामदरश मिश्रजी स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास लेखन में एक आँचलिक उपन्यासकार के रूप में अधिक मशहूर है। उन्होंने बडे विश्वास के साथ उपन्यासों में ग्रामीण अंचल के 'सर्वहारा-वर्ग' के पात्रों, उनकी विविध उलझी हुई समस्याओं, सामाजिक और प्राकृतिक परिवेश के चित्र अंकित किये।

"आँलिक उपन्यास अंचल के समग्र जीवन का उपन्यास है। आँचलिक लिखना मानों हृदय में किसी प्रदेश की कसमसाती हुई जीवनानुभूति को वाणी देने का अनिवार्य प्रयास है।"[1]

मिश्रजी हमेशा प्रगतिशीलता और यथार्थ बोध से जुडे रहे है। उन्होंने अँचलों के जनजीवन को चित्रित करते हुए अत्यन्त यथार्थवादी दृष्टि अपनाई है। जनजीवन की आर्थिक विषमताओं, सामाजिक स्थितियों और लोक-संस्कृति के यथार्थ चित्रण में उन्होंने काफी सतर्कता बरती है। मिश्रजी के सभी उपन्यासों में चाहे वह आँचलिक हो या अनाँचलिक, उन्होंने बडी ईमानदारी से भारतीय जनसाधारण की मूकवाणी को मुखरित किया है तथा समाज में पूँजीवादी व्यवस्था से उत्पन्न जनता की आर्थिक एवं सामाजिक परेशानियों को ज़ाहिर किया है। अतः जनसाधारण के जीवन के प्रत्येक पक्ष का चित्रण करनेवाले उनके उपन्यासों में प्रगतिशीलता के विविध तत्वों की खोज सहज रूप में की जा सकती है।

**मिश्रजी के उपन्यासों में व्यवस्था की अमानवीयता का चित्रण**

मिश्रजी के उपन्यासों में चित्रित भारत स्वातंत्र्योत्तर भारत है। सामंतवादी युग से नव पूँजीवादी युग की ओर परिवर्तित भारतीय समाज है। सामंतीय मूल्यों का विघटन हो रहा था और उनकी जगह पूँजीपति अपने मूल्यों की स्थापना में लगे थे। दोनों में मानवीय मूल्यों का कोई स्थान नही था। समाज में असमता, भेदभाव, वर्ग वैषम्य आदि पहले के ही तरह बरकार था।

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा" - पृ.190

फ़रक सिर्फ इतना था कि शोषकों का मुँह बदला गया, बस गरीब और शोषित जनता की मुक्ति दूर थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गाँव के लोग सुनहले भविष्य की प्रतीक्षा में थे। लेकिन सामंती व्यवस्था और ब्रिटिश नौकरशाही के कारण ग्रामजीवन का पिछड़ापन कम नही हुआ। अविकसित राष्ट्र को विकास पथ पर ले जाने केलिए पंचवर्षीय योजनाओं का आयोजन किया गया। इसके तहत साधारण जनता की आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाना था, लेकिन आज़ादी के बाद भारतीय जन जीवन की स्थिति विचित्र हो गई प्रजातंत्र की दुहाई देते हुए उसका दुरुपयोग, राजनेताओं बुद्धिजीवियों और साहित्यकारों के बीच अलगाव, सत्ता में और राजनैतिक दलों में पूँजिपतियों का प्रवेश, प्रजा और नेताओं के बीच अंतर आदि ने मिलकर जीवन को एक विचित्र सा अर्थ प्रदान किया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व नेताओं में जैसा उत्साह था, त्याग की जैसी भावना थी और कार्य एवं दायित्व के प्रति जो अनुराग था, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् आकस्मात् ही वे सब लुप्त हो गये और उनमें से अधिकांश स्वार्थ वृत्ति में लग गये।

स्वातंत्र्योत्तर भारत की बूर्ज्वा व्यवस्था में गरीब श्रमिक वर्ग का शोषण हो रहा था, अपने श्रम का उचित मूल्य पूँजिपति समाज में मिलना मुश्किल हो गया क्योंकि पूरी व्यवस्था पूँजि और पूँजीपति केन्द्रित थी।

पूँजिवादी व्यवस्था का अमानवीयता के अनेक चित्र मिश्रजी के उपन्यासों में प्राप्त होते है। 'पानी के प्राचीर' में नीरु गाँव की गरीबी से तंग होकर शहर के मिल में काम करने लगा। वहाँ से भी शोषण का शिकार होना

पडता है। श्रम का उचित मूल्य उसे नही मिलता है। अपना पेट काटकर उसे अपने घर रुपय भेजने पडते थे। शहर से वापस गाँव, अपने घर आने पर माँ उसकी हालत देखकर स्तब्ध रह जाती है -

"नीरु ने आज सुबह ही सुबह माँ के हाथों पर हफ़्ते-भर की तनख्वाह रख दी थी इसलिए खाने-पीने का इन्तज़ाम हो गया था। नीरु ने खाना खाते समय कपडा निकाला तो माँ स्तब्ध रह गयी। हड्डियाँ निकल आयी थीं, नसें उभर गयी थीं। माँ ने एक बार हफ़्ते-भर की तनख्वाह का हिसाब लगाया, फिर नीरु की हड्डियाँ को गिना। कुछ कह नही पा रही थी।"

"नीरु, तुम्हें कितनी तनख्वाह मिलती है?" माँ का स्वर था।

"आठ आने रोज़ माँ!"

"तीन रुपये तो तुमने घर पर दे दिये। आठ आने में एक हफ़्ता कैसे काम चला होगा?" गीले स्वर में माँ ने पूछा।

"चल जाता है माँ, चल जाता है। तुम काहे को चिन्ता करती हो मिल में सामान सस्ते मिल जाते है।"

माँ ने नंगी वास्तविकता के अधिक अनावृत होने के भय से बात अधिक नही बढाई। नीरु खा-पीकर लेट गया। माँ उसकी हड्डियों को देखती रह गयी।"[1]

---

1 डॉ. रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" - पृ.121

'बिना दरवाज़े का मकान' में भी व्यवस्था की अमानवीयता के की उदाहरण मिलते हैं। व्यवस्था में अपनी जीविका चलाने केलिए दीपा मज़बूर है। वह उस श्रमिक वर्ग की प्रतिनिधि है जो रोटी केलिए कभी कभी झूठ बोलने केलिए भी मजबूर हो जाती है। वह चाहती तो झूठ नहीं बोल सकती है लेकिन सच से उसकी भूख और गरीबी दूर नही हो जाती है -

"हाँ आज ज़्यादा ही देर हो गयी आठ बजे बीबीजी ने बुलाया था, नौ यही बज गये। हाँ वह झूठ बोली थी। अस्पताल थोडे ही न जा रही है, वह तो कैंट जा रही है एक शादी में काम करने, जिन-जिन के यहाँ काम करती है, सबसे झूठ बोल आयी है कि उसका मरद अस्पताल में है, उसे रोज़ जाना पड़ता है, इसलिए काम पर नही आयेगी। झूठ हाँ झूठ न बोले तो कोई आसानी से छोडेगा? पहले वह झूठ न बोलती थी और उसे धीरे धीरे लगने लगा झूठ बोले बिना ज़िन्दगी नही चल सकती। सच बोलकर तो आदमी तेली के बैल की तरह जुता रहे, और एक ही घेरे में सुबह से शाम तक जुआ कंधे पर डाले चक्कर लगाता रहे, कुछ होने जाने का नहीं"[1]

यहाँ दीपा चाहती तो नही कि वह झूठ बोले लेकिन हालातों की वजह मजबूरन वह व्यवहारिक होती जा रही है। यह एक व्यक्ति का नैतिक पतन है लेकिन इसका ज़िम्मेदार सिर्फ दीपा नही पूरी सामाजिक व्यवस्था है, जहाँ श्रमिक महिला को जी तोड़ मेहनत करने पर भी जीवन को आगे चलाने केलिए झूठ का सहारा लेना पड़ता है। दीपा दिल्ली जैसे महानगरों में बसे हज़ारों लाखों श्रमिकों की प्रतीक है।

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "बिना दरवाज़े का मकान" - पृ.10

बूर्ज्वा व्यवस्था में सत्ता और धन का निकट संबध है, जो धनिक है, वे ही सत्ताधारी बनते हैं। असली प्रतिभा की पहचान इस व्यवस्था में नही होती। यहाँ रिश्वत खोरी, भाई-भतीजावाद का बोलबाला है। यहाँ जो असली हकदार है, अक्सर उसे अपने हक से दूर किया जाता है। 'अपने लोग' उपन्यास का एक प्रमुख चरित्र पागल उमेश इसकेलिए उत्तम उदाहरण है। उसकी असली प्रतिभा का तिरस्कार हुआ, जिसके कारण उसके 'अहं' को चोट पहुँची, वह मानसिक संतुलन खो बैठता है। उमेश की डायरी से -

"अब कॉलेज मुझे काट खाता था। उस कॉलेज में मैं एक क्लर्क की हैसियत से काम करुँ और एक मामूली सेकंड क्लास का बोदा क्लर्क लेक्चरर बन जाय, यह सहते नही बनता था। प्रिंसिपल, हिन्दी विभागाध्यक्ष और बहुत से लोग मुझे घृणित लगते थे, इन सबने मिलकर न केवल मेरी प्रतिभा का अपमान किया है बल्कि मेरी दुनिया भी उजाड दी है। मेरी इच्छा हो रही थी कि इन सबसे टकराऊ और इन्हें चूर-चूर कर दूँ। ये सब मेरे सामने पिद्दी है। मैं महान् प्रतिभा लेकर पैदा हुआ हूँ। इन पिद्दियों को मेरा अपमान करने का हक किसने दिया? चारों ओर मेरा यश है। मेरी कविताएँ सम्मानित होती है, अच्छी-से-अच्छी पत्रिकाओं में छपती हैं। जब मैं बोलता हूँ तो लोग मंत्र-मुग्ध होकर सुनते हैं। मैं ने इतने अच्छे अंको से बी.ए, एम.ए किया है। मैं इस कॉलेज में क्लर्क बनकर रहूँ? ये पिद्दी-पिद्दी लोग मेरे ऊपर लेक्चरर बन जाएँ। नहीं यह सहा नही जा सकता। मेरा मन टूट जाता है इस परिवेश में आते ही। तो क्या नौकरी छोड दूँ? लात मार दूँ? साली क्लर्की पर और इन

पिद्दी व्यवस्थाधारियों पर? तब फिर? तब फिर? खाऊँगा क्या? घर पर क्या रखा है? और मुझे बार-बार सूरदास की कविता याद पड़ जाती -

जैसे उडि जहाज़ को पंछी, उडि जहाज़ दै आवै।"[1]

उमेश की डायरी के इन वाक्यों में उसका संघर्ष व्यक्त है। अपनी प्रतिभा के तिरस्कार से ज़्यादा अपने से कम प्रतिभावान् आदमी को लेक्चरर पद् मिलने से उसका अहं घायल हुआ है। वर्ग भेद का एहसास बूर्ज्वा व्यवस्था में इतना गहरा है कि स्वयं अपने को समाजवादी घोषित करनेवाले उमेख भी क्लर्क और लेक्चरर में बहुत ज़्यादा फ़रक मानता है।

मिश्रजी की सहानुभूति हमेशा शोषित वर्ग के प्रति रहा है। समाज में शोषण सिर्फ वर्ग के आधार पर ही नही लिंग के आधार पर भी होता है। नारी के प्रति इस भेद-भाव का चित्रण मिश्रजी ने अपने कई उपन्यासों में किया है। 'थकी हुई सुबह' की नायिका लक्ष्मी इस भेद-भाव के खिलाफ़ संघर्ष करती दिखाई पड़ती है। लिंग के आधार पर नारी का शोषण और उसके प्रति भेद जो भाव सामंती युग में बरकरार थे आज बिना किसी खास परिवर्तन के इस पूँजीवादी युग में भी चले आ रहे है। लक्ष्मी अपने बचपन को याद करते, लड़का-लड़का के प्रति समाज के दृष्टिकोण को यों परखती है -

"बेटेजी दूध नहीं पियेंगे। वह बुदबुदायी। एक उसका बचपन था - दूध केलिए तरस गयी। माँ के दूध के बाद उसे कभी दूध मिला हो याद नही, उस तो क्या उसके भाई को भी कहाँ मिला? हाँ उसके गाँव में रिवाज़ था कि

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "अपने लोग" - पृ. 315

दूध धी खाने का अधिकारी बेटा ही होता था। उसे घर-गृहस्थी का जुआ खींचने की ताकत चाहिए। लड़कियों केलिए तो कहा जाता कि क्या हरे हेंगा चलेंगी (क्या हल हेंगा खींचेगी?) यह बात दूसरी है कि दो - एक घरों को छोड़कर किसी घर के बेटे को भी दूध-धी नसीब नही होता था। फिर लड़कियों की बात ही क्या?"[1]

## आम आदमी की निरुपायता एवं विवशता

मिश्रजी के उपन्यासों में जनसंघर्ष को केन्द्र में रखा गया है। उसकी परिणति का संकेत भी मिलता है। संघर्ष की जिन स्थितियों से क्रान्ति की प्रक्रिया गुज़रती है, उन सबका निचोड, संघर्ष के स्वरूप को निर्धारित करता है। परिणाम चाहे शोषितों की विजय या पराजय हो या विजय की संभावना के संकेतो में हो, सामाजिक क्रान्ति अपने एक निश्चित पडाव को पूर्ण करती है। मिश्रजी के उपन्यासों में क्राँन्ति की संभावनाओं का संकेत मिलता है। जन संघर्ष की तीव्रता का चित्रण इन उपन्यासों का मुख्य लक्ष्य रहा है। इनमें से गुज़रकर ही क्राँन्ति की संभावनाओं का एहसास हो सकता है। शोषण, शोषण की साजिशें, शोषितों में अपने पर होते ज़ुल्मों के प्रति सजगता आदि सारे सन्दर्भ इन उपन्यासों की लेखकीय वैचारिक भूमिका में निहित है। इसलिए इनका रचनात्मक विस्तार जनसंघर्ष के मुकाम से शुरु होता है और अन्त संघर्ष के परिणाम में।

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "थकी हुई सुबह" - पृ. 28

'पानी के प्राचीर' में पाण्डेपुर गाँव के छोटे-बडे, अमीर गरीब, ऊँच-नीच, ठग-मुकदमेबाज़, मास्टर, खेतिहर आदि तमाम तरह के लोगों की एक जमात है जो समय और इतिहास, शोषण और बगावत से टकरा रही है। उपन्यास का आरंभ गाँव के 'होली' के रंग से शुरु होता है। उसके साथ मिश्रजी गाँव की एक कटु वास्तविकता को भी दर्शाते है। होली जलाने केलिए गरीबों की झोपडियाँ को लूट रहे हैं, उसके विरुद्ध बोलने पर जो गरीब है, छोटी निम्न जाति का है इसलिए उसे मारते पीटते है।

होली में झोपडी के साथ गरीब रामदीन को भी चारपाई सहित डाल दिए जाते हैं। रामदीन होली जलाते वक्त भी वहाँ से हटता नही और जब लोग उसे निकालना चाहते है तो वह सत्याग्रह की भाषा में कहता है -

"मुखिया बाबु किस लिए निकलूँ। बाल बच्चों को भगवान् ने छीन लिया, जो रही-सही झोपडी थी उसे आपके इन राजकुमारों ने उजाडकर होली मैया में डाल दिया। अब इससे बढ़िया चिता कहाँ मिलेगी, आज आप लोगों को अशीस देती हुई सांस-सांस उड़ जायेगी"[1]

रामदीन के इस कथन में सत्याग्रह, करुणा और विरोध के वे सारे तत्व हैं जिन्होंने गाँधी के नेतृत्व में स्वतंत्रता केलिए संघर्ष किया था। हालांकि स्वराज्य की कोई निश्चित धारणा गाँववालों के मस्तिष्क में पैदा नही हो सकी, मगर गाँधीजी के स्वाधीनता आन्दोलनों की खबरें से जो माहौल पैदा हो गया था उसका असर गाँव तक पहुँचा ज़रूर था। 'पानी के प्राचीर' में शोषित समाज

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" - पृ. 12

की पीडा का मर्म तो है लेकिन शोषण की ताकतों को पूर्णतः पहचानते का एहसास नही कराते इसलिए पाठकों के मन में उन शक्तियों के खिलाफ़ तीव्र घृणा या आक्रोश का भाव उतना पैदा नही हो पाता जितना होना चाहिए था। मिश्रजी व्यक्ति या समाज-जीवन की सच्चाई को उसी रूप में चित्रित देखना चाहते हैं जिस रूप में उन्होंने उसकी धारणा बना ली है। वह अधिक गहरा है। इसकी व्यंजना सांकेतिक रूप में हुई है। हर स्तर पर अन्याय और शोषण की यातनाओं को झेलता नीरु ज़मीदार गजेन्द्रसिंह की नौकरी करने केलिए मजबूर होता है।

सारी स्वतंत्रता आन्दोलन को मिश्रजी ने ग्रामीण जनवादी विचारधारा से जोडा है और इस ज़मीन पर 'नीरु' के चरित्र का विकास कराने का प्रयत्न किया है। जब सन् 1942 में आज़ादी की लडाई तेज़ होती है उस समय भी नीरु नारों की भीड़ से दूर होकर क्रान्तिकारियों से गुप्त बातचीत करता है। उनसे कहता है कि चूँकि वह प्रतिक्रियावादी ज़मीन्दार गजेन्द्र सिंह का कारिन्दा है इसलिए सीधे दल के साथ नहीं जुड़ सकता। वह यह भी कहता है कि आप लोग स्टेशन फूँकिये वह बाद में स्टेशन के रक्षक के रूप में आयेगा पर तब तक क्राँन्तिकारियों को हट जाना चाहिए। स्पष्ट ही नीरु का चरित्र दुहरा है। वह व्यवस्था से टकराता है और व्यवस्था में बना रहना भी चाहता है। वह अपने परिवेश की विवशताओं के परिणाम स्वरूप ऐसा बना है। नीरु अभावों से मुक्त होने केलिए धीरे-धीरे गन्दे समझौते की गिरफ़्त में फँसता जाता है। गहरे सामाजिक विवेक और यथार्थ की सही पहचान के बावजूद नीरु भी शोषण के यंत्र का पुर्जा बन जाता है। लेकिन यह बात भी नही कि उसके अंदर की

मानवीय संवेदना बिलकुल ही सुख गयी हो। नीरु अपने आप को उस पकड से मुक्त तो कर लेता है लेकिन बहुत बडे आत्मसंघर्ष के बाद। अपने भाई केशव द्वारा आलोचित होने पर फिर उसके भीतर सोया हुआ आदमी जगता भी है -

"केसु तुमने मेरी आँखों के आगे से अंधकार हटा दिया। मैं हमेशा ऐसा नही था केसु! पहले यदि भूल से किसी किसान को एक चपत मार देता था तो रात-भर रोता था, इधर पता नही एकाध साल से मुझे क्या हो गया, कि मैं अपने को भूल गया। इन्सानियत भूल गया, रह गया राक्षस के रूप में....। पता नही मुझे क्या हो गया है इन दिनों! तुम मानो केसु, इन किसानों की दशा देखकर मुझे अपने दिन याद हो आये है। मुंशीजी द्वारा उन्हें मार खाता हुआ देखकर दो-दो दिन तक मैं तड़पता रहा हूँ। इनके भूखे परिवारों की याचना-भरी आँखों मेरे कलेजे में पैठ गयी है। मैं ने कितनों की बकाया लगान छोड़ दी है.... कितनों को इस जुल्मी ज़मीदार से बचाया है, किन्तु नही मालूम, मुझे इन दिनों क्या हुआ जा रहा है? मुझे लगता है, ज़मीदारी दरबार की अत्याचारी छाया मुझे अनजाने ही कसकर चूसती जा रही है। कई बार सोचा इसे छोड-छाडकर कहीं निकल जाऊँ, जहाँ आदमी की तरह रह सकूँ। परन्तु आदमी की तरह रहने लायक जगह कहाँ छूटी है केसू....? फिर भी मैं नहीं चाहता कि इन गरीब किसानों पर अत्याचार करूँ.... किन्तु.... किन्तु एकाध साल से जैसे किसी ने मेरी संवेदनाएँ, निचोड ली हो। मैं दुनिया के प्रति अंधा हो गया एक क्रोध भाव से, एक प्रतिक्रिया के भाव से.....।"[1]

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर' - पृ. 215

ऐसी आत्मालोचना के साथ नीरु अपने भाई केशु से वायदा भी करता है - "विश्वास मान केशु अब तेरी पढ़ाई के रुपयों में किसानों के रक्त की गन्ध नही आयेगी"[1] वास्तव में नीरु उस संघर्ष का प्रतीक है जो प्रगतिशील बनने केलिए किसी समाज या व्यक्ति को करना पड़ता है। मिश्रजी ने इस संघर्ष को जगाते हुए प्रगतिशीलता की संभावनाओं को जगह देने की कोशिश की है।

सामाजिक व्यवस्था की कठोरता और अमानवीयता को उसी रूप में दिखाने का प्रयत्न मिश्रजी ने किया है। वे उन लोगों में से नही जो समस्या का सरलीकरण करके अपनी अंतर्द्वंद्व और बाह्य संघर्ष से मुक्ति पा लेते हैं। वे समस्या को बढ़ा-चढाकर या अकारण उलझाकर भी प्रस्तुत नहीं करते। वे अनुभव और विचार दोनों ही स्तरों पर अपने सृजन के दायित्व की गंभीरता का निर्वाह करते है। उपन्यासों में स्वातंत्र्योत्तर भारत के आम आदमी की विवशता एवं निरुपायता का चित्रण से पाठकों के मन में नृशंस यथार्थ का बोध ही नहीं उससे लडने के विचार भी उत्पन्न होते है। 'जल टूटता हुआ' में हफ़्ते में एक बार लगने वाले गाँव के बाज़ार के सजीव चित्रण से स्वातंत्र्योत्तर भारत के गाँवों की यथार्थ तस्वीर ही उभर आई है -

"छुट्टी हो गई हैं, लड़के बाज़ार में घूम रहे है। मिट्टी के तेल की सी गंध पूरे बाज़ार से फूट रही है। सामने हलवाइयों की दुकानों खुली हैं, जिनके गट्टों बनाशों, पेडों और लड्डुओं पर हड्डों की भीड़ बजबजा रही है। भूख से आतें दुःख रही है, लड़के बार बार हलवाइयों की दूकान का चक्कर काट रहे हैं, हड्डे मिठाइयों का रस ले रहे हैं, बच्चे उन्हें देखते है और

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" - पृ. 216

जीभ चटखार लेते है, एक लड़का ताक-तूक कर धीरे से कुछ गट्टे ले भागता है। साथियों के बीच अपनी विजय के गर्व से फूला जा रहा है। दूसरा लड़का भी अनुकरण करता है, किन्दु हलवाई उसे पकड़ लेता है और भूख से पीडित चेहरे पर जलटते हुए दो-तीन चांटे जड़ देता है। वह लड़का अपमान से तिलमिलाकर भागकर भीड़ में खो जाता है। सतीश को लगा कि वे चांटे अभी भी उसके गालों पर रेंग रहे है। वह इस पुरानी घटना की याद से एक क्षण केलिए अव्यवस्थित सा हो गया। लड़कों के घर के लोग बाज़ार के आये है। कोई चार सेई मटर ले रहा है, कोई इस फिराक में है कि उसकी पहचान का बनिया दो-एक सेई अन्न उधार दे दे। किंतु वह बनिए की झिड़की खाकर दूसरी ओर चला जाता है। क्या होगा अगर बनिए ने उधार नही दिया तो? इस बाढ़-बूढा में हफ़्ते में एक ही दिन तो बाज़ार लगता है, वह भी आज खाली हाथ निकल गया, तो क्या खायेंगे घर के लोग? कई दिनों के भूखे परिवार की आशा बनकर यह बुधवार आया है, भगवान यह भी जायेगा क्या? लड़के अपने पिताओं या भाइयों के पीछे चक्कर काट रहे हैं.... काश उन्हें कुछ खाने को मिल जाता एक डली गुड की ही सही! किन्तु यहाँ तो खाने केलिए अन्न का ही ठिकाना नही है, मिठाई और गुड़ की बात कौन करे? लड़के अपने घरों की मज़बूरियाँ समझते है।"[1]

'बिना दरवाज़े का मकान' उपन्यास दिल्ली जैसे महानगर में नौकरी खोजते आये हज़ारों निम्न मध्यवर्गीय लोगों की, अपने गाँव और

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "जल टूटता है" - पृ. 18

परिवार से दूर बसे प्रवासियों की समस्याओं और विवशताओं को पेश करता है। यह उपन्यास आकार में लघु है। महानगर में नौकरानी का जीवन जीने केलिए मजबूर एक मज़दूरिन के जीवन की विवशता एवं निरुपायता ही इस उपन्यास का मुख्य कथ्य है। सचमुच 'बिना दरवाज़े का मकान' दीपा के जीवन का प्रतीक है, असुरक्षित, दुर्बला जिस में कभी भी कोई भी प्रवेश कर सकता है। दिल्ली जैसे महानगर में अपना कहने केलिए एक कमरा यहां दीपा के जीवन का लक्ष्य है, उसे हासिल करने केलिए वह दौड-धूप कर रही है आखिर कमरा मिलता है लेकिन वह उस 'घर' केलिए एक मज़बूत दरवाज़ा नहीं तैयार कर पायी। दीपा बिना दरवाज़े के उस मकान में रहते हुए अपने जीवन की विवशता और आशंकाओं के बारे में सोचती है -

"उसने देखा बहादूर बेखबर सो गया है। साये में रह-रहकर कराह रहा है। घाव टीसता होगा। कितनी तकलीफ़ झेल रहा है यह? सोचने लगी - कितने दिन हो गये इस तरह की ज़िन्दगी जीते। और तब से मैं कितनी अकेली पड़ गयी हूँ? जब कभी बहादूर मेरी ओर देखकर अपनी बेबस ज़िंदगी का इज़हार करता है तो मेरी छाती फट जाती है। कभी कभी मैं भी बहादूर पर झल्ला जाती हूँ। आखिर क्या करूँ मैं? लगातार बीमारी में होनेवाला खर्च, रोज़ी-रोटी का खर्च, घर से आनेवाले पैसे की माँग और अब मकान बनवाया उसका कर्ज। सभी तो दिमाग पर चढे रहते हैं और तिस पर बाहर जब कोई बेइज़्जत करता है तो टूट जाती हूँ, बिखर जाती हूँ, आपे में नही रहती और

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "बिना दरवाज़े का मकान" - पृ. 25

बहादूर की छोटी-सी बात में भी झल्ला जाती हूँ। मकान ने मुझे ओर भी बेइज़्जत कर दिया है। बेइज़्जती से बचने केलिए मकान बनवाया सो बेइज़्जती गले पड़ गयी। लोगों ने अपने अपने खाली प्लाटों में छोटी-छोटी गुमटियाँ बनवा रखी है। बारी-बारी से कई में रह चुकी। बारी बारी से सब में से निकाली गयी। जो कोई भी नाराज़ होता आकर बाहर निकाल देता। निकलने केलिए मौका भी नही देता। और नाराज़ होने के भी क्या-क्या कारण होते हैं? किसी के काम में देर हो गयी, कुछ दिन छुट्टी पर चली गयी..... उसे कमरा चाहिए। अब कोई बताये कि मैं नौकरानी हूँ तो क्या मुझे अपने घर पर कोई अपना काम नहीं पड़ सकता? दोस्त हित के यहाँ जाना पडता है, अपना तबीयत खराब हो सकती है, मरद को अस्पताल ले जाना पड़ता है, तर-त्योहार के दिन अपना घर देखना पड़ता है। लोग काम पर लगाकर समझते है कि खरीद लिया है।"[1]

इन्हीं परेशानियों और मजबूरियों के कारण ही दीपा को अन्याय के विरुद्ध न बोलने के लिए सात सौ रुपये स्वीकार करने पड़ते हैं। जिस घर की वह नौकरानी थी उसकी बहु की हत्या दीपा की चुप्पी के कारण अचानक दुर्घटना में तब्दील हो गई। दीपा अन्याय के विरुद्ध बोलना तो चाहती है लेकिन अपनी विवशताओं के कारण वह चुप रह जाती है। असल में चुप रहने केलिए ही उसी कर्ज़ के नाम पर सात सौ रुपये मिल हैं और दीपा यह भी जानती है कि उसे कभी वापस देने नहीं पडेंगे। दीपा के इस नैतिक पतन का

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "बिना दरवाज़े का मगान" - पृ 25

उससे ज़्यादा उसके हालात अधिक ज़िम्मेदार है। जिस समाज में जी तोड़ मेहनत करने पर भी गरीबी व भूख दूर नही होतीं वहाँ, सच न बोलने केलिए अचानक सात सौ रुपये मिलें तो किसी का भी नैतिक पतन हो सकता है। पर दीपा का अहं उसे ज़रूर सताती है -

"हाय स्वार्थ आदमी का तेज कितना मार देता है। सात सौ रुपयों ने मेरा सारा तेज पी लिया और मैंने पुलिस के आगे ऐसी गवाही दी कि साबित हो गया कि राधा स्टोव की आग लगने से मरी है। ये कसाई सब बच गये लेकिन मैं आज तक अपनी नज़रों में गिरी हुई हूँ। कभी कभी अपने को डाँटती हूँ कि तूने कोई बुरा नही किया। तू राधा को ज़िन्दा तो कर नही सकती थी तू ने जो किया उससे उन कसाइयों का ही नहीं, अपना भी भला किया। अपना भला कौन नहीं देखता।"[1]

**वामपंथ का प्रभाव**

मिश्रजी को ज़्यादातर एक आंचलिक उपन्यासकार के रूप में चित्रित करने का प्रयत्न हुआ है। लेकिन बारीकी से देखा जाय तो आंचलिकता के दायरे से बाहर निकलने की प्रवृत्ति तद में मौजूद है। उनके उपन्यासों में, 'पानी के प्राचीर' से लेकर उनका सबसे नया उपन्यास 'बीस बरस' तक को परखा जाये तो सामाजिक यथार्थों के साथ उनकी जीवन दृष्टि भी ज़ाहिर होती गई है। उनके उपन्यासों में गाँधी और मार्क्स के दर्शनों का प्रभाव पडा है।

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "बिना दरवाज़े का मकान" - पृ. 56

आरंभ में गाँधीवादी दर्शन का प्रभाव है तो आगे चलकर वे मार्क्सवाद की ओर उन्मुख हो जाते हैं। खुद मिश्रजी ने इसे एक साक्षात्कार में व्यक्त भी किया है-

"सन् 50 के आस-पास मैं मार्क्सवाद की ओर उन्मुख हुआ था और दर्शन के रूप में मैं मार्क्सवाद को ही महत्वपूर्ण मानता हूँ और आज भी मेरी आस्था मार्क्सवाद में है - "मैं कहना चाहता हूँ कि मैं किसी राजनीतिक पार्टी से जुडा हुआ मार्क्सवादी नही हूँ। और आप जानते है कि लोहिया ने भी मार्क्सवाद की बात की थी नेहरु ने भी की थी। सवाल है कि आप मार्क्सवाद को क्या मानते हैं? मार्क्सवाद की जो मूल भूत चीज़ है वह यह कि किसी अज्ञात या पारलौकिक सत्ता में विश्वास न रखा जाय। इसका मतलब इतना ही है कि ईश्वर के नाम पर या मज़हब के नाम पर या कर्मफल के नामपर गरीबों का शोषण होता रहा है उसके विरोध में यह दर्शन खडा होता है। ऐसा नहीं है कि कोई आदमी अपना भाग्य लिखवाकर आया है, कोई आदमी पापी है, उसने खराब काम किये है इसलिए गरीब है। यह सब शोषकों के हथकंडे है। यह दर्शन इसका विरोध करता है इसलिए बहुत बडा दर्शन है। इस समाज में जो कुछ बना है, उसे हमीं ने बनाया है। समाज का सृष्टा कोई ईश्वर नही है हमीं इसे सुंदर बना सकते है, उसमें समता ला सकते हैं। अब समता का मतलब चाहे व्यावहारिक रूप में वह न हो सके जो मार्क्सवाद चाहता है लेकिन इतना तो हो ही सकता है कि जो वर्ग मूलक विषमता फैली हुई है उसे दूर किया जा सके। समाज में आर्थिक विषमता है, सामाजिक विषमता है, कोई अछूत है, हरिजन है, कोई ब्राह्मण है, कोई उच्च है, कोई नीच है, ये क्या मतलब होता है?

मार्क्सवाद ने व्यापक रूप में बहुतों को प्रभावित किया। एक लोग वे हैं जो कि कम्यूनिस्ट पार्टी का राजनीतिक दल बनाकर उस पार्टी का देश में शासन स्थापित करना चाहते है। और चाहते है कि तानाशाही लाकर समाज में समता ले आए और एक वे लोग है जो लोकतांत्रिक प्रक्रिया से समाजवाद लाना चाहते है। सामान्य आदमी का जीवन उठाना चाहते है। समाजवाद लाना चाहते है। चाहते है कि ऐसी हमारी पॉलिसी हो, ऐसे नियम हो कि सारा लाभ बडे बडे लोगों को न पहुँचे बल्कि प्रमुखता आम आदमी को भी मिले। तो मैं मानता हूँ कि लोकतांत्रिक पद्धति से मार्क्सवादी दर्शन अपनाना चाहिए। जहाँ 'तानाशाही' स्थापित हुई वहाँ 'रिऐक्शन' हो रहा है, प्रतिक्रिया हो रही है। मेरा मानना है कि हमारे देश में जब समाजवाद की बात की जाती है तो समाजवाद सीधे जुडता है मार्क्सवाद से। नेहरु, लोहिया, संपूर्णानंद जय प्रकाश सभी ने समाजवाद को मार्क्सवाद से जोडा है।"[1]

जैसे सूचित किया गया मिश्रजी साहित्य सृजन की शुरुआत से प्रगतिशील रहे है। उनके उपन्यासों के नायक या केन्द्रीय पात्र जैसे 'पानी के प्राचीर' के नीरु 'जल टूटता हुआ' के सतीश, 'अपने लोग' के प्रमोद सब प्रगति के खिलाफ स्थित शक्तियों से लड़ते हुए या अपनी असहमती व्यक्त करते हुए दिखाई पडते है। 'पानी के प्राचीर' का अंत गाँधीवादी सिद्धांतों के प्रति आस्था प्रकट करते हुए ही समाप्त हो जाता है। उपन्यास का नायक नीरु एक हदतक गाँधीजी और गाँधीजी के सिद्धांतों पर अवलंबित नयी काँग्रेसी सरकार में

---

1. "युग स्पंदन" अक्तूबर - नवंबर - दिसंबर - 1989 - पृ. 9
   विषय - "खोई हुई मनुष्यता की वापसी" - लेखकीय दायित्व

आस्था रखता है। लेकिन 'जल टूटता हुआ' में भारत की जनता का सुनहरा सपना टूटता हुआ दिखाई पड़ता है। सतीश जो गाँधीवादी है, आधुनिक भारत की प्रतिगामी शक्तियों से लड़ना तो ज़रूर चाहता है लेकिन उसका प्रतिशोध उतना तीव्र और गंभीर नही हो पाता जितना क्राँतिकारी जगपतिया उनके विरुद्ध करता है।

माहीप सिंह जैसे ज़मींदार जो समाज की नयी प्रगतिशील चेतना के सबसे बडे अवरोधक तत्व है। उस के विरुद्ध लडने की शैली सतीश की नही हो सकती उस केलिए उचित शैली जगपतिया की है, जो महीप सिंह के ही अत्याचार से तंग आकर कलकत्ता भाग जाता है, लेकिन बाद में काँमरेड बनकर गाँव में क्रान्ति करने वापस आता है। जगपतिया के नेतृत्व में हलवाहे अधिक वेतन केलिए हड़ताल भी करते है -

"सारी प्रकृति कूकने लगी थी.... खेत भीगकर बीज की प्रतीक्षा कर रहे थे। लोग अपने-अपने हलवाहों के घरों की ओर दौडे तो मालूम पडा कि सभी मीटिंग में गए हैं। दूसरे दिन सारे हलवाहों ने हडताल कर दी और अपनी माँग डेढ़ी कर दी। लोग एकाएक चकरा गए। बीस रुपये महीने से तीस रुपये और एक बीधा खेत, बापरे, इतनी हलवाही कौन देगा? एकाएक यह आफ़त कैसे आ गयी! हलवाहों ने कामरेड जगपतिया के सामने कसम खाई थी कि जो कोई इस माँग से कम ले, वह अपनी बेटी के साथ शादी करे। हलवाहे टस से मस न हो रहे थे। .....उधर खेत बीजों के इंतज़ार में थे.... एक भयंकर तनाव की स्थिति आ गयी थी।

लोग जगपतिया को गाली दे रहे थे - यह जब से कलकत्ते से लौटा है, एक न एक खुराफ़त करता रहता है।"[1]

महीप सिंह जैसे ज़मीदार जो आज़ादी के पहले अंग्रेज़ों से मिला हुआ था, स्वतंत्र भारत में काँग्रेसी बन गया। सामंती मूल्यों को वह गाँव में बरकरार रखना चाहता है। पूँजिपतियों के नये काँग्रेस के द्वारा वह भी सत्ता में प्रवेश करना चाहता है। धन और राजनीति के संबन्ध से वह ज़्यादा सा ज़्यादा फ़ायदा उठाना चाहता है। जगपतिया उतना मूर्ख नहीं है कि सोचता है, सामाजिक परिवर्तन 'व्यक्ति के मानसिक बदलाव' से होगा। वह अपने वर्ग के गुज़ारे के प्रश्न पर महीपसिंह के विरुद्ध आवाज़ उठाता है। जगपतिया और महीपसिंह की आपसी लडाई दो व्यक्तियों की लडाई न होकर सामंती और समाजवादी जीवन दृष्टि व प्रगतिवादी और प्रतिगामी शक्तियों के बीच की लडाई है -

"उधर से हल्ला गुल्ला करते हुए महीप सिंह के दल के लोग आ रहे थे - आगे-आगे छैलबिहारी हाथी पर था। जगपतिया संभल गया। पार्टी के लोग नारा लगाने लगे और जगपतिया के नेतृत्व में हथियार चमक उठे, लाठियाँ, खड़क उठीं, सबमें उत्तेजित खून दौडने लगा। महीपसिंह के साथ काफी लोग थे, और जगपतिया के साथ कम लोग। .....लेकिन जगपतिया के साथ जितने लोग थे, सभी अपने दर्द में अंगार बने थे, लेकिन महीपसिंह के साथ जितने लोग थे वे किराये के टट्टू थे, आधे मन से लड़ने आये थे।"[2]

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ" - पृ. 276
2. पृ. 378

बढ़ती हुई महंगाई, बेरोजगारी व अन्य भौतिक आवश्यकताओं के कारण गाँव का मज़दूर उचित पारिश्रमिक चाहता है। उसके अभाव से उद्‌भुत गाँव के मज़दूरों का यह विद्रोह भौतिकवादी दृष्टि और वामपंथी राजनीतिक दलों के द्वारा प्रदत्त सूझ-बूझ के कारण घटित हुआ है। मजदूर, मालिकों की शोषण-वृत्ति के हथकण्डों को अच्छी तरह समझ ने लगे थे। शहरों के मज़दूर जब अपने गाँव लौटते है, तो भूमिधरों की कम मजदूरी के खिलाफ आवाज़ उठाते हैं। जगपतिया इसका सही उदाहरण है। कलकत्ते में वह मज़दूर था वहाँ के वामपंथी राजनीतिक दलों के संपर्क में आकर वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गया था। वापस अपने गाँव आकर पार्टी को मज़बूत करते हुए वह अपने वर्ग केलिए लड़ता है। लेकिन गाँव के अशिक्षित मज़दूरों केलिए यह संघर्ष या विद्रोह आर्थिक अधिक और राजनीतिक कम होता है।

सतीश जो गाँव के निम्न जाति के जगपतिया से ज़्यादा शिक्षित है, स्वयं यह अनुभव करता है कि न्याय और समता के लिए गाँव के दकियानूसी शक्तियों से जो संघर्ष हो रहा है, उसमें उसके लड़ने का तरीका उतना प्रभावशाली नही जितना जगपतिया का है। वह सोचता है -

"एक वह है कि सरपंच होकर पढा, लिखा होकर बडा आदमी कहलाकर महीपसिंह के अन्याय का प्रतिकार नही कर रहा है। वास्तव में जगपतिया महीपसिंह की गुंडई का जवाब सीधे लाठी से दे सकता है, और उसके साथ तीस-चालीस आदमी खडे हो सकते है। लेकिन वह लाठी नही उठा सकता, उसके साथ लोग मार करने नहीं जा सकते और कागज़ी न्याय

और पुलिस वगैरह झूठे झमेले है और कभी सत्य का पक्ष नही ले सकते, सब उलझाकर छोड देते है।"[1]

सतीश की प्रतिक्रिया तीव्र इसलिए नही हो पाती कि वह जगपतिया के वर्ग का नही है। वह गाँव के निम्न मध्यवर्गीय ब्राह्मण परिवार का है तो जगपतिया गाँव के निम्न वर्ग की निम्न जाति का हलवाहा है, जो जन्म से जाति और वर्ग के नाम पर महीप सिंट जैसे शक्तियों का शोषण का शिकार बनता आया है। भोगे हुए और देखे हुए शोषण से जागरित विद्रोह का अंतर सतीश और जगपतिया के विद्रोही वृत्ति में है। सतीश को अपने वर्ग के तरीके अपनाते हुए लडना पडता है। जगपतिया की तरह तीव्र होने केलिए उसे अपने मध्यवर्गीय चरित्र को त्यागना होगा, पर सतीश वह कर नही सकता।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति में घोर व्यक्तिवादी राजनीति का दौर शुरु हो गया। आदर्शों, स्थापनाओं, सिद्धांतों, वैचारिक विमर्शों तथ्यों और तर्कों तथा सामान्य व्यावहारिक नैतिकताओं का जितना मखौल इस काल की राजनीति में उडाया जा रहा है, उतना उससे पहले किसी भी दौर में नही हुआ। राष्ट्रवाद, मानवतावाद, गाँधीवाद समाजवाद, सांप्रदायिक सद्भाव, समतावादी समाज, सामाजिक न्याय, गरीबों का कल्याण, देश भक्ति जैसे मुहावरे जिस तरह इस कालखंड में अर्थच्युत हुए, वैसे पहले कभी नही हुए। राजनीतिकों, भ्रष्ट अफसरों, महत्वाकांक्षी उद्योगपतियों, चलाक वित्त-व्यवस्थापकों और तस्करों, गुंडों, अपराधियों के बीच जितने संबध स्वतंत्रता के बाद दिखाई दिये उससे पहले तक नही दिखते थे। इस राजनीति ने अगर कोई उपहार दिया है तो वह

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ" - पृ. 380

गहरी निराशा, अविश्वास, अनास्था और असुरक्षा का है। ऐसा इसलिए है कि इस दौर की अस्सी प्रतिशत राजनीति कुछ व्यक्तियों, समूहों, गुटों की रक्षा कर रही है अवाम व सामान्य जनता के हितों की नहीं।

'अपने लोग' उपन्यास में समाज के कुछ भ्रष्ट व्यक्तियों, समूहों और गुटों द्वारा राजनीति का इस्तेमाल अपनी स्वार्थ पूर्ति केलिए करते हुए दिखाया है। उपन्यास में भारत के स्वातंत्र्योत्तर समाज का यथार्थ चित्र उभारकर पाठकों के सामने आया है। 'गोरखपुर' भारत के सैकडों हज़ारों छोटे शहरों का एक प्रतीक है। वहाँ की राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक स्थितियाँ पूरे देश की ही यथार्थ स्थितियों का प्रतिफलन है। इस उपन्यास में भी प्रगतिशील और प्रतिगामी शक्तियों के बीच का संघर्ष दिखाया गया है। डॉ. सूर्य, मंगलसिंह, बलरामसिंह, रामजन्म दुबे जैसे अनेक पात्र एक तरफ और बी लाला मंजरी, पवन, साही कॉमरेड जनार्दन जैसे पात्र दूसरी और खड़े हैं। पहले प्रकार के पात्र जो भारत के प्रतिगामी शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, उनकी गतिविधियाँ व चालें और लगातार उन्हें मिलती आ रही सफलताएँ सचमुच भारतीय यथार्थ ही हैं। इन प्रतिगामी शक्तियों की सही पहचान के बिना किसी भी सामाजिक उपन्यासकार केलिए सृजन मुश्किल ही होगा। 'अपने लोग' में मिश्रजी ने वर्तमान बूर्ज़ुआ व्यवस्था की असंगतियों और अंतर्विरोधों को हूबहू उन्मीलित किया है। मिश्रजी जानते है कि यह व्यवस्था इतनी मज़बूत होती है कि आसानी से नही हिलती है। लेकिन उन्होंने अपने उपन्यासों से हमें व्यवस्था की असंगतियों के प्रति अधिक प्रतिक्रियाशील बनाए है। 'अपने लोग' में मिश्रजी एक रचनाकार की है हैसियत से प्रजातंत्र, चुनाव जैसे उन रंग-बिरंगे मुखौटों

को दूर करते है जिनके आवरण में व्यवस्था ने अपने असली रूप को छिपा लिया है।

'अपने लोग' उपन्यास के अंत में, जहाँ तक प्रतिगामी और प्रगतिशील शक्तियों की समानांतर कथा काफी दूर तक कही गयी है इन शक्तियों के अनिवार्य टकराव को भी दिखाया है। यह संघर्ष इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि लेखक समाजवादी यथार्थवाद का पक्षधर है। डॉ. सूर्य और मंगलसिंह द्वारा कवि सम्मेलन का इस्तेमाल हो रहा है, वह भी चुनाव प्रचार केलिए। प्रमोद नरसिंह साही आदि इसका, विरोध करते है। आखिर कवि सम्मेलन का मंच इन दोनों शक्तियों के संघर्ष का मंच बन जाता है -

"पुलिस के डण्डों से लोग लहू-लुहान हो गए। और डॉ. सूर्य चिल्लाकर बोले - "अरेस्ट कर लो इन कम्बख्तों को।"

"आप कौन होते है अरेस्ट का आर्डर देने वाले? डॉ. सूर्यकुमार आप कोई पुलिस अधिकारी हैं? अपनी हैसियत पहचानकर बात किया कीजिए" प्रमोद ने क्रोध से कहा।

"अच्छा आप है?"

"जी मैं हूँ।"

"ओ यार तुम।" शिवनाथ ने आत्मीयता से कहा

"हाँ यार मैं हूँ। और ये है नरसिंह साही, इस जिले के सबसे ताकतवर कवि-मिट्टी के ताक़त के कवि और यह है पवन-मेरा बेटा, कामरेड

जनार्दन पार्टी का प्रबुद्ध सदस्य और ये है इसके छात्र-साथी जो मिल जुलकर जनता की ताकत और पीडा से सही समाजवाद गढ़ने की कोशिश में है और ये है बी. लाल। बोलो क्या कहना चाहते है।"[1]

उपन्यास के अंत तक आते आते प्रमोद के अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने केलिए किसी संगठन के चक्कर में पडने का संकल्प टूटती शहरी मध्यवर्गीय मानसिकता का प्रतिफलन है। उसका संकोच दूर होता दिखाई देता है। 'अपने लोग' में जो दूसरी दुनिया हैं जहाँ प्रमोद के साथ बी. लाल पवन, जैसा आवारा, मँजरी जैसी मजबूर लड़की, जनार्दन जैसा प्रतिबद्ध मार्क्सवादी कार्यकर्ता उमेश जैसा पागल विद्यमान है। यह संभावनाओं की दुनिया है जिसमें भारतीय समाज के विधान, लक्ष्य और विकास की शक्ति और कार्यक्रम निहित हैं।

'अपने लोग' उपन्यास अपने स्वरूप में पूर्णतः राजनीतिक नही है, लेकिन सामाजिक परिवर्तन और नए मानवीय अनुभव राजनीतिक चेतना के बिना आज संभव नही है, प्रमोद के संकोच का दूर होना ओर खुलकर संघर्ष के स्तर पर उतरना इसका भरपूर प्रमाण है। सचमुच 'अपने लोग' संप्रदाय विरोधी, प्रगतिशील सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों में ही मानवीय अनुभव को परिभाषित और रेखांकित करता है। इस उपन्यास का अंत कामरेड जनार्दन और उसकी राजनीतिक विचारधारा (मार्क्सवाद) के संस्पर्श से ही संपन्न हुआ है।

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "अपने लोग" - पृ. 342

मिश्रजी ने कम्यूनिस्ट पार्टी के सच्चे कार्यकर्ता के रूप में कामरेड जनार्दन का चित्र खींचा है, जो सच्चे अर्थ में मार्क्सवादी है, उनसे प्रभावित होकर बी. लाल और पवन जैसे नौजवान मार्क्सवाद की ओर उन्मुख होते है और समाज की असंगतियों के खिलाफ लड़ने केलिए तैयार हो जाते है -

"इनकलाब ज़िंदाबाद, इनकलाब ज़िंदाबाद किसानों, मज़दूरों का राज्य हो, पूँजीवाद का नाश है।" प्रमोद ने देखा-किसानों-मज़दूरों का एक जुलूस। उनके हाथों में लाल झंडे है, हंसिया-हथौडे वाले। थोडी-थोडी दूर पर बैनर उठे हुए और पर अलग-अलग मज़दूर संगठनों के नाम लिखे हुए - रेलवे मज़दूर संघ, फर्टलाइज़र मज़दूर संघ, तांगा-रिक्शा संघ और बहुत से। आगे-आगे एक फरेहाल-सा-पढा-लिखा आदमी चल रहा है, उसके बाल बिखरे हुए हैं, कपडे गंदे और फटे हुए है, आँखों में एक अद्‌भुत खामोश आग है। उसके साथ कुछ पढे-लिखे नये युवक हैं। प्रमोद ने देखा कि पवन भी उनमें है। वह जोर जोर से नारे लगारहा है।"[1]

"अच्छा-अच्छा, ये है कॉमरेड जनार्दन! इनका नाम तो सुना था भाई, लेकिन कभी देखा नही था।" "सर, इन्हें देखेंगे कैसे? ये शहर में तो बहुत कम आते है, ये तो हमेशा देहात में ही रहते हैं। किसानों और मज़दूरों के बीच रहते हैं, उनके अधिकारों केलिए लड़ते है, उन्हें जगाते है, पढ़ाते लिखाते है शहर में भी आते है तो मज़दूरों के बीच व्यस्त रहते है। इन्हें न अखबारों में नाम छपाने से मतलब, न चुनाव लड़ने से मतलब, न खाली बहस

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "अपने लोग" - पृ. 297, 298

करने से मतलब। ये फैशनेबुल मार्क्सवादी नही है, ये मार्क्सवाद को जनता में जीवित करना चाहते हैं। वास्तव में ये प्रजातांत्रिक तरीके से जनवादी स्थितियों को संगठित करने के पक्षपाती है। इनका मुंह विदेशी साम्यवाद की भी नही है। ये अपने देश की मिट्टी और प्रकृति के अनुसार साम्यवाद को गठना चाहते है।"

प्रमोद का मन जनार्दन के प्रति असीम श्रद्धा से भर आता है। उसे लगता है कि यही वह आदमी है जिसकी खोज में उसका प्रगतिशील मन भटक रहा था। लेकिन अकेले कॉमरेड जनार्दन क्या कर लेंगे? कितने हैं ऐसे कर्मठ सही साम्यवादी?

कॉमरेड जनार्दन खुद एक अच्छे ज़मींदार थे। उन्होंने अपनी ज़मीन खेतीहीन हरिजनों में बाँट दी। इसकेलिए इन्हें अपने चाचा से बडी लडाई मोल लेनी पडी, अपनी जातिवालों से संघर्ष लेना पडा। फिलहाल इनके पास कुछ भी नही है और सबकुछ है। किसानों और मज़दूरों के संघर्ष में भाग लेने के कारण कई बार पुलिस से और दूसरे ज़मींदारों से पिट चुके है लेकिन इसका उत्साह बढ़ता ही गया है। ये अपने को बिलकुल किसान और मज़दूर ही समझते है। ये एम.ए. पास है लेकिन कभी अंग्रेज़ी नही बोलते और पढे-लिखेपन की स्नाबरी कभी नहीं पाली। मार्क्सवाद और मार्क्सवादी साहित्य का इनको बहुत गहरा ज्ञान है लेकिन बेकार की बहसों में अपना वक्त बरबाद नही करते और शहरों की गोष्ठियों तथा कहवाधरों में मार्क्सवाद की खाली खाली बहसें करनेवाले फैशनेबुल शहरी मार्क्सवादियों को फटकाते रहते हैं और कहते हैं कि मार्क्सवाद के दुश्मन तुम्ही लोग है। इसलिए तो ये शहर के पार्टी दफ़्तर में कम रहते है, खोराबार के देहात में अपना दफ़्तर खोल रखा है।

फैशनेबुल शहरी मार्क्सवादी देहात में जाता पसंद नही करते, उन्हें तो अपने खान पान, रहन-सहन में असुविधा बर्दाश्त नहीं होता।"[1]

मिश्रजी जगपतिया के बराबर 'आकाश की छत' उपन्यास में कामरेड जातत् का चरित्र प्रस्तुत किया है जो मानवीय मूल्यों का तिरस्कार करती शक्तियों के खिलाफ़ लोगों को संगठित करता है। कमरेड जगत् के अलावा रूपमती, यश, बदरी भैया, यश के पिता वगैरह कई चरित्र 'आकाश की छत' में है जो सकारात्मक मूल्यों केलिए लड़ते हैं। कामरेड जगत् और रूपमती की लडाई के पीछे संगठित जन समूह का बल है। क्योंकि जगत् यह सत्य जानता है कि अगर मुक्ति संभव है तो सब केलिए या सब के साथ ही हो सकता है। उनकी लडाई किसी भावुकता के कारण नही बल्कि बहुत सोच-विचार कर शुरु की गयी लडाई है। यह लडाई किसी एक सेठ के विरुद्ध नहीं है। वह पूरी पूँजीवादी व्यवस्था का विरोधी है। उसे मालूम है -

"सेठ को मारने से कुछ नही होगा। दूसरा सेठ पैदा होगा। हमें तो उस व्यवस्था को खतम करना होगा, जिसमें सेठ पैदा होते रहते हैं, लेकिन यह भी तुम ठीक ही कहते हो कि हमें कभी-कभी सेठ को भी मारना होता है"[2] कॉमरेड जगत् के कार्यों से वर्ग संघर्ष की चेतना गाँव में अधिक तीखी हो जाती है। जगत् देखता है गाँव में शोषण का रूप प्रत्यक्ष और अमानवीय है। यह आकस्मिक नहीं कि शोषण-विरोधी चेतना उन हरिजनों में अधिक तीव्र है जिन्हें

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "अपने लोग" - पृ. 298
2. डॉ. रामदरश मिश्र - "आकाश की छत" - पृ. 63

शताब्दियों से सताया जा रहा है। कॉमरेड जगत् के प्रयासों से हरिजन टोले की मानसिकता न केवल जुझारु होती है, वह पुरातन मान्यताओं के प्रतिकूल भी हो जाती है। मिश्रजी एक ओर जगपतिया, जनार्दन, जगत्, जैसे मार्क्सवादी सिद्धांतों के प्रति प्रतिबद्ध असली पार्टी कार्यकर्ताओं का चरित्र प्रस्तुत करते है, दूसरी ओर नकली मार्क्सवादी नेताओं का भी पर्दाफाश करते है, जो सिर्फ नेता बनने केलिए मार्क्सवादी बने हुए है। 'सूखता हुआ तालाब' का मोतीलाल अपने घर में पापों से मुक्ति केलिए ब्राह्मणों को भोज तक देते है। 'जल टूटता हुआ' का रामकुमार जो अपने प्रेम के बदले में एक धनिक युवति के चाटे से, प्रतिशोध की भावना से अचानक मार्क्सवादी बन जाता है। उसमें वर्ग बोध जाग उठता है। लेकिन असल में मार्क्सवादी दर्शन से उसका कोई सरोकार नही।

वामपंथियों का सिर्फ चुनाव और सत्ता को लक्ष्य बनाकर काम करना, सत्ता के वास्ते अपने सिद्धांतों व आदर्शों से दूर हट जाना, मार्क्सवादी विचारधारा का सिर्फ रटते नेताओं का उदय आदि वामपंथ से जुडे सभी मुद्दों का चित्रण मिश्रजी ने किया है। मार्क्सवादी दलों के नकली नेता जो अपने कथनी और करनी में ज़मीन आसमान का अन्तर रखते है, अपने निजि और व्यवहारिक जीवन में प्रतिगामी शक्तियों से भिन्न एवं हीन नही। 'जल टूटता हुआ का रामकुमार जो खुद को पार्टी का कार्यकर्ता और कॉमरेड मानता है जगपतिया की हड़ताल का विरोध करता है। उसका मध्यवर्गीय, ब्राह्मण, संस्कार से निम्न जाति के हलवाहे का यह बदलाव उसे स्वीकार्य नही। यह देखकर सतीश रामकुमार से कहता है -

"आप ऐसा कह रहे है कामरेड कुमार, अभी तो दो-तीन पहले भाटपार में जब आपके एक नेता आये थे, आप भाषण कर रहे थे कि हमारे किसानों - मज़दूरों की हालत बहुत बुरी हो गयी है, इतने दिन हो गए समाजवाद का प्रारंभ भी नहीं हुआ। इनकी हालत सुधरनी चाहिए। अपके नेता इस बात पर शरम प्रकट करते है कि इस देश में चार आना दिन मज़दूरी पानेवाले मज़दूर भी है। और दूसरी ओर चार हज़ार महीना पानेवाले अफ़सर है, कई हज़ार, प्रतिदिन कमानेवाले सेठ लोग है। इस देश की विषमता रूप बडा ही शर्मनाक है.... और आप है कि अपने भाषण के दो ही दिन बाद तिलमिला गए उनकी माँग से।"[1]

देश की राजनीति का इस त्रासद तथ्य को नज़र अंदाज़ नही किया जा सकता कि जहाँ मार्क्सवादी दल भी अनेक राजनैतिक दलों के समान सिर्फ चुनाव और सत्ता पर ध्यान केन्द्रित कर आगे बढने लगे। अपने मकसद से विचलित होकर बुर्जुआ सत्ता को लक्ष्य बनाया। आज़ादी के बाद वामपंथी संगठन विघटित हो गए है। वे आपस में लड़ते झगडते रहते हैं और जिन प्रगति-विरोधी सामंती पूँजीवादी ताकतों से उन्हें हटकर लडना था उसके अभाव में पूरी तरह सुरक्षित हो फूलती फलती रहती हैं।

संवेदना और विचार के धरातल पर मिश्रजी के उपन्यास विकास शील भारत में समाजवादी व्यवस्था की स्थापना केलिए जनता के पक्ष की मज़बूती पर बल देते है। वे इंगित करते हैं कि वर्ग-संघर्ष से पहले भारतीय

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र "जल टूटता हुआ" पृ. 277

समाज में सदियों से चले आ रहे - वर्ण-संघर्ष, जातिवाद, संस्कार-जडता आदि को उखाडना होगा, तब वर्ग संघर्ष केलिए सही रास्ता निकलेगा। 'जल टूटता हुआ' में कुंजु और बदमी एक दूसरे से प्यार करते है। उनका प्रेम सिर्फ प्लाटोनिक यानी मानसिक धरातल पर सीमित नही है। लेकिन भारतीय ग्राम समाज की जाति व्यवस्था उन्हें एक दूसरे से मिलने से रोकती है। उसके सामने दोनों अपने आपको निस्सहाय और विवश पाते हैं।

"बदमी.....तू कहाहन है, मैं बाभन हूँ जिस जाति के दीनदयाल है, ऊँची जाति का हूँ और तू कहाइन है छोटी जाति की। इसलिए हम मिल नही सकते। बदमी, कितने दिनों से हम भटक रहे है एक-दूसरे केलिए, कितने पास है, हम बदमी, लेकिन भटक रहे हैं। हम एक-दूसरे के कितने करीब है बदमी, और हमने एक सही चीज़ को देख लिया है, पहचान लिया है लेकिन उसे पकड़ने से डरते है, उसे पाने में डरते है। क्योंकि हमारे समाज का एक बहुत बडा झूठ हमारे बीच में आ खडा होता है - हम बाभन-कहार है। यह कितना बडा झूठ है बदमी कितना बडा झूठ, सच तो इतना ही है कि मैं कुंजु हूँ और तू बदमी है। हम दोनों के भीतर एक दरद है, वह दरद एक सा है और हम एक है बदमी, हम क्यों भटकें एक दूसरे केलिए? हम इस झूठ से क्यों डरे बदमी? नहीं अब नहीं भटकेंगे हम। नहीं भटकेंगे। हम झूठ को ठोकर मार देंगे। कुंजु उत्तेजित हो गया। उसे लगा कि वह उस शाम के सन्नाटे में पुकारे, बदमी...."[1]

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ" - पृ. 176

भारतीय समाज में जाति भेद, वर्ग वैषम्य दोनों मज़बूत हैं 'जल टूटता हुआ' में मास्टर उमाकांत का प्रेम शिष्या शारदा से चल रहा है शारदा का उमाकांत से भी। उमाकांत सुन्दर, सुरक्षित युवक है पेशे से अध्यापक है शारदा के समान ब्राह्मण कुल का है, फिर भी प्रेम की सफलता पर उसे शंका है। उसके अनुसार -

"शारदा से विवाह.... क्या यह संभव है? क्यों नहीं संभव है? वह भी ब्राह्मण है। ब्राह्मण है तो क्या, शारदा तिवारी है, वह पाठक। तिवारी खानदान की लड़की पाठक खानदान में कैसे जायेगी? और पुराने ज़माने में हमारे गाँव की लड़कियाँ तिवारियों के यहाँ आ चुकी है.... लेकिन ज़माना कितना आगे बढ गया है। क्या शादी के मामले में जातपांत की इतनी सी रेखा नहीं लांघी जा सकती? कुछ करना पडेगा। ....लेकिन आज के ज़माने में एक दूसरी जाति पैदा हो गयी है धनी-गरीब की.... इसे लांधना आसान नही है।"[1]

भारतीय सामाजिक जीवन का एक ऐसा हकीकत है, जिसे मार्क्सवादी चिन्तन में स्थान नही मिला। वह यह तथ्य है कि भारतीय समाज के शोषक का आधार एक मात्र आर्थिक नही है, उसमें जातिगत जटिलता की भी भागीदारी है। रामकुमार के मन में जगपतिया की क्राँन्ति के आचरणों के विरुद्ध क्रोध उत्पन्न होता इसी जातीय भावना से मिले संस्कार का फल है। मिश्रजी के उपन्यासों की ब्राह्मण-हरिजन, मध्यवर्ग-निम्नवर्ग सब अभावों से जूझते है। लेकिन एक गरीब ब्राह्मण के अभाव और हरिजन के अभाव में बहुत बडा अंतर

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ" - पृ. 211

है। एक हरिजन का सुअर यदि ब्राह्मण के खेत में चले जाये तो ब्राह्मण गरजता है -

"साले खेत में पाँव रखा तो टांग तोड दूँगा" सतीश सोचता है "सारे ही खेत तो इन केलिए पराये है, हमेशा चलते रहें, कही न बैंठे, न सुस्ताएँ, कहाँ जाये ये? आज़ादी के बाद भी कोई ज़मीन इनकी अपनी नही हो सकी।"[1]

जाति और वर्ग का लक्ष्य एक नही है। वर्ग-एकता की घोषणाओं के बावजूद उत्पीडित आर्थिक वर्ग एक तबका अपने ही वर्ग के अन्य तबके, जो अनुसूचित जाति या जनजाति का है, के विरुद्ध अत्याचार करता है। यह कल्पना करना कि वर्ग संघर्ष के तेज़ होने से जाति-उत्पीडन स्वयं समाप्त हो जायेगा यह स्थिति का अति सरलीकरण की प्रवृत्ति है।

इस प्रकार मिश्रजी के उपन्यासों के विश्लेषण करने पर उन्हें प्रभावित करने वाली विचारधारा स्पष्ट हो जाती है। जिन-जिन स्थितियों और चरित्रों को उन्होंने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है उनमें से साफ़ ज़ाहिर है कि वे एक मार्क्सवादी है, खुद उन्होंने भी उसे स्वीकार किया है।

**दकियानूसी एवं प्रगतिशील शक्तियों के बीच का संघर्ष**

सामाजिक परिवर्तन आसान नही है, परिवर्तन केलिए संघर्ष ज़रूरी हो जाता है। दकियानूसी और प्रतिगामी शक्तियों के विरोध में यह संघर्ष लगातार जारी रखना पडता है। तत्कालीन भारतीय समाज में बहु संख्यकों को

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ"- पृ. 283

शोषण जारी था। आज़ादी के बाद भी आम आदमी को शोषण और अन्याय का शिकार बनना पडा। गाँवों में सामन्तवादी शक्तियाँ अपने स्थान से हटने केलिए तैयार नही थे। नगरों में नव पूँजीवादी मानसिकता का उदय हो रहा था। शिक्षा प्रसार से गरीब जनता शोषण चक्र के खतरे से अवगत चुकी थी। शोषित वर्ग समझने लगे थे कि अब जनविद्रोह से ही शोषण और उत्पीडन का अन्त होगा। अतः तत्कालीन भारतीय समाज में दकियानूसी एवं प्रगतिशील शक्तियों के बीच का संघर्ष स्वाभाविक एवं अनिवार्य था। रामदरश मिश्रजी के उपन्यासों में, यह टकराव स्पष्टतः देख सकते है।

'पानी के प्राचीर' के केन्द्र में 'पाण्डे पुरवा' गाँव है। वैसे तो दक्खिन टोला और उत्तर टोला में बँटा हुआ है लेकिन असली बँटवारा मजबूरियों और स्वार्थों के कारण है। इसका लाभ उठाकर मुखिया कुबेर और उसका बेटा महेश अपना वर्चस्व बनाए रखना चाहते हैं। दूसरी ओर वहाँ ज़मींदार गजेन्द्र सिंह भी है जो सामन्ती मूल्यों को स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भी बनाये रखते है और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद काँग्रसी बन जाता है। इन शक्तियों के विपक्ष में सुमेश पांडे, निरंजन आदि है। निरंजन (नीरु) गाँधीवादी मानसिकता का आदर्शवादी युवक है लेकिन विवशताएँ और स्वार्थ उसे रूढियों के खिलाफ़ सशक्त खडे होने नही देते। इस उपन्यास का मलिन्द एक ऐसा युवक है जो शिक्षित होने के कारण गाँव की असलियत को समझने की विवेक दृष्टि रखता है। लेकिन दकियानूसी शक्तियों के खिलाफ़ लडने गाँव से समर्थन मिलना मुश्किल है। फिर भी वह निराश नही होता है क्योंकि गाँव के अशिक्षित लोगों की मजबूरियों से वह बेहद परिचित है -

"मलिंद समझ रहा था कि अभी गाँव को आंदोलित करने में बडी देर लगेगी। छोटे छोटे स्वार्थों में व्यस्त लोगों के मन में सही बात बहुत देर में उतेरगी। जाति-पाँति, छुआ-छूत, ऊँच-नीच का भेदभाव अभी कसर जकडे हुए हैं। लोगों को और उसको जाने में समय लगेगा" लेकिन वह इतना अवश्य जानता है कि - "इसी तरह धीरे-धीरे फूँक मारते-मारते एक दिन आग अवश्य दहक उठेगी।"[1]

'पानी के प्राचीर' का गाँव स्वतंत्रता के पहले का है। उस की पूरी मानसिक स्थिति बहुत दूर तक प्रगति विरोधी है, इसलिए वहाँ 'वर्ग संघर्ष' की स्थितियों का परिवेश नहीं है। अज्ञानता, अशिक्षा के साथ साथ गाँव का पिछड़ापन अंधविश्वास और जाति-वर्ण संबधी मूल्य आड़े खडे है।

मिश्रजी के 'जल टूटता हुआ' के गोरखपुर जनपद का तिवारी पुर गाँव स्वातंत्र्योत्तर भारत के लाखों गाँवों का प्रतिनिधि है जो अभाव अशिक्षा, पाखण्ड और बाह्याडम्बरों से ग्रासित है। वहाँ छल और प्रपंच के प्रतीक अवसरवादी नेता रामकुमार, सामन्ती व्यवस्था को बनाये रखनेवाला ज़मींदार महीपसिंह, गुण्डा दीनदयाल आदि एक तरफ़ है तो दूसरी तरफ़ रूढियों और परंपराओं से मुक्त इनका विरोध करनेवाले सतीश, जगपतिया, उमाकांत, लवंगी आदि भी हैं।

स्वातंत्र्योत्तर भारत के अनेक स्वप्न थे, जैसे ज़मीन्दारी उन्मूलन, शिक्षा का प्रसार, सबको समान अधिकार, मताधिकार, पँचायत राज की स्थापना

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" - पृ. 86

अनेक और अन्य प्रकार की सुधार योजनाएँ आयोजित थीं लेकिन दकियानूसी सामन्ती शक्तियाँ अपने स्वार्थ की खातिर इन को असलियत में बदलने नही देती हैं।

'जल टूटता हुआ' में सतीश और जगपतिया सामाजिक अन्याय, शोषण, दमन और अत्याचारों का सामना करने केलिए कटिबद्ध हैं। उनकी सीधी टकराहट उस एकाधिकारवादी सामन्ती शक्तियों से होती है, जो स्वतंत्रता के बाद भी अपनी जगह से हटने के लिए तैयार नहीं है। महीपसिंह एक ऐसा ज़मीन्दार है, जो देश में आये बदलाव को स्वीकार नहीं करता है, नयी परिस्थितियों में भी वह अपने अधिकार को बनाये रखकर, गाँव के प्रगतिशील चेतना का सबसे बडा अवरोधक तत्व बन जाता है। लेकिन ग्रामीण और अशिक्षित समाज ने जो अब तक अपनी नियती के साथ समझौता कर रखा था, विद्रोही भावना से दहक उठता है। 'जल टूटता हुआ' में बाबु महीप सिंह से मार खाकर जगपतिया निरीह होकर चिचिया नही रहा था, बल्कि लात मुक्का खा-कर भी एक अजीब अक्रोश भरी आँखों से देख रहा था जैसे कि वह चेतावनी दे रहा है कि वह उतना असहाय नही हूँ, जितना दूसरा समझते है - "यह बदले हुए ज़माने की आवाज़ है लेकिन बाबु साहब का वर्ग इसे नही समझता है? "भीतर सब कुछ टूटता जा रहा है लेकिन बाहर अभी जीवन की वही रोब-दाब बनाये रखना चाहता है।"[1]

अन्याय और अत्याचार के बीच से ही न्याय और समता को पोषक शक्तियाँ जन्म लेती हैं। जगपतिया के समान सतीश भी गाँव की

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ" - पृ. 48, 49

प्रगतिवादी शक्ति का प्रतिनिधि है। गाँव के अन्य लोग जो अशिक्षा, अज्ञानता, राजनैतिक टुच्चेपन और अपने सामन्ती संस्कारों के कारण महीप सिंह का विरोध नही करते है, वहाँ सतीश महीप सिंह का डटकर विरोध करता है। पंचायती चुनाव में महीप सिंह को हराने के बाद एक प्रकार का नया दायित्व बोध अनुभव करता है। दकियानूसी शोषक शक्तियाँ महीपसिंह के नेतृत्व में संगठित होती है। महीप सिंह और सतीश का संघर्ष दो व्यक्तियों के न होकर सामंती और प्रजातांत्रिक जीवन-दृष्टियों व प्रतिगामी और प्रगतिशील शक्तियों के बीच की लडाई का रूप ग्रहण कर लेती है।

गाँव की दकियानूसी शक्तियों से संघर्ष में जुडे लोग आपस में भी जुड़े हुए है क्योंकि उनकी दिशा और लक्ष्य समान हैं। इनका कोई दूसरा संगठन तो नही लेकिन ये जो संघर्ष कर रहे हैं वह प्रगति विरोधी (महीपसिंह, दीनदयाल) और प्रगतिशील (सतीश-जगपतिया) शक्तियों के बीच का मूल-भूत सामाजिक आर्थिक संघर्ष है। 'जल टूटता हुआ' की केन्द्रीय संवेदना भी यही है कि गाँव के मध्ययुगीन तानाशाही सामन्ती शक्तियों से, जो पूँजीवाद का रूप ले चुका है कैसे मुक्त किया जाए। इन शक्तियों से लडने की पूरी ताकत सतीश से ज़्यादा जगपतिया को है। जगपतिया शहर से यह सीखकर आया है कि गाँव की सामूहिक ताकत का सामाजिक उपयोग किस प्रकार किया जाना चाहिए। उस सामूहिक ताकत के सामने परंपरागत शक्तियाँ कमज़ोर होती दिखाई भी पड़ती है। महीप सिंह के गुण्डे जो गिनती में अधिक हैं जगपतिया और पार्टी के अन्य मज़दूरों के खेत काटने को रोक नहीं पाते है; असफल होकर लौटते है -

"पार्टी के लोग नारे लगाते रहे और उसी दिन जगपतिया ने सबके साथ मिल जुलकर खेत काट लिए। लेकिन उसने अदालत पंचायत में नालिश कर दी कि महीपसिंह के आदमी बलवा करने आये थे, उसकी जायदाद की डकैती करने आये थे। उसके दल के कुछ लोगों को चोट आयी है। वे फिर-फिर धमकी दे रहे हैं खून-खराबा करने की।"[1]

यहाँ यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि गाँव के भावी संघर्ष का नेतृत्व जगपतिया के हाथ में होगा। महीप सिंह जो आज़ादी के पहले अंग्रेज़ सरकार के सच्चे हिमायती रहा नयी परिस्थितियों में काँग्रेसी बन जाता है। वह अपने जवार के काँग्रेसी नेता के रूप में उभरता दिखाई पड़ता है। इसीलिए उसके खिलाफ जगपतिया और सतीश का संघर्ष आसान नही है। महीप सिंह को राजनीति और सत्ता पर गहरा कब्जा है। सतीश जो गाँधीजी के आदर्शों से प्रभावित काँग्रेसी है, काँग्रेस के नये तेवर से निराश एवं व्यथित है -

"सतीश सोच रहा था कि सरकारी व्यवस्था में हस्तक्षेप करनेवाले, उसका मज़ाक उडानेवाले महीपसिंह अभी न जाने कहाँ का सपना देखते है और विडंबना यह है कि सरकार भी ऐसे ही लोगों को मान दे रही है, टिकट दे रही है और क्या-क्या? लेकिन वह अपनी अधिकार सीमा में इसको नही छोडेगा। इसका अंजाम चाहे जो हो। अंजाम तो कुछ न कुछ बुरा होगा ही क्योंकि महीपसिंह अपनी ताकत भर उसका अपकार करने की कोशिश करेगा। ....कई लोग संकेतों से समझा भी चुके थे कि वह इस मुकद्दमे को दबा दे या इधर उधर कर दे। वह क्यों एक नाचीज़ मज़दूर केलिए एक बडे आदमी से गर

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ" - पृ. 252

मोल ले रहा है? सतीश जानता था कि ये सारी बातें परोक्ष रूप से महीपसिंह की ओर से कही जा रही है। महीपसिंह स्वयं अपने नाम से कुछ कहलाना अपनी हेठी समझता होगा, वह सतीश को अभी भी अपना नौकर ही समझता होगा और बडे बडे हाकिमों के तलवे चाटनेवाले महीपसिंह जैसे लोगों को गाँव के लोगों के अधिकार के प्रति आस्था ही कैसे हो सकती है, जहाँ वे स्वयं सभापति और सरपंच नही है।"[1]

गाँव के इस संघर्ष में अपने आप को मार्क्सवादी घोषित करनेवाला रामकुमार का कोई भी हाथ नही। वह जन-विरोधी, अत्यधिक प्रतिक्रियावादी और आत्मघाती है। वह सतीश को राय देता है -

"अरे छोडिए इस झमेले को, इसमें कुछ नहीं है। बेकार एक बडे आदमी से दुश्मनी मोल लेनी है। जगपतिया गुंडा है, पार्टी-वोर्टि का मेम्बर वह कभी नही रहा, वह कलकत्ते में गुंडई करता रहा और यहाँ आकर पार्टी का मेम्बर होने का ऐलान कर बैठा ताकि उसे पार्टी से सहायता मिले।"[2]

रामकुमार जैसे नकली मार्क्सवादी नेताओं के कारण गाँव के कुछ लोग, जिस में सतीश भी है, वामपंथियों को संदेह की दृष्टि से देखने लगते हैं। लेकिन पार्टी के कतिपय झंडा लेकर महीप सिंह के विरुद्ध जगपतिया की ओर से लडने आते हैं। जगपतिया को विश्वास है कि उसे पार्टी का समर्थन मिल रहा है।

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ" - पृ. 253
2. पृ. 254

'पानी के प्राचीर' में स्वतंत्रता केलिए और सामन्ती व्यवस्था के विरुद्ध संघर्षरत समाज को दिखाया गया है तो 'जल टूटता हुआ' में आज़ादी के पहले के सपनों को असफल होते दिखाए गए है। 'अपने लोग' में आज़ादी का अर्थ ही उलट गया है। 'गोरखपुर' शहर के बहाने मिश्रजी ने समूचे पूर्वांचल का जीवंत चित्रण कर दिया है। दरअसल 'गोरखपुर' भारत के किसी भी पिछडे शहर का प्रतिनिधित्व करता है।

आज़ादी के बाद शोषण का शिकंजा अधिक मज़बूत और निर्मम बनता गया। सामान्य जन की यातनाएँ बढीं। प्रजातांत्रिक व्यवस्था सिर्फ कथनी भर रही। शोषक शक्तियों का असली रूप जानता और उन्हें पहचानना अनिवार्य हो गया। संगठित रूप से व्यवस्था का विरोध कर पाना उतना आसान नहीं रहा।

'अपने लोग' का 'गोरखपुर' वस्तुतः समकालीन भारतीय समाज के संक्रमण का एक बहुत ही मार्मिक रूप प्रस्तुत करता है। एक अजीब प्रकार की अराजकता और अव्यवस्था का साम्राज्य फैला हुआ है। इस स्थिति को देखकर प्रमोद सोचता है -

"अहरा सुलगाये कचहरिया लोग...। सड़क के दोनों ओर गिरा हुआ पानी.... सड़ता हुआ कीचड़... फिर सड़क और टाऊन हॉल की दीवार के बीच बिखर हुआ मल-मूत्र.... और दूसरी ओर दिन-भऱ के शोर-शराबे के बाद चुप हो गयी हुई कचहरी.... उसे लगा कि जैसे षड़यंत्र, झूठ, घूसखोरी, हत्या बलात्कार भरा एक दिन कागज़ के पन्नों की तरह फट-फट कर फर्श पर बिखर

गया है या एक विराट् षडयंत्र की चुप्पी फटने के पहले धीरे-धीरे सांस ले रही है....."[1]

प्रमोद दिल्ली के प्रवासी जीवन के बाद अपना शहर गोरखपुर आया है। उसे शहर बहुत बदला हुआ लगता है उस केलिए वह नया शहर जैसा है, इसलिए उस की विसंगतियों के विरुद्ध उतना प्रतिवाद नही कर पाता है। प्रमोद रचनाकार भी है। अपनी रचनाओं के माध्यम वह उन्हीं मूल्यों की स्थापना केलिए संघर्षरत है जो शोषित मनुष्यता की पक्षधरता करते हैं। प्रमोद जानता है कि व्यवस्था के विरुद्ध लडाई अकेले नही हो सकता। लेकिन किसी संगठन के साथ वह नही जुडता है। उसे डर है कि राजनैतिक संगठन उसकी लेखकीय स्वतंत्रता को मर्यादित न कर दें। फिर भी वह अन्याय के विरुद्ध अकेला लड़ता दिखाई पड़ता है। प्रसाद अध्यापकों की बैठक में जीवन सिंह की गुंडई के विरुद्ध अपना स्पष्ट मत प्रस्तुत करता है और इसी वजह उसे घायल होना भी पड़ता है। कवि सम्मेलन के समय उमेश के साथ ज़्यादती होने पर रामस्वरूप साही, वि. लाल आदि के साथ अपनी गिरफ़्तारी देने कोतवाली की ओर चल देता है। बूढे आदमी के पोते की फ़ीस जुटाने में मदद करता है और पुलिसवाले द्वारा एक किशोर को चोरी का इलज़ाम लगाकर पीटने पर उसके विरुद्ध गवाही देने की जोखिम भी उठाता है -

"सिपाही ने अपना अपमान अनुभव कर कहा - "आप लोग कौन है? किसने कहा कि आपु पुलिस के मामले में हस्तक्षेप करें?"

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "अपने लोग" - पृ. 99

"हम उसी समाजवादी देश के नागरिक है सरकार, जिसके आप सिपाही है और उसी देश का यह भिखारी है जिस देश के ये तोंदवाले सेठजी है" पवन ने कहा।

प्रमोद ने बडी राहत महसूस की। उसे लगा, जो उसके भीतर था, वह इन लड़कों के माध्यम से बाहर आ गया है। उसे पहली बार लगा कि पवन कहीं न कहीं उसका प्रतिनिधित्व कर सकता है उसके अन्तर्मुखी व्यक्तित्व की वह मूर्त अभिव्यक्ति है। ये लड़के गलत या सही ढंग से टकरा सकते है, तोड़ सकते है, टूट सकते हैं। ये चिंतन की अपेक्षा क्रिया अधिक है। वह विचारों की उमड़न-घुमडन केलिए अपने ही भीतर भटकता रहता है। ये उमड़-घुमडकर बरस जानेवाले बादल है।

सिपाही ने देश में आकर भिखारी बच्चे को दो-तीन थप्पड़ मार दिये। और इस भाव से देखा-जैसे क्या कर लेगो?

"ए सिपाही, तुम नही मानोगे? तुमने एक निरपराध नागरिक को पीटा है। मैं तुम्हारे ऊपर केस कराऊँगा। सारा खर्चा मैं उठाऊँगा।"

"जाओ जाओ, कोई गवाह भी तुम्हें मिलेगा!"

"हाँ, मेलेगा, मैं गवाही दूँगा। मैं काफी देर से आपकी हरकतों को देख रहा हूँ औरमैं एस.पी. से तुम्हारी रिपोर्ट करूँगा, वे मेरे मित्र है।"[1]

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "अपने लोग" - पृ. 247-248

इस उपन्यास में प्रमोद से ज़्यादा खुलकर अन्याय के विरुद्ध बोलने वाले, जो लोगों की नज़र से आवारा है। एक बी. लाल और दूसरा पवन, जिसे प्रमोद विद्रोही समझता है। वे लोग जब कोई अन्याय देखते है तो उसे मिटाते का कार्य ही तत्काल करते है। वे सिर्फ सोचते नही रहते हैं। प्रमोद के मकान मालिक रामजन्म दूबे जो कट्टर हिन्दु परंपरावादी और राजनीति से जनसंघी है प्रगतिशील प्रमोद केलिए असहनीय है। लेकिन शिष्टाचार के नाम पर या विवशता के कारण उस कट्टरपंथी से प्रमोद कुछ कह नही पाता है। उसे सब कुछ सहना पड़ता है लेकिन पवन उसके विरुद्ध बोल उठता है -

"आपने कहा था न। यही तो में भी कहता हूँ कि आपने चारों ओर मेरी शिकायतें की थीं। पिताजी तो सीधे आदमी है, सब कुछ झेल लेते हैं। आप जैसे असह्य आदमी को भी झेल लेते हैं लेकिन मैं उस घातु का नही बना हूँ। मैं कामरेड हूँ दुबेजी!"

"हाँ, कॉमरेड हो तभी तो।" दूबेजी गुस्से से बोले।

"हाँ हाँ, तभी तो। तभी मैं ऐसा हूँ, आप ऐसे है। मार्क्स और गुरु गोलवलकर के अनुयायियों में अंतर तो होगा ही।" कहकर उसने सीधे दूबेजी की आँखों में आँखों डाल दी।

"और पिताजी, आप भी सुन लीजिए, आज बता रहा हूँ कि मैं कहाँ गायब रहता हूँ। पहले घूमता ज़रूर था किंतु अब मैं प्रायः जनार्दन की कम्यूनिस्ट पार्टी के दफ़्तर में रहता हूँ और चाहता हूँ, उस दल में रहकर कुछ जनवादी कार्य करना।"

दूबेजी उठे और चले गये। जाते जाते कह गये कि ठीक है। अपने घर में जिसकी जो मर्जी है करे, लेकिन मेरे घर में यह सब नही चलने पायेगा।

प्रमोद इसका आशय समझ गया और चाहा कि कह दे तुझे अपने मकान का घमंड हो गया है लेकिन चुप ही रहा किंतु पवन ने दूबे को सुनाकर कहा "चलेगा, सब चलेगा और इसी मकान में चलेगा।"[1]

'अपने लोग' में भी सीधे सादे दो पक्ष दिखाई पड़ते हैं एक प्रोफसर प्रमोद का पक्ष जिसमें पवन बि. लाल, कामरेड जनार्दन आदि प्रगतिशील लोग है, दूसरा डॉ. सूर्य, शिवनाथ, मंगलसिंह, राम जन्म दूबे आदि का प्रतिक्रियावादी पक्ष। इन दोनों पक्षों के द्वंद्व में उपन्यास की कथात्मक स्थितियों का विस्तार होता है। इस उपन्यास में बी. लाल और मंजरी, उमेश और माधवी के उपकथानक जातिवाद एवं परम्परावाद के प्रतीक हैं। दोनों का द्वंद्व, परिवेश और उनकी इच्छामूलक शक्तियों का द्वंद्व है। बि. लाल जो बचपन से विद्रोही रहा है अपनी माँ के दुःश्चरित के कारण मुहल्ले भर में अपमानित होकर रहता है, वही अपनी विद्रोही भावना के कारण शराबी एवं रंडीबाज़ बन जाता है। जाति और धर्म के प्रति विद्रोह की यह प्रवृत्ति ईसाई मंजरी के साथ प्रेम में भी दिखाई है। जाति के दबाव पड़ने की बात मंजरी की माँ द्वारा उठाने पर वह कहता है -

"नहीं-नहीं, मैं ऐसा नही हूँ। जातिवाले सालों को मैं कुछ भी नहीं समझता हूँ। वे साले हमारे किस काम आते हैं? यह समझिए कि हम जातिवालों

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "अपने लोग" - पृ. 286-287

से अलग हो चुके हैं। बाकी रही मेरी बात सो मैं मंजरी को बहुत चाहता हूँ मैं आवारा रहा हूँ इसमें कोई शक नही, लेकिन जिस दिन से मैं ने मंजरी को देखा, उसी दिन से मैं ने मंजरी केलिए अपने को चारों ओर से समेट लिया। लगता है मैं उसी केलिए भटक रहा था और उसी केलिए अब जीऊंगा।"[1]

प्रेम के असफल होकर पागलपन की हद तक पहूँचे उमेश की त्रासदी केलिए भी पूरा सामाजिक परिवेश उत्तरदायी है। उपन्यास में उमेश पूँजीवादी मानसिकता के खिलाफ सामान्य व्यक्ति के पक्ष को प्रस्तुत करता है। माधवी उमेश के प्राध्यापकत्व को महत्व देती है। दरअसल जिसके न होने पर सारी व्यक्तिगत आशायें परंपरावादी पिता की इच्छा पर कुरबान होने की संभावना है। यह दृष्टि सुरक्षावाद पर आधारित है और यह सुरक्षावाद पूँजीवादी मानसिकता का ही प्रतीक है। उमेश की डायरी से -

"यही तो दिक्कत है, हमारे अपने हाथ में कुछ भी नही है। लेकिन मैं पी.एच.डी करूँगी, इससे शायद गले में शीघ्र ही पड़नेवाली शादी के फंदे से बच जाऊँ। सोचती हूँ, तुम्हें लेक्चरशिप मिल जाये तब मैं निश्चिंत हो जाऊँ।"

मैं मौन ही रहा। आशा और निराशा के दुहरे दबाव के बीच में कुछ विचित्र अनुभव कर रहा था। एक बार तो इच्छा हुई कि इस सारी परेशानी को झटककर फेंक दूँ और ठठाकर हँसते हुए कहूँ - छोडी माधवी, ये सब वाहियात बातें है। एक प्रगतिशील जीवन में इनकी कोई अहमियत नहीं। प्रेम

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "अपने लोग" - पृ. 206

एक भ्रम है, इल्यूज़न है, आदमी को भटकता है, और तब नारी पुरुष के वर्गीय स्तरों में पर्याप्त विषमता हो। कहाँ तुम एक दकियानूस पैसेवाले वकील की छूई-मुई कायर बेटी और कहाँ मैं संघर्षों के भीतर बननेवाला किसान का बेटा। लेकिन नही कह सका, इस परेशानी को झटककर नही फेंक सका, लगा यह परेशानी कहीं बहुत भीतर से उग रही है। माधवी चाहे किसी वर्ग की हो, उसके प्रति मेरा प्रेम भ्रम न रहकर एक वास्तविकता बन गया है।"[1]

मिश्रजी ने अपने उपन्यासों में सिर्फ वर्ग वैषम्य या जाति भेद पर ही विचार नही किया है, भारतीय समाज में नारी के प्रति जो भेदभाव बरकरार है उससे अधिक संवेदनशील दिखाई पड़ते हैं। 'रात का सफ़र' उपन्यास की ऋतु', 'बिना दरवाज़े का मकान' की दीपा, 'अपने लोग' की 'मंजरी' 'जल टूटता हुआ' की 'लवंगी' 'थकी हुई सुबह' की नायिका लक्ष्मी आदि इस केलिए उत्तम उदाहरण हैं।

शहर हो या गाँव, सामन्ती हो या पूँजीवादी व्यवस्था नारी का शोषण हो रहा है। मिश्रजी की पात्राएँ इस कटु यथार्थ को दिखाकर पाठकों के मन में इस शोषण के प्रति विद्रोह भावना भटकाने में सक्षम हैं। ये चुपचाप अन्याय को सहकर आँसु बहानेवाली औसत आदर्श भारतीयनारी नही हैं। 'ऋतु' जो पढ़ी लिखी है, अपने डॉक्टर पति का नर्स के साथ संबध से अवगत होकर पति से समझौता कर आगे वैवाहिक जीवन नही बढ़ाता चाहती है -

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "अपने लोग" - पृ. 263

"मैं छिपकर नही जा रही हूँ, डॉक्टर साहब! देखिए, सड़क पर मेरे पिताजी रिक्शे पर बैठे है। उनके साथ जा रही हूँ। यदि मैं बताकर नही जाती तो पता नही मेरे जाने के बाद आप क्या क्या सोचते, क्या-क्या प्रचार करते, किस तरह प्रेम के झूठे आँसु बहाते"(1)

ऋतु यहाँ तक की अपने पति को क्रोध में चाटा मारने से भी नही हटती -

"शट अप! तुम्हें एक भद्र महिला से बोलने की तमीज़ सीखनी चाहिए" तुम एकाएक तड़प उठे थे और पता नही क्या हुआ मेरा बँधा हुआ हाथ अनियंत्रित हो उटा और तुम्हारे गाल पर लगा - चटाक!"(2)

"बिना दरवाज़े का मकान" की मज़दूरिन दीपा भी अन्याय को सहनेवाली नही और न अन्याय होते देख सकती है। वह निम्न वर्ग की मज़दूरिन इसलिए खुद पर और अपनी ताकत पर विश्वास है। वह किसी पर आश्रित नही, खुद मेहनत करके अपना और अपने बीमार पति का पेट पालती है। लेकिन आम तौर पर एक मध्यवर्गीय परिवार में औरत नौकरानी के बराबर है, पुरुष यदि उसे मारता है तो भी वह चुप रहती है। लेकिन दीपा इस सामान्य सत्य का अपवाद ठहरती है -

"जब आपको एक नौकरानी के सामने अपनी बहु को पीटने में सरम नही आती तो मुझे क्यों आये? मैं तो इस तरह किसी को पिटते हुए नही

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "रात का सफ़र" - पृ. 94
2. पृ. 94

देख सकती और हमारा घरवाला मुझे इस तरह पीटता तो उसे दिखा देती कि औरत क्या होती है।"[2]

**निष्कर्ष** के तौर पर यह कह सकते है कि हिन्दी उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में मिश्रजी ज़रूर एक प्रगतिशील लेखक रूप में जाने जाते है। उनकी उपन्यास यात्रा में शुरु से अंत तक वे प्रगतिशील रहे। उनके उपन्यास मौजूदा बूर्ज्वा व्यवस्था की अमानवीयता दिखानेवाले है। उस व्यवस्था की गिरफ़्त में फंसी आम आदमी की निरुपायता एवं विवशता के प्रति मिश्रजी ने तीव्र प्रतिक्रिया अपने उपन्यासों द्वारा प्रकट की है। उनकी वामपक्ष धरता या मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति उनका लगाव भी उनके उपन्यासों से स्पष्ट जाने जाते है। उनके ज़्यादातर उपन्यासों में दकियानूसी एवं प्रगतिशील शक्तियों के बीच सतत् संघर्ष को, ठोस सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक यथार्थों के परिप्रेक्ष्य में आँकने की कोशिश हुई है। उनके उपन्यास पाठकों को प्रगतिशील चिंतन केलिए ज़रूर मजबूर करते हें।

.....🕮.....

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - "बिना दरवाज़े का मकान" - पृ. 46

# पाँचवाँ अध्याय

# मिश्रजी के उपन्यास का संरचना पक्ष

# पाँचवाँ अध्याय

# मिश्रजी के उपन्यास का संरचना पक्ष

हिन्दी उपन्यास साहित्य ने बहुत थोडे समय में संरचना के क्षेत्र में आश्चर्य जनक और अभूतपूर्व प्रगति की है। संरचना से मतलब उपन्यास के शिल्प पक्षसे है जिसमें कथावस्तु, शिल्प, भाषा, शैली, वाक्य गठन आदि बहुत सी बातें आती है।

हिन्दी उपन्यास के विकास के आदि युग से लेकर अब तक के इतिहास में कथा-शिल्प-संबंधी पारस्परिक भिन्नता और नवीनता परिलक्षित होती है। कथा-शिल्प का यह विकास उपन्यास साहित्य के विकास के समानांतर ही हुआ है। यह विकास-क्रम उसकी निरंतर गतिशीलता, पुष्टता और परिपक्वता का ही संकेत देता है।

उपन्यास को जीवन की व्याख्या कहा गया है। मानव जीवन तथा उसकी समस्याओं की व्याख्या ही उपन्यासकार का उद्देश्य होता है। वह उस उद्देश्य की प्राप्ति केलिए सर्वप्रथम कथानक की रचना करता है। अतः कथानक के आधार पर ही उपन्यास के अन्य अंगों का विकास होता है।

किसी भी कृति को वस्तु और शिल्प, कथ्य, और रूप-वाद के खानों में बाँटकर देखने पर आज की नई समीक्षा को एतराज है। उसकी मान्यता है कि सामयिक दृष्टि और समकालीनता बोध के तहत कृति को

उसकी समग्रता में देखते हुए उसकी रचनात्मक सार्थकता को खोजा जा सकता है। आधुनिक समीक्षा, रचना की परख उसके संपूर्णता में करती है और संपूर्णता को कृति की अलग-अलग इकाइतों में नही समझा जा सकता। लेकिन अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से उसकी रूपगत रचना के प्रमुख तत्वों को एक-एक विश्लेषित करना होगा।

**मिश्रजी के उपन्यासों की कथा संरचना**

मिश्रजी के उपन्यासों की कथासंरचना एक नये ढंग से विन्यस्त है। परंपरागत उपन्यासों की तरह इनमें कथा पूर्वापर संबधों से जुडी नही होती है। उपन्यास के पात्र आपस में टकराते हुए एक नये प्रकार का कथासृजन करते चलते हैं। प्रायः घटनाएँ आ आकर आगमी घटना को जन्म दिये बिना लुप्त हो जाया करती हैं। फिर भी कहीं-न-कहीं वे जुडती सी प्रतीत होती हैं। वे सीमित या सीमाबद्ध नहीं होतीं, न किसी निर्दिष्ट काल-चक्र में घिरती ही चलती है। बल्कि उनका कथा-प्रवाह अतीत और वर्तमान में प्रवाहमान रहता है। लेखक किसी प्राचीन ऐतिहासिक कथ्य का सहारा न लेकर छोटे-बडे नये सन्दर्भों या कथा खण्डों को जोडकर, बटोरकर उन्हें एक स्वरूप दे देता है। एक कथा कभी दूसरी, तीसरी या चौथी कथाको काटती या मोड़ती हुई हमेशा किसी नयी कथा के शोध में आगे बढ़ती है।

मिश्रजी के उपन्यास का कथानक पूरे देश को समेट लेता है। कथा गाँव और शहर से जुडी हुई मानो भारत के कोने-कोने से जुड जाती है। किन्तु उनका गाँव, और शहर सर्व व्याप्त है। वे समग्र यथार्थ के दृष्टा हैं। गाँव

और शहर को एक ही भारत भूमि मानकर देखते हैं। शायद इसी कारण मिश्रजी का कथानक गाँव और शहर से जुडकर यथार्थ की सर्वव्यापकता का बोध तथा जीवन के हर पहलू एवं प्रत्येक स्थिति का प्रत्यक्षीकरण करता है। यह गाँव और शहर के मेल मिलाप, बिखराव, टूटन, सृजन, तनाव, संघर्ष आदि से निर्मित है। यह कथा लघु कथाओं या गल्पों से नही बल्कि समग्र परिवेशगत जीवन सत्यों से निर्मित है। जिनके बीच जीकर मिश्रजी ने कठिनतम परिस्थितियों को झेला है। मिश्रजी के कथानक छोटे भी हैं और विस्तृत भी। 'पानी के प्राचीर' 'जल टूटता हुआ' और 'अपने लोग' विस्तृत आकर में देश के यथार्थ को रूपायित करते है। उनके आँचलिक उपन्यासों की कथा समग्र अंचल को जीवित करती है। अंचल के जटिल जीवन चित्र को अंकित करने केलिए वे कहीं मोटी रेखाएँ खींचते है, कहीं पतली। अनेक पर्वों, उत्सवों, परंपराओं, विश्वासों, गीतों, संघर्षों प्रकृति के रंगों, पुराने नये जीवन मूल्यों आदि से लिपटा हुआ अंचल का जीवन अभिव्यक्ति के एक नये माध्यम की अपेक्षा करता है। प्रमुख आलोचक प्रकाश मनु ने मिश्रजी के उपन्यासों के बारे यों लिखा है -

"रामदरशजी का हर उपन्यास पढने के बाद मुझे लगता है कि मैं उपन्यास नही पढ रहा, ज़िंदगी को देख रहा हूँ। ज़िंदगी के बीच पूरी तरह घंसकर जिन्दगी को देख रहा हूँ। ज़िंदगी जो बहुत सीधी-सादी है, प्रेममयी है, मोह और सम्मोहन जगाने वाली है और अपने खुरदरेपन के बावजूद एक कमाल की दिलकश और खूबसूरत शो है। .....उसके सीधे-सादेपन और खूबसूरती में ऐसी-ऐसी भयंकर शक्लें, ऐसे-ऐसे करुण सत्य और ऐसे-ऐसे नग्न यथार्थ की स्याह परछाइयाँ छिपी पडी हैं कि उनका सामना होते ही हम

थरथरा उठते हैं कि अच्छा, यह सब भी हैं, यह सब क्यों है..... यह सब तो नही होना चाहिए!! पर वह होता है और इतने नंगे, करुण और हृदय विदारक रूप में सामने आता है कि थोडी देर केलिए हमारी सांस रूक जाती है..... और लगता है, अगर ज़िन्दगी इसी का नाम है तो फिर यह क्यों है और इसे हम क्यों जीते हैं।.....

मगर फिर.....? इन दुःखों का चक्का कोई आगे बढ़कर थाम लेता है और उसे दूसरी दिशा में चला देता है। कभी नैतिक मूल्यों को लेकर चलनेवाला कोई शख्स, कभी प्रकृति-और कभी-कभी तो विशुद्ध संयोग...। और फिर एकाएक पट परिवर्तन।....

अचानक कहीं से बांसूरी की धुन उठती है और दग्ध मन को सरसाने लगती है, कहीं होली की फगुनाहट बिखर जाती है, कहीं चौती कहीं विदेसिया... प्रकृति का रस और अनंत छवियाँ, माधुर्य.... प्रेम की अद्भुत लीलाएँ.... मनुष्य के छोटे-बडे दुखों के बीच परोए हुए छोटे-छोटे सुख....!! और कभी हम इसमें बहते-बहते कुछ आगे निकले ही थे कि अशुभ, अमंगल की काली स्याह उत्पाती छायाएँ! कुछ समर्थ, शक्तिशालियों और धनपशुओं का कपट, अनीति कुचालें!..... पिसती हुई जनता, हबसते हुए लोग!!"[1]

ऊपर से भले ही कथानक में बिखराव दिखे, किन्तु आंतरिक रूप में जीवन की जटिलता के साथ एकसूत्रता बनी रहती है। वह संपूर्ण रूप से मुक्त होकर पूरे परिवेशगत जीवन के कोने-कोने को टटोलता, देश-विदेश में

---

1. प्रकाश मनु - "रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति" - पृ. 147

भटकता अपने परिवेश से जुड जाता है। मिश्रजी के बहु आयामी संघर्षमय, प्रगतिशील कथानक सूक्ष्म दृष्टि से अंचल के ढके मुद्दों को उघाडते चलते है। साथ साथ प्राकृतिक वातावरण का अवलोकन भी होता है, कभी उस कोण पर, कभी ऊँचाई पर कभी नीचाई पर। इसमें अनेक पात्रों की आवश्यकता रहती है। हर पात्र की सत्ता का महत्व है। इनमें से कोई भी पात्र एक दूसरे के निमित्त नही होता, वे सब अंचल के निमित्त होते है। इस उद्देश्य को न समझ पाने के कारण ही लोगों को कथानक का पात्रों का, सांस्कृतिक पक्षों का, बिखराव दीखता है। मिश्रजी की आंचलिक कथा में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति के विपरीत एक बिखराव दिखाई पड़ता है।

यह देखा गया है कि आंचलिक उपन्यासों की कथा में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति के विपरीत बिखराव की स्थिति होती है क्योंकि आंचलिक उपन्यासों का उद्देश्य अंचल के जीवन को उसके समग्र रूप में प्रस्तुत करना होता है और यह बिखराव दो प्रकार का होता है। कथागत बिखराव एवं जीवनगत बिखराव। कथागत बिखराव में कथा की अनेक दिशाएँ होती है और उनके अनेक पात्र होते है। जीवनगत बिखराव में पात्र कम होते है परन्तु जीवन की नाना अवस्थाएँ उद्‌घाटित हो जाती है। यह भी कह सकते है कि प्रथम प्रकार के बिखराव में उपन्यास सामाजिक दीखता है और दूसरे प्रकार के बिखराव में चरित्र प्रधान। प्रथम में केन्द्रीय कथा नही मिलती, द्वितीय में किसी एक पात्र की कथा केन्द्रीय कथा होने का आभास देती है। परन्तु वह आंचलिक जीवन के उद्‌घाटन का माध्यम मात्र होती है क्योंकि ह पात्र आम पात्रों की तुलना में विशिष्ट स्थिति रखता है।

'पानी के प्रचीर' के कथानक में, बिखरात अवश्य नज़र आता है। इसका आरंभ होता है होली के प्रसंग से, परन्तु होली का प्रसंग अपने भीतर अनेक छोटे छोटे प्रसंग समेटे हुए हैं। कहीं निर्बल तेली की कथा है तो कही, कहार रामदीन की। भूतों के टीले के प्रसंग के साथ साथ पांडेपुखा और पकडिहा के लोगों की शत्रुता का प्रसंग है, चित्थु बाबा की कथा है, नीरु गेंदा प्रसंग के साथ नीरु-संध्या के प्रेम चित्रण है और साथ ही गेंदा-महेश की लुका-छिपी तथा महेश द्वारा नीरु का अपमान है। यानी एक प्रसंग में अनेक कथाओं, उपकथाओं का जमघट है।

हालांकि 'पानी के प्राचीर' उपन्यास का उद्देश्य कछार अंचल को पूर्ण रूप में प्रस्तुत करना है फिर भी इस उपन्यास का 'नीरु' नामक पात्र अन्य पात्रों की अपेक्षा प्रमुख बन गया है। चरित्र प्रधान उपन्यासों में घटनाओं तथा अन्य आवश्यक तत्वों को पात्रों का चरित्रगत विशेषताओं को उभारने केलिए रखा जाता है जबकि आंचलिक उपन्यासों में चरित्रों और उनसे संबधित घटनाओं की योजना कुछ इस प्रकार की जाती है कि अंचल विशेष अथवा जनजीवन की विशेषताओं का उद्घाटन हो सके। नीरु तथा उपन्यास के अन्य पात्र वास्तव में साध्य रूप में चित्रित न होकर साधन रूप में ही चित्रित हुए हैं। मिश्रजी का अभीष्ट नीरु का चरित्र प्रस्तुत करना कदापि नही है वरन् कछार अंचल को अपने संपूर्ण रूप में उपस्थित करना है।

'जल टूटता हुआ' में भी इस प्रकार की संगठन हीनता या शिथिलता दिखाई पड़ती है। वास्तव में उपन्यास की रचना का उद्देश्य तिवारीपुर के जीवन की संपूर्ण छवि अंकित करना है। इस केलिए अंचल को

अनेक कोणों से देखना-परखना पडता है। उपन्यासकार का अभीष्ट तो अंचल के समग्र जीवन को पूरा का पूरा जीवित करना होता है। समग्रता की वाँछा में अनेक जीवन स्तरों को साथ रखने का प्रयास होता है परिणामतः बाह्य संगठन को नही बना पाता। उपन्यास में कथाकार ने अपनी प्रामाणिक अनुभूतियों के माध्यम से कछार अंचल के तिवारीपुर गाँव की बेचैनी, बेबसी, उसकी सुन्दरता-असुन्दरता, छवि-अछवि का जीवन्त चित्र खींचा है। मास्टर सुग्गन महीपसिंह, सतीश, रामकुमार, जगपतिया, कुंजु बिरजु, रमधनिया, दीनदयाल आदि से संबन्धित अनेक प्रसंग एवं घटनाएँ पाठकों के समक्ष चित्रों के समान उद्‌घाटित होती रहती है। एक विशाल चित्र का निर्माण करती हुई तिवारीपुर के मानचित्र के विभिन्न रंग भरती है।

'जल टूटता हुआ' में पात्र या स्थान विशेष की दृष्टि से कथानक में बिखराव लगता है लेकिन यह बिखराव की प्रवृत्ति व्यापक रूप से जन सामान्य का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने केलिए है।

"जल टूटता हुआ' घर, परिवार, गाँव, समाज और देश की टूटन है। इसकी कथा गोरखपुर की राप्ती और गोर्रा नदियों के बीच के कछारांचल पर आघृत है। पात्र या स्थान विशेष की दृष्टि से कथानक में बिखराव लगता है, किन्तु यहाँ किसी पात्र या स्थान विशेष की कथा नही कही गयी है। प्रारंभ में मास्टर सुग्गन का दयनीय, चिन्ताग्रस्त चित्र उनका व्यक्तिगत नहीं, बल्की आशाओं पर पानी फिर चुके, जन सामान्य का चित्र है। सुग्गन की गरीबी में देश की गरीबी झलकती है। गाँव में जो परिवर्तन या शोषण है वह मात्र गोरखपुर के कछारांचल का नहीं, बल्कि भारत के अनेक पिछडे गावों का है।

अकाल और प्रकृति-प्रकोप सर्वव्यापी प्रश्न है। कथानक मात्र गाँव परिवेश में ही चक्कर नहीं काटता। आज़ादी के बाद नौकरी पेशे लोग जगपतिया के रूप में परदेस जाते हैं और लौटकर एक नये मूल्य की स्थापना करते हैं, जिससे निम्न वर्ग में भी एक नयी चेतना जाग्रत होती है। इस प्रकार गाँव और शहर से जुडे कथानक द्वारा लेखक विभिन्न सामाजिक दृष्टिकोणों को देखता है।"[1]

'अपने लोग' में भी उपन्यासकार की दृष्टि से गोरखपुर शहर का कोई भाग कोई घटना या किसी भी वर्ग का पात्र नही चुक गया है। अपने संपूर्ण रूप में एक-एक नस के साथ शहर में उपन्यास में जीवंत हो उठा है। प्रमोद के माध्यम से लेखक ने गोरखपुर के स्थानीय भूगोल और घटनाओं को पूरी सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया है। गोलघर, बेतियाहाता, बेतियाहाता चौराहा, उर्दू बाज़ार, रेती चौक आदि सभी का वर्णन उपन्यास में देखा जा सकता है। वास्तव में मिश्रजी ने अनेक कथाओं को इस उपन्यास में स्थान देकर इस उपन्यास को महाकाव्यात्मक उपन्यास का रूप देने का प्रयत्न किया है। बी. लाल, मंजरी, के. लाल, इमरतिया, माधवी, उमेश, फुलवा, रामविलास आदि की कथाएँ, जहाँ अपने यथार्थ चित्रण रखती है, वही पवन और बी. लाल की दोस्ती, तथा पवन का जनार्दन के संपर्क में आकर सक्रिय राजनीति में आने की कथा लेखक की नयी पीढ़ी के प्रति आशावादिता प्रकट करती है। इन सभी कथ-प्रसंगों को कथानक में इस प्रकार बुना गया है कि कहीं भी कोई प्रसंग अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। उपन्यास की गतिशीलता में भी कोई कमी नही है -

---

1. सूर्य दीन यादव - "रामदरश मिश्र व्यक्ति और अभिव्यक्ति" - पृ. 166

"प्रारम्भ में प्रमोद का सुशिक्षित आदर्श परिवार, जिसमें प्रगतिशील विभा और पवन का चित्रण परिवार से जूझती पत्नी संज्ञा का चित्रण एक आदर्श भारतीय परिवार का परिचायक है। बीच-बीच में गाँव से आते-जाते रमेश तथा उसके बीवी-बच्चों द्वारा गंवाई ज़िंदगी की एक भद्दी झलक भी दिखाई पडती है। इसके साथ कथा अनेक मोड़ लेती हुई शहरी धिनौने चित्रों को भी देखती चलती है। डॉ सूर्य द्वारा फुलवा और उसके गरीब पति का शोषण कलावती और प्यारेलाल का बेमेल विवाह, कलावती का परपुरुषों का सहारा लेना और पति की आत्महत्या, माँ के कुसंस्कारों से बीं. लाल का आवारा तथा किसन का पागल बनना आदि सब कथाएँ यथार्थ रूप में चित्रित होती हैं। बी. लाल-मंजरी, किसन-इमरतिया, उमेश-माधवी, सूर्य-मंजरी, सूर्य-पत्नी-बच्चे, विलास-उसका टूटता परिवार आदि तमाम कथाओं के ताने-बाने से बुना कथानक अपने लोगों के जटिल सम्बन्धों की पहचान कराता है। बी. लाल और पवन की मैत्री, जनार्दन का सम्पर्क तथा जनवादी पार्टी में मिलना आदि सक्रिय राजनीतियुक्त कथा एक नई पीढ़ी की आशा के साथ असामाजिक तत्वों के मुकाबले खडी होकर एक नये समाजवाद का संकेत देती है। छोटी-बडी सभी कथाओं को कथानक में इस भाँति गूँथ दिया गया है कि कोई घटना या प्रसंग बिखरा हुआ नहीं लगता, बल्कि एक सामाजिक जीवन का जीवंत संपूट लगता है।"[1]

**मिश्रजी के लघु उपन्यास** :- लघु उपन्यास तात्विक दृष्टि से अन्य उपन्यासों से विशेष भिन्न नहीं होते हैं। उनमें सांकेतिकता, संवेदनशीलता एवं प्रभावन्विति

---

1. सूर्य दीन यादव - "रामदरश मिश्र व्यक्ति और अभिव्यक्ति" - पृ. 168-169

का गुण अन्य बृहत् उपन्यासों से अधिक होता है। उनका स्वरूप सुसंगठित होता है। उनमें पात्रों की संख्या बहुत कम होती है। वातावरण के घटाटोप से कथा बोझिल नही हो पाती है। घटनाएँ छोटी मामूली होती हैं। बृहद् उपन्यासों की भाँति उन उपन्यासों में अपने युग के संपूर्ण जीवन को आधार नही बनाया जाता वरन् जीवन के किसी एक अनुभव को संवेदनशीलता के आधार पर प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

मिश्रजी के लघु उपन्यासों की सबसे बडी विशेषता यह है कि उनका कथानक अत्यन्त संक्षिप्त होता है। मिश्रजी ने कथावस्तु की संरचना प्रायः नायक या नायिका को केन्द्र में रखकर किया है। उनके कथानक यथार्थ जीवन से जुडे है। उपकथाओं और प्रासंगिक कथाओं का पूर्णतः अभाव है।

"बीच का समय" (आदि राग) उपन्यास में रीता और प्रों शील की कथा को प्रमुखता दी गयी है। शील के माता-पिता और पत्नी आदि का एक आध बार उल्लेख मात्र ही हुआ है। रीता के अन्य संबन्धियों में या जाननेवालों में उसकी सखी माधुरी का उल्लेख नल-सरोवर की यात्रा के प्रसंग में ही आया है। इस उपन्यास में प्रो. शील की रीता से संबधित विचारधारा तथा उसके साथ बिताए गए क्षणों को ही स्थान दिया गया है। कॉलिज की समस्यायें, गुजरात और पूर्वी उत्तरप्रदेश की स्त्रीयों से संबधित बातें, नल सरोवर का प्रकृति चित्रण आदि विषय गौण हैं।

'रात का सफ़र' उपन्यास की कथा पूर्व-दीप्ति पद्धति पर कही गयी है। ऋतु पति को चाँटा मारकर रात की गाड़ी से गोरखपुर से वाराणसी

लौट रही है। इसी दौरान पिछले छः वर्षों की व्यथा-कथा उसकी स्मृतियों में उतर रही है। मिश्रजी कवि है अतः उन्होंने अपने काव्यात्मक कौशल से रेल की यात्रा को जीवन-यात्रा का प्रतीक बन दिया है। उपन्यास में 'ऋतु' ही कथानक के केन्द्र में है। ऋतु के अतिरिक्त उसके पिता और पति डॉ. दिनेश को भी प्रमुखता दी गयी है। अन्य सभी पात्र ऋतु के चरित्र को और स्पष्ट करने में की अदाकीरी ही करते हैं। लघु उपन्यास में उपन्यासकार का एक मात्र उद्देश्य नायक अथवा नायिका के चरित्र को उभारना और उसके चरित्र सृजन केलिए, उससे संबधित पात्रों एवं प्रसंगों का आवश्यकतानुसार ही वर्णन होता है। अन्य पात्रों के जीवन का मात्र वही अंश चित्रित किया जाता है जो मुख्य पात्र के जीवन को प्रभावित करता है। 'रात का सफ़र' में मिश्रजी ने गोरखपुर, बनारस, इलहाबाद अथवा दिल्ली महानदरों की स्थानीय विशेषताओं अथवा समस्याओं पर ध्यान नही दिया है क्यों कि उनकी कथा का केन्द्र ही मुख्य पात्र 'ऋतु' है।

लेकिन अखरनेवाली बात है यह कि अवलोकन बिन्दु के परिवर्तन में उपन्यासकार अनगढ हो गया है। प्रथम दृश्य में पाठक 'ऋतु' की चेतना में प्रवेश करते है तो दूसरे दृश्य में अचानक ऋतु के पिता पाठक से अपनी कहानी कहने लगते है। अवलोकन बिन्दु का यह स्थानान्तरण पाठक के मन को झटका देता है जो प्रीतिकर या कलापूर्ण प्रतीत नही होता है। उपन्यास की कथा पूर्व-दीप्ति पद्धति पर कही गयी है। पूरा उप्यास नायिका ऋतु की स्मृतियों पर आधारित है। उसके बीच सिर्फ एक स्थान पर कुछ देर केलिए ऋतु

के पिता राकेश की स्मृतियों की ओर जाना कुछ अखरता है। उपन्यास के प्रवाह में भी यह बाधा डालती है।

'आकाश की छत' उपन्यास में वर्तमान के साथ-साथ नायक यश का अतीत जीवन भी अनुस्यूत है। मिश्रजी ने यश के अतीत को उसके वर्तमान के साथ कथानक में इस प्रकार बुना है कि वह अटपटा न होकर अत्यन्त रोचक बनकर सामने आया है। फिर भी वर्तमान से अतीत चित्रण में लेखक का मन अधिक रमा है क्योंकि यश का अतीत मिश्रजी के पूर्व परिचित कछार अंचल से संबंधित है। इस उपन्यास का कथानक एक ओर शहर के जीवन से संबधित है तो दूसरी और ग्रामीण जीवन से भी। मिश्रजी यश के जीवन को उद्घाटित करते हुए दोनों स्थानों के नेताओं और वहाँ के जीवन पर अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते हैं।

इस उपन्यास में बाढ़ की कथा को आधिकारिक कथा कहा जाए तो भी यश के अतीत की कथा भी उससे कम महत्व या मायने नही रखती। कही पूर्व दीप्ति विश्लेषणात्मक और कहीं वर्णनात्मक पघति का प्रयोग हुआ है। कछार अंचल से संबधित कथा बाढ़ की कथा के समानांतर ही चलती है। यश-राधा की प्रेम कथा, बदरी-रूपमति कथा और यश के प्रति पद्मिनी का प्रेम आदि प्रसंग अवान्तर कथाओं के रूप में हैं। उपन्यास में लेखक बार बार अतीत से वर्तमान की ओर आता दिखाई देता है।

इस उपन्यास में कथा संकेतों को लेखक ने इतना अधिक नही फैलया है। छोटे कलेवर में कथ्य की उपयुक्तता स्पष्ट होकर सामने आ जाती

है। अनावश्यक विस्तार पूरी कृति में कहीं नहीं पाया जाता है। तेज़ भागती हुई ज़िंदगी की तरह उपन्यास के दृश्य भी तेज भागते चलते हैं। पूर्वदीप्ति पद्धति के साथ साथ नाटकीय, स्वप्नचित्र आदि पद्धतियों का उपयोग भी हुआ है।

'थकी हुई सुबह' उपन्यास की शक्ति है - लक्ष्मी का चरित्र और लक्ष्मी के चरित्र का वैशिष्ट्य है - समृद्धि के बावजूद रिक्तता का बोध। पूरे उपन्यास का कथा-संघटन सख्त सहज और स्वाभाविक है। वस्तु स्थितियों के चित्रण और पात्रों के अन्तर्द्वद्व को मूर्त करने में मिश्रजी को विशेष सफलता मिली है। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से उपन्यास अत्यन्त कसा हुआ है। लक्ष्मी और उसके पति की कथा के बहाने उपन्यासकार ने नारी पीडा की समूची कहानी रची है। उपन्यास पठनीय, रोचक और पाठकों को प्रारंभ से अंत तक बाँधे रखने की क्षमता से परिपूर्ण है। लक्ष्मी की कथा को अतीत और वर्तमान के झूले पर मिश्रजी झुलाते हुए आगे बढ़ते हैं।

मिश्रजी ने स्वयं कहा है कि उनका भाषा उपन्यास 'बीत बरस' रिपोर्ताज शैली में लिखा गया है। 'बीस बरस' उपन्यास है किन्तु प्रचलित अर्थ में नहीं। इसमें आयी घटनाएँ और पात्र परस्पर उस रूप में विन्यस्त नही हैं जिस रूप में उपन्यास में होते हैं। कथा-प्रवक्ता दामोदर इन सबसे गुजरता है - कभी प्रत्यक्ष रूप से, कभी अपनी स्मृतियों के माध्यम से, सभी दूसरों के अनुभवों और संवादों के द्वारा। लेखक दामोदर के माध्यम से यात्रा करता है नये गाँव के जीवन-यथार्थ की। यही उसका उद्देश्य रहा है। कोई चाहे तो इसे रिपोर्ताज़ात्मक उपन्यास भी कह सकता है।"[1] उपन्यास का नायक

---

1. रामदरश मिश्र "बीस बरस" - भूमिका

दामोदर लेखक एवं पत्रकार है जो उपन्यासकार के 'स्व' का प्रतीक है। जो बीस वर्षों के पश्चात अपना गाँव आता है। मिश्रजी ने एक पत्रकार के नजरिए से इस उपन्यास में प्रत्येक पात्र और स्थिति का वर्णन किया है। किन्तु, इसे केवल रिपोर्ताज नही कहा जा सकता। दामोदर या लेखक जिस तरह से प्रत्येक पात्र और स्थिति की स्मृतियों में डूबकर, उसके परिवर्तित रूप का तुलनात्मक वर्णन करता है और प्रत्येक पात्र से उसका जैसा आत्मिक लगाव व अनुराग हैं वे उसे केवल पत्रकार नही रहने देते। उसमें संस्मरण की गहरी संवेदना जुड जाती है जो पाठक के हृदय को भी छू लेती है।

'बीस बरस' में 'नैरेटर' या कथा प्रवक्ता गाँव के नये जीवन यथार्थ के विभिन्न संदर्भों को देखता-बूझता है। कभी स्मृतियाँ उपन्यास को आगे बढ़ाती है तो कभी प्रत्यक्ष अनुभव और सम्पर्क में आये चरित्र उपन्यास का स्वरूप गढ़ते है। इस रचना-प्रक्रिया के बीच से विसंगतियों - अवमूल्यों का उद्‌घाटन होता चलता है और साथ ही स्वस्थ-सकारात्मक मूल्यों-चरित्रों की उपस्थिति आश्वस्त भी करती है। लेकिन रिपोर्ताजधर्मी बयान से युक्त उपन्यास में यह शैली जहाँ-तहाँ प्रभावशाली रूप में है, कुछ स्थलों पर ललित निबंध का स्पर्श भी सर्जनात्मकता को बढ़ाता है।

मिश्रजी के लघु उपन्यासों में उपन्यासकार की अपनी टिप्पणियों के अभाव और कथानक के तीव्रगामी होने के कारण, कथा में गाढ बन्धत्व देखा जा सकता है। मिश्रजी वहाँ एक निश्चित दिशा में अग्रसर होता रहता है। इन लघु उपन्यासों में मिश्रजी ने केवल मार्मिक प्रसंगों को ही अपने वर्णन का विषय बनाया है, वे बीच की अनावश्यक कथा को सरलता से लाँध जाते है।

## मिश्रजी के उपन्यासों की शिल्प विधि

शिल्प शैली का दिशान्यास करता है। आवश्यकता अनुसार उसे सीमित, विश्लेषित, वर्णनात्मक, सांकेतिक या नाटकीय विधि द्वारा संयोजित करते हुए उसका मार्गदर्शन करता है। शिल्प-विधि का संबध अभिव्यक्ति एवं रूप रचना की समस्त प्रक्रियाओं से हैं। 'वान ओ कॉनर' ने शिल्प-विधि को वह साधन माना है जो लेखक को अपने अनुभव का जो वास्तव में विषय वस्तु होती है, प्रयुक्त करने को प्रेरित करता है। क्योंकि शिल्प-विधि ही वह रास्ता है जिसके माध्यम से वह अपने विषय को खोज सकता है, जाँच सकता है, और उसका विस्तार कर सकता है। इसी के माध्यम से वह उसमें अंतर्हित भाव को अभिव्यक्त कर सकता है और उसका मूल्यांकन कर सकता है।[1]

शिल्प-विधि में रचना-कौशल या कारीगरी का प्राधान्य होता है। "शिल्प-विधि का शाब्दिक अर्थ है किसी चीज़ के बनाने या रचने का ढंग अथवा तरीका। किसी वस्तु के रचने की जो-जो विधियाँ अथवा प्रक्रियाएँ होती हैं उनके समुच्च्य को शिल्प-विधि नाम से पुकारा जाता है। सरल भाषा में यदि कहा जाय तो शिल्प-विधि से अभिप्राय हाथ से कोई वस्तु तैयार करने तथा दस्तकारी से है।"[2]

---

1. Van O'Conner, "Forms of Fiction" P. 9 "For technique is the means by which the writer's experience which is the subject matter compels him to attend to it. Technique is the only means he has of discovering, exploring, developing his subject, of conveying its meaning and finally of evaluating it."
2. 'बृहत् हिन्दी कोश' - ज्ञान मण्डल लिमेटड, बनारस - पृ. 1239-1334

## वर्णनात्मक शिल्प विधि

मिश्रजी ने वर्णनात्मक शिल्प विधि को अपनाया है। इसके द्वारा उन्होंने जीवन के विस्तृत क्षेत्र का चित्रण बढा-चढाकर व्याख्या सहित प्रस्तुत किया है। इस विधि को अपनानेवाले उपन्यासकार के पास अनेक सुविधाएँ विद्यमान रहती हैं। वह जीवन के किसी भी क्षेत्र को अपनी कथा का माध्यम बना सकता है। घटना बाहुल्य पात्र आधिक्य, लंबे संवाद तथा भाषण योजना जैसी अनेक तथ्य इसी विधि द्वारा सरलता पूर्वक चित्रित किये गये हैं। दार्शनिक विवेचन की पूर्ण सुविधा भी इस विधि को अपनाने से मिश्रजी को मिल गयी है।

पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व चित्रण की आवश्यकता इस विधि के उपन्यासकारों को अनुभव नही होती है, यत्र-तत्र यदि कही अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण हो भी गया है तो वह वर्णनात्मक शिल्प-विधि को अपनाने के कारण नही, जीवन की द्वन्द्वात्मक स्थिति की अनुभूति के कारण प्रदर्शित हुआ है क्योंकि इस विधि के अन्तर्गत अन्तर्मन की नाना स्थितियों का विश्लेषण संभव नही है, केवल बाह्य पक्ष की विस्तृत चर्चा हुआ करती है।

वर्णनात्मक शिल्प-विधि के कारण मिश्रजी के उपन्यास खासकर बृहत् उपन्यासों का कथानक इतिवृत्तात्मक बन गया है। घटनाएँ एक जाल सी बिछ गई हैं। कथावस्तु सुसंगठित भले ही न हो किन्तु हर आयाम में एक विशेष विचार या समस्या अवश्य उठाई गई है। ये समस्यायें अधिकतर सामाजिक हैं। किन्तु कुछ उपन्यासों में आर्थिक और धार्मिक प्रश्न भी उठाए गए है। प्रखरता, गहनता, दृढ़ता तथा सूक्ष्मता की अपेक्षा व्यापकता ही मिश्रजी के उपन्यासों में इस विधि को अपनाने से अधिकतर दृष्टिगत है।

वर्णनात्मक विधि की वजह उपन्यास में पात्रों की भरमार रहती है। इन पात्रों की अपनी निजी विशेषताएं होती हैं। इसके साथ अधिकतर किसी न किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'पानी के प्राचीर' 'जल टूटता हुआ' 'सूखता हुआ तालाब' 'अपने लोग' 'दूसरा घर' आदि उपन्यासों के पात्र ऐसे ही हैं। मिश्रजी के लघु उपन्यासों की नायिकाएँ जैसे 'रात का सफर' की 'ऋतु', 'बिना दरवाज़े का मकान' की दीपा, 'थकी हुई सुबह' की 'लक्ष्मी' आदि भी आधुनिक भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों की नारियों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

वर्णनात्मक शिल्प विधि के अनुसार केवल चरित्र का चित्रण संभव है, इसमें चरित्रों का विश्लेषण अधिक नही होता है। लेकिन मिश्रजी के लघु उपन्यासों के मुख्यपात्र इसके अपवाद है। उनके बृहत् उपन्यासों के पात्र अधिकतर समाजोन्मुखी है। मिश्रजी ने पात्रों के बाह्य रूपों का प्रभाव सीधे रूप में दिखा दिये है। वर्णनात्मक शिल्प के कारण घटना और चरित्र पर मिश्रजी पूर्ण अधिकार रख पाये है। मिश्रजी ने इसके द्वारा चरित्र-चित्रण से समूह की प्रवृत्तियों का चित्रण व्याख्यापूर्वक प्रस्तुत किया है। वर्णनात्मक विधि के उपन्यासों में कथाकार का ध्यान कथा और चरित्र के साथ साथ विचार और समस्या की ओर भी केन्द्रित रहता है मिश्रजी के सभी उपन्यासों में यह प्रवृत्ति हम देख सकते हैं।

उदाहरण केलिए 'अपने लोग' और 'दूसरा घर' में शहर के शैक्षिक संस्थानों की गन्दी राजनीति, जातीयता, क्षेत्रीयता, भ्रष्टाचार आदि से संबंधित समस्याओं को प्रमोद, शंकर, गौतम जैसे चरित्रों से प्रस्तुत किया है।

'रात का सफर' की ऋतु, 'बिना दरवाजे का मकान' की दीपा, 'थकी हुई सुबह' की लक्ष्मी आदि चरित्र भारतीय समाज के नारी समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान खींचता है। 'जल टूटता हुआ' 'पानी के प्राचीर' 'सूखता हुआ तालाब' 'आकाश की छत' 'बीस बरस' आदि उपन्यासों में चरित्रों का बाहुल्य है, उनके द्वारा स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण समाज की अनेकानेक समस्याओं की अभिव्यक्ति हुई हैं।

उपन्यासों में मुख्यतः उपन्यासकार चरित्र-चित्रण केलिए विश्लेषणात्मक विधि और अभिनयात्मक विधि को स्वीकार करते हैं। विश्लेषणात्मक विधि में उपन्यासकार अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण में स्वयं अपनी ओर से लिखता है। लेखक पात्रों के चरित्र, आचार, व्यवहार आदि का स्वयं वर्णन करता है, जिसके कारण पाठक को उनके विषय में जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रणाली में लेखक को अपने पात्रों के चरित्र की पूर्ण व्याख्या करनी पड़ती है और उनकी संपूर्ण विशेषताओं को उभारकर प्रकाश में लाना पड़ता है। अभिनयात्मक विधि में उपन्यासकार स्वयं किसी पात्र के विषय में कुछ नही कहता, बल्कि पात्र स्वयं कथोपकथन का आश्रय लेते है। पाठकों को अपनी कल्पना शक्ति का ज़्यादा इस्तेमाल यहाँ करना पडता है। मिश्रजी ने चरित्रप्रधान नही सामाजिक उपन्यास अधिक लिखे है इसलिए उन्होंने अभिनयात्मक विधि को चरित्र-चित्रण केलिए स्वीकार किया है।

## मिश्रजी के उपन्यासों की शैली

शैली के द्वारा उपन्यासकार अपनी कृति को अधिक आकर्षक और प्रभावशाली बनाता है। उपन्यासकार जिस ढंग से अपने विचार और

भावनाओं को व्यक्त करता है उसे शैली कहते है। उपन्यास की सफलता शैली पर बहुत कुछ निर्भर रहती है। भाषा विचारों की वाहिका है। भाषा की सशक्तता, गंभीरता, सजीवता, अनुरूपता और विचार करने की क्षमता उपन्यास को सप्राण बनाने में सहायक होती है। शैली भाषा के माध्यम से भावों की अभिव्यक्त करने की शक्ति है। भाषा की गति, प्रवाह और दिशा ही शैली है। "शैली का संबंध रचना कृति के बाह्य परिधान से हो जाता है। जिसका निर्धारण भाषा एवं शब्दों के विशिष्ट प्रयोग द्वारा होता है। अभिव्यक्ति बाह्य रूप से संबद्ध होने के कारण शैली को भाषा का ऐसा रूप-चमत्कार कहा जा सकता है जिसमें लेखक का व्यक्तित्व प्रधान रूप से विधमान रहता है।"[1] उपन्यास की सफलता में भाषा एवं शैली का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

शैली से अभिप्राय उस विशिष्ट ऐवं वैयक्तिक अभिव्यक्ति विधि से भी है। जिसके द्वारा हम किसी लेखक को पहचानते है। यानी शैली का संबंध उपन्यासकार के व्यक्तित्व के साथ है। भावाभिव्यक्ति एवं भाषा के विशेष परिधान से भी उसका नाता है। मिश्रजी की अपनी शैली की खास विशेषता 'सरलता' है। भाषा की सहजता और शैली की सरलता ने उनके उपन्यासों को सफल बनाया है। उनकी शैली 'प्रवाह पूर्ण' है, इसीलिए उनके उपन्यास रोचक बन गए है।

भाषा एवं शैली का महत्व उपन्यास में इसलिए भी सर्वाधिक है कुतूहल और जिज्ञासा के तत्व को उत्पन्न करने का श्रेय भाषा एवं शैली का है।

---

1. डॉ. आदर्श सक्सेना - "आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प-विधि" - पृ. 299

प्रसंगानुकूला भाषा, भावानुकूल भाषा शब्दचयन, वर्णनशैली आदि विशेषताओं से उपन्यासकार अपनी एक निजि शैली का निर्माण करता है। मिश्रजी ने अपने अधिकतर उपन्यासों में 'यथार्थवादी' शैली को अपनाया है। यह शैली विवरणात्मक, वर्णनात्मक एवं व्याख्यात्मक है। वर्णनात्मक शैली को अन्यपुरुष शैली भी कहते है।

**वर्णनात्मक शैली (अन्यपुरुष शैली)** - इसमें उपन्यासकार तृतीय पुरुष की हैसियत से कथा को विस्तार देता है। एक इतिहासकार की भाँति कथा का वर्णन करता है। कथा का सूत्र उसके हाथ में होता है अतः उसे धर्मवेता, समाजवेता, अथवा राजनैतिक नायक के समान बोलने और उपदेश देने की पूरी सुविधा होती है। मिश्रजी ने अपने अधिकतर उपन्यासों में इसी शैली को अपनाया है। मसलन -

'अपने लोग' उपन्यास का एक पात्र है बि. लाल वह आवारा है। नर्स मंजरी से उसके आकर्षण को वह समझने की कोशिश कर रहा है।

"नौ बजे का समय था। बी. लाल बहुत उदास सा टान-हाँल के एक पेड़ के नीचे बैठा था। पुरवा हवा बह रही थी और झीने कुहरे की तरह हल्की-हल्की फुहार पड़ रहीथी। आज मंजरी ने पीछा करते हुए बी. लाल को डांट दिया था, "आवारा, कोई काम-धाम नही है क्या? दिन-रात लड़कियों के पीछे घूमते रहते हो। शरीफ़ घर के लगते हो, शराफ़त सीखो। तुम्हारे माँ-बाप को मालूम हो तो क्या सोचेंगे?"

डांटकर मंजरी जोर-जोर से अपना सैंडिल खटकाती हुई चली गयी थी। बी. लाल को एक तेज गुस्सा आया कि साली के हिलते हुए चूतड़ पर एक लात मारकर भाग चले लेकिन नही, वह मंजरी को चाहता है। वह उसे अच्छी लगती है।"[1]

इस शैली का गुण है, उपन्यासकार की सर्वज्ञता का एहसास। उपन्यासकार कोई भी विषय उसके पहुँच के बाहर नहीं होता। प्रत्येक पात्र की भावनाओं की अभिव्यक्ति इसमें प्रकट कर सकते है। इस शैली में उपन्यासकार एक सृष्टा के रूप में आता है, स्वयं कोई पात्र नही होता, इसलिए वह उपन्यास के प्रत्येक पात्र की भावनाओं को अभिव्यक्ति दे सकता है।

मिश्रजी के सामाजिक उपन्यासों में यथार्थपरक शैली की ही प्रधानता दिखाई देती है। मिश्रजी आंचलिक उपन्यासकार भी हैं। आंचलिक उपन्यासकार का अभीष्ट संपूर्ण अंचल के जीवन यथार्थ के उसके यथार्थ परिवेश में चित्रित करना है; इसलिए कहीं कहीं उनकी शैली में विवरणात्मकता एवं इतिवृत्तात्मकता के गुण अनिवार्य रूप से आ गये है।

'जल टूटता हुआ' में सतीश द्वारा अपनी स्मृतियों में खो जाते समय मिश्रजी ने यही विवरणात्मक शैली को अपनाया। खेतो में सुबह-सुबह टहलते हुए सतीश तिवारी सोच रहा है -

"वह एक बार अपनी सारी विगत समृद्धि को कल्पना की आँखों में भरकर विह्वल सा हो गया। फिर होश संभालते ही जो अपार अभाव उसे

---

1. रामदरश मिश्र - "अपने लोग" - पृ. 64

तोड़ता हुआ दिखाई पडा, उसकी तीखी अनुभूति से भर गया। लोग कहते हैं कि इसका खानदान जवार में एक नामी-गिरामी तथा खुशहाल ज़मीदार परिवार रहा है। धीरे-धीरे टूटता-टूटता टूट गया। लोग इस सारी बरबादी का मूल कारण उसके पिता को बताते है। उसके पिता ने अपने निकम्मेपन से सारी जायदाद बेच-बेच कर खा डाली।"[1]

कहीं तो मिश्रजी यथार्थवादी शैली में इतिवृत्तात्मक रूप से स्थानों और पात्रों का परिचय देते है, कहीं रिपोतार्ज और फोटोग्राफ़िक शैली में घटनाओं की गतिशीलता और क्रियाशीलता का वर्णन करते है, कहीं हास्य और व्यंग्य शैलियों के द्वारा स्थितियों और पात्रों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते है। 'बीस बरस' उपन्यास उन्होंने रिपोर्ताजात्मक शैली में लिखा है।

'बीस बरस' में दामोदर दिल्ली महानगर का एक प्रमुख पत्रकार है। बीस वर्षों के बाद वह अपना गाँव आया है। अपने भतीजे के मोटर साइकिल पर बैठकर उसकी यात्रा का वर्णन यों हुआ है -

"नदी की रेत से लडाई करती हुई मोटर साइकिल खडंजे वाली सड़क पर आ गयी और उस पर उछलती - कूदती गाँव की ओर भागने लगी। रास्ते में अपने जाने-पहचाने अनेक गाँव पड़ते गये। उन्हें देखता रहा कि कैसे हो गये हैं? और लगा कि उनकी शक्ल सूरत में निश्चय ही कुछ बदलाव आया है। सड़क खडंजा ही सही, सड़क तो है और यह सड़क गाँवों के बीच से जा रही थी। छोटे-मोटे वाहन सड़क पर आ जा रहे थे। किसी-किसी गाँव के पास

---

1. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ" - पृ. 54-55

हाईस्कूल बन गये थे जिससे सड़क पर तमाम दुकानें खुल गयी थीं। चाय की दूकानें तो जगह-जगह दिखाई दे रही थी। गाँवों के खपरैल के मकान धीरे-धीरे पक्के मकान में बदल रहे थे। जहाँ मैने बगीचे देखे थे, वहाँ इंट के भट्ठे सुलग रहे थे। घुएँ से आकाश भरा हुआ था। यह देखकर अच्छा लगा कि सरकार के न चाहने के बावजूद लोगों ने बहुत कुछ बदला है, आधुनिक लहर को गाँव में हाँक कर ले आये हैं।"[1]

शैलीगत विशिष्टता के कारण ही विविध स्थितियों और प्रसंगो के विस्तृत विवरणों के बावजूद मिश्रजी के उपन्यास रोचक तथा प्रभावोत्पादक बन गये हैं। इतने सारे पर्व-त्योहारों, ग्रामीण और शहरी पहलुओं तथा राजनीतिक दलबंदियों के वर्णन से जो उबाऊ होने की संभावना थी, उससे उपन्यास बच गए। इन प्रसंगों को पाठक बडे चाव से पढते है। मिश्रजी ने बहुप्रचलित यथार्थवादी शैली की तर्ज पर ही छाया चित्रात्मक (फोटोग्राफ़िक) शैली का आविष्कार कर लिया है। इस शैली में विवरण इतना स्पष्ट है कि छोटी से छोटी बात का भी चित्र पाठकों के सामने उभरकर आता है।

'अपने लोग' उपन्यास में एक अन्तराल के बाद अपना शहर गोरखपुर आया है प्रमोद। वह शहर घूमकर देख रहा है -

"उसे लगा कि उसे उर्दू बाज़ार चलना चाहिए। वह अपने परिचित शहर को देखने लगा। यह वही होटल है, वही दर्जी को दूकान, तेल की, जलेबीवाली सहुवाइन, वही मुख्तार साहब का मकान.... और वर्षों से आपस में

---

1. रामदरश मिश्र - "बीस बरस" - पृ. 8

गुंथे हुए मकान ही मकान - उजडे हुए, उजडते हुए, फिर घिसटकर बसते हुए... जिनके पलस्तर उखड रहे हैं, जिन पर चुनाव, समाजवाद, वीर्यवर्द्धक बटी और स्वामी अखंडानंद के प्रवचन के विज्ञापन लाल स्याही में साथ साथ चमक रहे है। खपरैलों, टीनों और सिमेंट की छतों की ऊबड-खाबड कतारें, अगल-बगल आगे-पीछे दूर दूर तक चली गयी हैं, जिनके आगे खुली हुई गंदी नालियाँ उसी प्रेम से बह रही है जिस प्रेम से बहती थी और गलियाँ उसी प्रेम से सड़ते कूडे को समेटे हुए है जिस प्रेम से पहले समेटे रहती थीं। सब्जी की दूकान पर बैठी अधेड़ कुजडिन पंखा डुला रही है और परेशान हो होकर उसी डंडी से अपनी पीठ पर की गम्हौरियाँ खुजला रही है। दूसरी दूकान पर एक जवान स्त्री बाल खोले बैठी है, दूसरी उसके जुएँ निकालकर चिट्ट-चिट्ट मार रही है और उसी हाथ से ग्राहकों को तेल के लकठ, पिघले हुए गुड और-और चीज़ें प्रेम से पकडा रही है।"[1]

यों पाठक अपनी आखों से निकाल पाता है। उतना सूक्ष्म और बारीक वर्णन इस शैली को अपनाने से ही हो सका है। 'जल टूटता हुआ' में भी अनेक जगह मिश्रजी ने इस शैली को अपनाया है।

उदाहरण केलिए है 'जल टूटता हुआ' में तिवारीपुर गाँव के एक बरसाती रात का वर्णन - "तह पर जमी हुई भादों की अंधेरी रात कछार में फैली हुई थी। गाँव के बाहर पानी हहरा रहा था, झपटा चल रही थी, झिमिर-झिमिर पानी बरस रहा था। कुछ ही लोग ऐसे थे, जो अपने घरों में निश्चित सो

---

1. रामदरश मिश्र - "अपने लोग" - पृ. 19

रहे थे, अधिकांश घरों में लोग रात भर चारपाई यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ कर रहे थे। दीवारों टूटी हुई थी, जगह-जगह धूनियाँ लगाकर गिरती कडियों और धन्नियों को रोका गया था। छतें आठ-आठ आँसु रो रही थी। कही-कही घर के गिरे हुए अंशों को टाटी से घेर कर आड़ कर दिया गया था। इन्हीं अभागे घरों में गाँव के अनेक अभागे परिवार निशा-जागरण कर रहे थे।"[1]

इस छायाचित्रात्मक शैली से कछार के बरसाती रात, और वहाँ के लोगों की घर की बुरी हालत के यथार्थ चित्र के साथ पाठकों के मन को भी संवेदन शील बनाने में रचनाकार सक्षम बने हैं।

मिश्रजी ने कहीं कहीं प्रकृतिक और मानवीय छवियों के अंकन केलिए काव्यात्मक या भावात्मक शैली को भी अपनाया है। यों कभी यथार्थवादी और भावात्मक शैलियों की अपूर्व समन्वय भी दिखाई पड़ता है।

'दूसरा घर' उपन्यास का एक प्रमुख पात्र हा कमलेश वह गुजरात के अहमदाबाद शहर में अपने गाँव, घर-परिवार आदि से दूर प्रवासी है। होली के दिन करीब है उसे अपने, गाँव की होली का माहौल याद आता है और वह उन यादों में खो जाता है -

"आज शिवरात्रि की छुट्टी थी। कमलेश पार्क में जा बैठा था। सोच रहा था - होली दिन करीब आ गया। पहली बार होली के माहौल में गाँव से दूर था। उसे गाँव बहुत याद आ रहा था। अपने यहाँ होली का दिन नहीं होता, होली का मौसम होता है - पूरा महीना डेढ़ महीना होली का मौसम।

---

1. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ" पृ. 23

सरसों फूली नहीं कि फागुनी रंगत हवा में तेरने लगती है और धीरे-धीरे फूलों का रंग गाढ़ा होने लगता है। जड़ा अपने उत्कर्ष पर आकर उतरने लगता है और एक खुशबुदार ऊष्मा धूप के भीतर से फूटने लगती है। फागुन आता है तो धरती पागल सी हो उठती है, उसके अंग-अंग को फ़ोडकर कोई-न-कोई फूल उभर आता है, वह फूलमयी हो उठती है। कंगाली में भी आदमी मस्ती से भर जाते है। उसे याद है, खेतों में काम करती मज़दूरनें कीचड़ फेंक फेंककर रेलगाडियों पर मारती है, एक दूसरी को छोड़ती है। आदमी आदमी को खदेड लेते है धूल-कीचड लेकर। सारे अभाव और दुःख-दरद के भीतर से उठता हुआ उनका फागुन न जाने उनको भीतर भीतर कितना भर देता है - शंकर है फागुन। नहीं, वह शंकर ही नही, विष्णु और ब्रह्मा भी है। धूल उडाता अवधूत शंकर फागुन, सौन्दर्य बिखेरता विष्णु फागुन, नई-नई रचना करता ब्रह्मा फागुन।"[1]

यहाँ प्रवासी कमलेश के खयालात ज़ाहिर हुए हैं। वह अपने गाँव और वहाँ के फागुन में खो गया है। इसे दर्शने केलिए मिश्रजी ने भावात्मक शैली को अपनाया है और यों वह अधिक आकर्षक बन पडा।

मिश्रजी उपन्यासकार होने के साथ साथ कवि भी है। इसलिए कहीं कहीं जहाँ पात्रों को संवेदनशील दिखाया गया है वहाँ उनकी शैली भी काव्यात्मक हो गई है। 'रात का सफ़र' उपन्यास में सफ़र के दौरान गाडी गाँव से गुज़रते वक्त ऋतु भी अपने बचपन की यादों में खो जाती है। दरअसल गाँव का चित्रण करते जाने अनजाने मिश्रजी की शैली काव्यात्मक हो जाती है -

---

1. रामदरश मिश्र - "दूसरा घर" - पृ. 163

"बचपन के कुछ साल तो गाँव में ही बीते। बाद में भी मैं प्रायः गाँव जाती थी दादी-दादा जीवित थे। वसंत में तो दस पाँच दिन केलिए गाँव चली ही जाती थी। शहर में रहने पर भी गाँव की मिट्टी से उसका लगाव नही टूटा था। झूमते हुए गेहूँ-जौ के सुनहले खेत, पगडंडियों को बुहारती बहती अलहड़ फागुनी हवा, मंजरियों से लदे आम के बगीचे, ताल तलैयों के पानी में थिरकती हरितिमा की एक नई गहराई, दिगंतो तक फैले रंगों के रहस्यमय लोक में खाई दृष्टि, पत्तों को झाडकर डाल डाल की पोर-पोर से आग से फूल टहकते पलाश, नदी के तट से टकरा टकराकर गूँजता लहरों का गीत और दूर किसी वृक्ष से उडकर आता हुआ कोयल का स्वर.... हवा की तरह कितना जिया है मैं ने यह उन्मुक्त जीवन।"(1)

'रात का सफ़र' और 'आकाश की छत' में मिश्रजी ने पूर्वदप्ति विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग किया था। इस विधि में कथा आत्मविश्लेषणात्मक शैली में प्रस्तुत की जाती है। उपन्यासकार वर्तमान से सम्बद्ध या उसे सार्थकता प्रदान करनेवाली जीवन स्थिति को पात्रों की स्मृति के रूप में बिखेरता है। इन स्मृति परक विश्लेषणात्मक प्रसंगों को पढ़ते ही पाठक की उत्सुकता जाग उठती है। उसकी उत्सुकता निवृत्ति हेतु कथाकार पूर्व दीप्ति विधि द्वारा कथा सूत्र को प्रधान पात्र के माध्यम से उसके विगत जीवन का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

'रात का सफर' में नायिका का आत्मविश्लेषण स्वरूप ही पाठकों के सामने प्रस्तुत होता है। 'रात का सफर' में ऋतु सोचती है -

---

1. रामदरश मिश्र - "रात का सफ़र" - पृ. 17

"मैं भी तो एक पुल ही थी डॉक्टर, जो ऊपर टँगी हुई तुम्हारे और पिताजी के परिवार को मिला रही थी और मेरे अन्दर में से वेदना की कितनी ही जल धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं। मेरे अन्दर की जलधारा को कौन देखता था? और मैं तो समय की गाडी का दबाव झेलती हुई शोर भी नही कर सकती थी - पुल के विपरीत एकदम मौन थी।

जून बीत गया। आधी जुलाई बीत गयी, तब तुम आये। पानी बरसना शुरु हो गया था। अपने विरह में मुझे झुलसाकर जब तुम पानी के साथ आये तो मुझे एक अजब शीतलता का अनुभव हुआ। मेरे भीतर उसी रोज़ ससुराल में आयी दुल्हन की ताज़गी और सुगंध भर उठी, एक मान का भाव भी उभर आया। पहले तो बोलूँगी नही, फिर तुम्हें सुनाऊँगी, ज़रा रात तो होने दो। तुम अपने पिताजी के साथ बैठे, ऊपर छत पर गये, बहनों से बोले बतियाये, छोटे भाई से हालचाल पूछा। हाँ तुम मेरा हालचाल कैसे पूछते, किससे पूछते? तुम्हारी बहनें कभी एकांत भी तो नही देती। एकाध बार एकांत भी तो तुम ला परवाही से चले गये"[1]

इस प्रकार मिश्रजी ने मुख्यतः अपने उपन्यासों केलिए वर्णनात्मक शैली को अपनाया है, लेकिन संदर्भ के अनुसार ये कहीं कहीं काव्यात्मक भी हो गया है। उनकी शैली यथार्थवादी होने के कारण कही कही विवरणात्मक भी है। अपनी निजि शैली का विकास करने में भी वे सक्षम हुए और उसकी खास विशेषताएँ हैं सरलता संप्रेषणीयता और रोचकता, जिसका संबध उनके निजि व्यक्तित्व से भी है।

---

1. रामदरश मिश्र "रात का सफ़र" - पृ. 28

## मिश्रजी के उपन्यासों की भाषागत विशेषताएँ

प्रायः सभी उपन्यासों में शिल्पगत अनिवार्यता के तहत भाषा प्रयोग के दो स्तर दिखाई देते हैं। पहला है लेखक के वर्णन विश्लेषण अथवा कथाकथन का भाषा स्तर और दूसरा है पात्रों का आपसी संवाद (कथोपकथन) में प्रयुक्त भाषा का स्तर। इसे उपन्यासकार की भाषा और पात्रों की भाषा के रूप में भी विभाजित किया जा सकता है।

"सामान्यतः उपन्यास में भाषा के दो रूप दिखाई देते हैं - प्रथम, वह भाषा जिसमें उपन्यासकार कथा कहता तथा घटनाओं एवं पात्रों का विश्लेषण करता है। यह तो हुई उपन्यासकार की भाषा जो सम्पूर्ण उपन्यास में एक-सी रहती है। द्वितीय वह भाषा जिसका प्रयोग उपन्यास के पात्र वार्तालाप में करते हैं। इसे वार्तालाप की भाषा भी कहा जा सकता है। यह भाषा पात्रों के अनुसार मिलते-जुलते अनेक रूप ग्रहण करती रहती है क्योंकि इसका आधार पात्रों का विशिष्ट व्यक्तित्व होता है।"[1]

उपन्यासकार की भाषा में सामान्यतः एक रूपता दिखाई देती है जबकि पात्रों के आपसी संवाद की भाषा उनके शिक्षा के स्तर, वर्ग जाति एवं व्यवसाय के आधार पर बदलती रहती है पात्रों का अपना व्यक्तित्व भी भाषागत विशिष्टता का एक प्रमुख कारण बन जाता है। क्योंकि औपन्यासिक कथा का कलेवर कल्पना प्रसूत होता है, इसलिए अधिकाधिक विश्वसनीयता, प्रामाणिकता, एवं स्वाभाविकता उत्पन्न करने के उद्देश्य से उपन्यासकार जिन सारे तत्वों एवं

---

1. डॉ. आदर्श सक्सेना - "हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प-विधि" - पृ. 260

प्रविधियों का प्रयोग करते है, उनमें पात्रानुकूल भाषा प्रयोग की विधि अत्यन्त व्यापक और पुरानी है। यह हम मिश्रजी के उपन्यासों में व्यापक रूप में देख सकते हैं।

मिश्रजी के आंचलिक उपन्यासों में पात्रों के वार्तालाप की भाषा का स्तर सामान्य साहित्यिक भाषा से काफी भिन्न है। उसमें स्थानीय बोलियों या आँचलिक भाषा के शब्दों, मुहावरों लोकोक्तियों, ध्वनि बिंबो और प्रतीकों आदि का प्रयोग ही बहुतायत से नही हुआ है, बल्कि कहीं - कहीं तो पूरा वार्तालाप ही स्थानीय बोली में हो गया है।

'पानी के प्राचीर' में पाँडेपुरवा गाँव में गाँधीजी का जय जयकार करते हुए सुराजी जुलूस निकाल रहे है। बेनि काका सुराजियों और गाँधीजी की निन्दा करता है। रघु उत्तेजित होकर जवाब देता है। उनके बीच का वार्तालाप -

"बेनी काका बोले - "तनि देखिल। ई सब बात में टाँग अडाते है जनने सुनने को कुछ भी नही। हम दुनिया भर का अखबारी हल जानते है। हम गोरखपुर जाइल करते है। गन्हीजी बनिया हवे, अवतारी आदमी नाहीं। भगवान् बनि के पैदा होखेंगे राम-राम! अंगेरज बहादुर फितुही धारी सुराजिन के भूज न डाले ते कहना। धरम-करम नहट कह रहे हैं ये सुराजी लोग।"[1]

रघु बाबा और भी उत्तेजित हो गये। सिर झाँट-झाँटकर कहने लगे - "बेनी तू कछू नाहीं जानल, जे बा से। सुराज मिलि के रही। तुम्हें चमारे

---

1. रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" - पृ. 81

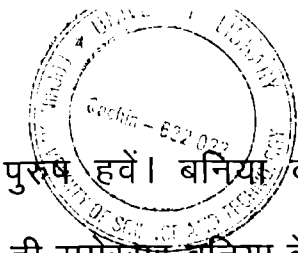

के साथ खाये के परी। गान्हीजी अवतारी पुरुष हवें। बनिया कवन बाउर आदमी हवे। बनिया न कहत हव, उप जाके ऐ ही सुमेस्सर बनिया के आगे हाथ फइलावल, उधार माँगल, रोवल गिडगिडाल।"

लोक भाषा तथा आंचलिक बोलियाँ प्रत्येक अंचल के निवासियों के संस्कारों, सांस्कृतिक चेतना, अनुभूतियों तथा उनकी अंतश्चेतना के साथ गहरे स्तर पर जुडी रहती हैं। इसलिए किसी अंचल विशेष की आंतरिकता की, वहाँ की छवियों की सच्ची और स्वाभाविक अभिव्यक्ति उसी अंचल की बोली या भाषा में संभव हो सकती है। अतः जन जीवन से जुडे रहने केलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह उनकी बात उनकी भाषा में कहे और उसी रूप में समझे भी।

कथोपकथन के द्वारा मिश्रजी ने अपने उपन्यासों में वर्णित घटनाओं या दृश्यों में सजीवता लाये हैं और उनके संगठन से कथानक का विस्तार किया है। उपन्यास के कथोपकथन प्रत्यक्षतः कथानक के सूत्र से संबंधित है। मिश्रजी के उपन्यासों में कथोपकथन का संबंध कथानक और पात्रों दोनों से होते हुए भी पात्रों से विशेष रूप से है। पात्रों के कथोपकथन के माध्यम से, जो विचार प्रकट हुए है, वे ही पाठक के साथ उनकी निकटता का माध्यम बनते हैं। पात्रों के संवाद द्वारा मिश्रजी ने पाठकों को अपने पात्रों, विविध जटिल परिस्थितियों तथा अन्तर्द्वन्द्व संबधी इतना प्रत्यक्ष बोध कराया है, कि अन्य किसी माध्यम से संभव नही था। संवाद के द्वारा उन्होंने अपने चरित्रों की व्याख्या की हैं और उनके विकास की ओर अग्रसर भी हुए हैं। उपन्यास के

संवाद सचमुच लेखक के उद्देश्य को प्रकट और स्पष्ट करने में सक्षम हैं। मिश्रजी ने अपनी बात को इन संवादों के माध्य से बताया है। मसलन, पानी के प्राचीर का प्रसंग है -

यहाँ नीरु और मि त्रिपाठी के बीच जो वार्तालाप हैं उसमें नीरु का चरित्र उभरकर आता है।

"नीरु ने कहा - "हाँ महाशय, आपकी-मेरी भेटं आज से कई साल पहले मलिन्द भाई के डेरे पर हुई थी।"

"ओर माई गुडनेस।" कहकर मि. त्रिपाठी हँस पडे।

"तो अभी आज कहाँ से आ रहे हैं?"

"जो मैं आज ही केस से छूटकर आ रहा हूँ।"

"हाँ-हाँ आपको आपके गाँव के उस बदमाश ने झूठे ही इस कीचड़ में डाल दिया था।"

"साहब, मैं जाने या अनजाने किसी भी तरह से इस सिलसिले में जेल गया तो, इसे मैं अपना सौभाग्य ही मानता हँ। देश केलिए मर मिटने से बढ़कर कौन बात हो सकती है?"

"तो क्या आपने सचमुच वे सारी खुराफ़तें की थी?" तो क्या रिपोर्ट सही थी?" मि. त्रिपाठी चौंककर वोले।

"जी नही, मेरे खिलाफ जो रिपोर्ट थी वह सरासर गलत थी, लेकिन मैं सोचता हूँ कि काश वह सही हो पाती।" नीरु बडे दर्प से बोल रहा था।

"महाशय, आप जानते हैं, किससे बातें कर रहे है? आपकी बातों से राजद्रोह की गंध आ रही है।"

"देश द्रोह का नही न।"

मि. त्रिपाठी जैसे मर्माहत हो गये। हृदय के भद्र व्यक्ति थे। उन्हें देश के प्रति प्रेम था मगर सरकारी गुलाम पहले थे।"[1]

मिश्रजी के उपन्यासों के संवादों का एक और गुण उसकी उपयुक्तता है। सवाद, उपन्यास की घटना, अवसर तथ वातावरण के अनुकूल है। कथोपकथन का उद्‌देश्य कथानक को आगे बढ़ाना तथा पात्रों को चरित्र पर प्रकाश डालना है। इसीलिए उसके उपयुक्तता का संबध घटना-औचित्य से है। परंतु वह पात्रों का चित्रण भी करता है, इसलिए विविध-पात्रों के स्वभाव के भी होना है अनुकूल भी होना है अन्यथा चरित्र विकास की दृष्टि से उसका महत्व नही रहेगा। यदि कथोपकथन का, पात्रों के स्वभाव से वैषम्य नही होना चाहिए तो उसे पात्रों के सामाजिक - बौद्धिक और सांस्कृतिक स्तर के अनुकूल रहना होगा।

'अपने लोग' उपन्यास के चरित्र, के लाल और बि. लाल के बीच का संवाद इस केलिए उत्तम उदाहरण है। के लाल पढा लिखा नही तो बी. लाल शिक्षित और चलाक है। दोनों भाई अपने अपने बौद्धिक और सांस्कृतिक स्तर पर बिलकुल भिन्न हैं। उनके संवाद से यह बात स्पष्ट है। उनके चरित्र की विशेषताएँ भी इस दौरान उभर आती है।

---

1. रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" - पृ. 199

विद्रोही और आवारा बेटा बि. लाल के तिरस्कार से माँ कलावती दुःखी है। जब उसे मालूम होता है कि बि. लाल ने छल से सारी जायदाद अपने हिस्से करवाने केलिए अनपढ भाई ब्रिजलाल का इस्तेमाल किया तो वह एकदम टूट जाती है। बि. लाल के पास रोती हुई माँ को पाने पर के लाल परेशान है।

"नहाकर निकला तो देखा कि उसकी माँ कमरे के एक कोने में बैठी हुई सिसक रही थी। माँ के खुले हुए अधपके बाल उसकी पीठ पर बिखरे थे, वह एक सफ़ेद साडी पहने थी। आंसुओं से तर उसका चेहरा करुणा और व्यथा की मूर्ति लगा रहा था। कौन कह सकता है कि यह वही माँ है, जिसके कारण पिताजी ने आत्महत्या की थी। बी लाल को लगा कि उमर आदमी को क्या से क्या बना देती है।"

"माई काहे रोवति बा हो ब्रिजलाल?" सुरती मलते हुए के. लाल पूछ रहा था।

"अरे भइया के लाल, जाओ, घूमो-घामो, सुरती, ठोंक-ठांककर भैंस चराओ! ये सब बातें तुम्हारी समझ में नहीं आयेंगी।"

"हे ब्रिजलाल, देख हम कहि देत हई, हमके के. लाल, के. लाल मत कहल कर। अपने ता ब्रिजलाल से बी. लाल होके ईसाई बनी गइल हमहूँ के के. लाल कहि के ईसाई बनाबल चाहत बाट। अरे हम ई पूछत हुई कि भाई काहैं रोवति बा?"

"तो तुम्हीं पूछ लो क्यों रोही है, बकवास क्यों करते हो?"[1]

इन संवादों का एक और गुण है संबद्धता कथोपकथन का कथानक तथा पात्रों से किसी न किसी प्रकार प्रत्यक्ष पारस्परिक संबंध अवश्य रहता है। ये संवाद स्वाभाविक भी हैं ऐसा कभी भी नही लगता कि कोई भी कथोपथन बलपूर्वक उपन्यास में समावेशित है। ये कृत्रिम नहीं है। यानी कथोपकथन का समावेश उपन्यास में स्वाभाविक और आवश्यकता अनुसार ही हुआ है। जहाँ उसे लंबा चाहिए वहाँ लंबे वाक्यों का प्रयोग भावों को स्पष्ट करने केलिए हुआ है। 'आदिम राग' उपन्यास के मुख्य पात्र शील और रीता का यह संवाद ऐसा है।

शील जो रीता का अध्यापक भी है, रीता के प्रति उसकी भावना को व्यक्त कर रहा है, और रीता उसके मन में प्रो. शील का स्थान क्या है, यह बताने को कोशिश कर रही है -

"वास्तव में सर, आपके सहचर्य में मुझे एक माधुर्य के साथ साथ पवित्रता भी अनुभव होती है और न जाने उस दिन की उस क्रिया ने कैसी कैसी चुभन भर दी - जैसे शीशा टूट गया हो ओर उसके अनेक टुकडे बिखर कर चुभने लगे हो.... यदि वही करना मेरा ध्येय होता तो बहुत से लोग मिल जाते.... लेकिन आप में ऐसा कुछ है जो मुझे ओरों में नहीं दिखाई पडा और जब वही टूटता हुआ अनुभव हुआ, तो पीडा से अंग अंग तडप उठा।"

"लेकिन रीता, यह बताओ, जब दो आदिम स्थितियाँ पास-पास आकर एक दूसरे को इतना उत्तेजित कर दे, तो जो कुछ हो जाय उस पर

---

1. रामदरश मिश्र - "अपने लोग" - पृ. 68

किसी का क्या वश? तुमने कहा - "मैं नीच हूँ, कमीना हूँ" क्या तुमने महसूस किया है मैं क्लास की किसी लड़की की ओर किसी अन्य दृष्टि से देखता हूँ?"

"नही सर, यह तो बिलकुल नही है, लड़कियों के मन में आपके चरित्र के प्रति बहुत सम्मान का भाव है। इसीलिए तो मुझे उस दिन यह मूर्ति टूटती हुई दिखाई पड़ी, और तकलीफ़ हुई थी। नीच और कमीना मैं ने तो नहीं कहा, आपने-अपने आप कहा और न जाने उस विकृत मनः स्थिति के किस स्वर ने उसकी हामी भर दी।"[1]

**शब्द विन्यास**

मिश्रजी के उपन्यासों का 'शब्द विन्यास' स्वाभाविकता या सहजता उत्पन्न कराने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। विशेषतः उनके आंचलिक उपन्यासों में। चरित्र चित्रण और कथोपकथन की प्रामाणिकता और विश्वसनीयता को बरकरार रखने में और उचित परिवेश का बोध कराने में भी यह अत्यधिक सहायक सिद्ध हुआ है। शब्द विन्यास के अन्तर्गत आँचलिक शब्द, उर्दू, अंग्रेज़ी, संस्कृत शब्द, अनुरणानात्म ध्वनि परिवेश बोधक शब्द आदि आते हैं।

**आंचलिक शब्दावली**

कथ्य की प्रकृति के अनुरूप मिश्रजी के उपन्यासों की भाषा एक छोर पर ठेठ आंचलिक-देहाती है और दूसरे छोर पर परिनिष्ठित - महानगरीय। 'पानी के प्राचीर' 'जल टूटता हुआ जैसे' प्रारंभिक उपन्यासों में आंचलिक

---

1. रामदरश मिश्र - "आदिम राग" - पृ. 99

ध्वनियों, शब्दों और स्थानीय भाषिक प्रयोगों का व्यापक इस्तेमाल हुआ है, पर शहर और महानगर के परिप्रेक्ष्य में लिखे गए उपन्यास में आंचलिक रंग और भाषिक प्रयोग कम है। भाषा के सामान्य प्रवाह में ही आंचलिक शब्द या विकृत तत्सम शब्दावली का संदर्भानुकूल उपयोग हुआ है। स्थानीय रंगत और परिवेशबोधी लय और ध्वनि प्रयोगों से आंचलिकता की सृष्टि की गई है। जैसे

स्वरागम - पंचायत - वोंचायत, दवा-बोवा, स्कूल-इसकूल

व्यंजन लोप - मालवीयजी-मालवी जी, ज़िन्दगी - जिनगी, कलक्टर - कलट्टर

व्यंजन विकृति - वेश्या - बेस्सा, विद्वान - विदमान, गाँधी - गान्ही, आँधी - आन्ही भूत - हूत, षडयंत्र - खडचंत्र, मलिन्द - मलिन्न एम.एल.ए. - एम्मेले, डॉक्टर - डाकटर, मृतक - मरतक

इस तरह के आंचलिक ध्वनिप्रयोग जनपदीय जीवन और यथार्थ के व्यंजक हैं।

**अनुरणनात्मक ध्वनि प्रयोग**

विविध अनुरणनात्मक ध्वनियों का प्रयोग भी सार्थक एवं परिवेश व्यंजक है। ये अनुरणनात्मक ध्वनियाँ श्रोत-बिम्बों और आंतरिक लय को संजोती है।

"लडके हो-हो करके तालियाँ पीट रहे थे -

धिना धिन्ना धिनाक

धिना धिन्ना धिनाक"[1]

---

1. रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" - पृ. 12

"न जाने किस पेड से कोयल कूक उठी-कुऊ....कुऊ।"[1] इसीतरह पुक पुक (मशीन की ध्वनि), हट्ट हट्ट (खलिहान की गूँज) छर छर छर छर (बादल, बिजली व बरसात की ध्वनि)

**परिवेशबोधी आंचलिक शब्दावली**

मिश्रजी के उपन्यासों में कथात्मक, वर्णनात्मक, और विवरणात्मक अंशों की प्रमुखता के कारण परिवेशबोधी शब्दावली का सार्थक और सटीक प्रयोग हुआ है। अंचल की बोली गँवई जीवन से सीधा साक्षात्कार कराती है। लेकिन संप्रेषण का संकट उत्पन्न न हो, इसके लिए मिश्रजी ने सामान्य हिन्दी-वाक्यों के बीच ठेठ आंचलिक शब्दों को गूँथ दिया है, ताकि वे ग्रामीण जीवन की झलक दे सकें। खेत-खलिहान, रीतिरिवाज़, प्रकृति, मौसम, पशुपक्षी, दिनचर्या, हास परिहास, गाली-गलौज, उत्सव-त्योहार, राजनीति आदि से सम्बद्ध अंचल की शब्द-संपदा अछूते परिवेश और गंवई जीवन को यथार्थ स्वर देती है। घारी (ठान), गम्मज (हँसी-मज़ाक), कलन्दर (फालतू) घाट करते (आशानाई करते), भरभट्ठ (अपवित्र), तार भाठ चकरोड, फट्ट, अगिया-बैताल, पेटमडुवा, चालिसांदर, साड़ातोड़ी मकुनी, आदि शब्द नितांत आंचलिक है। हरवाहिन, बियाहल, सवति करान्ती, डेवढ़ी, नताइत आदि शब्द स्थानीय प्रभाव वाले तद्भव शब्द है।

'पानी के प्राचीर' 'जल टूटता हुआ' 'सूखता हुआ तालाब' आदि उपन्यासों में आंचलिक शब्दों का आधिक्य है, पर बाद के उपन्यासों में इनका

---

1. रामदरश मिश्र - "पानि के प्राचीर" - पृ. 27

प्रयोग कम हैं क्योंकि वे ग्रामीण जीवन से संबद्धित नहीं है। अगर प्रयोग हुआ भी है तो अंचल की स्मृतियों या गाँव से जुडे पात्रों के वर्णन में ही हुआ है।

**शब्द और परिवेश**

वर्णनात्मकता के बावजूद शब्द-प्रयोग में परिवेश को मूर्त कर देने की शक्ति है। जैसे

"और फिर वह हट्ट-हट्ट करके बैलों को हाँकने लगा"(1)

"बेनी काका नाक से सारंगी बजाने लगे

किंण किंण किंण किंण किंण किंण किंण किंण

बाहरे बाबा बाह - बाह!"(2)

"ह-ह-ह हास - ह-ह-ह-हास - भेंडिया उछल रही है।

तेज पुरुवा हुहुकार रही है। ऊपर से पानी बरस रहा है।"(3)

"धुर-धुर-धुर-धुर पानी की धारा गडही में गिर रही है।"(4)

"झुक-झुक-झुक-झुक... गाडी शहर की सीमा में प्रवेश कर गयी है।"(5)

---

1. रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" पृ. 29
2. पृ. 54
3. पृ. 103
4. पृ. 103
5. रामदरश मिश्र - "अपने लोग" पृ. 1

"गुटरुगू.....गुटरूगू

कलावती ने बरामदे की ओर देखा। गोखे में कबूतर का जोडा रतिक्रिया में मस्त होकर कलनाद कर रहा था।[1]

इसी प्रकार फट्टर फट्टर जूता फटफटाता हुआ, सटर सटर जीभ चला रहा है, वे मुल्हुर मुल्हुर ताकते रहे, नल पर हुचुर हचुर पानी पीते है। जैसे प्रयोग क्रिया की मूर्तता के कारण जीवन्त और यथार्थ ग्राही बन गए है।

**अंग्रेज़ी, संस्कृत और उर्दू शब्दावली**

अंग्रेज़ी के शब्दों का प्रयोग मिश्रजी ने शहरी और शिक्षित पात्रों और परिवेश के संदर्भ में किया हैं। अंग्रेज़ी शब्दों का विकृत रूप ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में भी हुआ है। 'स्मगलिंग' 'टार्च' 'टेंपररी' 'जन्टूलमैन' 'फ़िलासफ़र' 'कॉफीहाउस' 'इल्यूजन' आदि शब्द शिक्षित पात्रों के संवादों में प्रयुक्त हुए है।

संस्कृत और उर्दू शब्दावली का सामान्य प्रयोग हिन्दी के जीवन्त रूप को ही दर्शाता है। 'जहन्नुम' 'शगल' 'हकीकत' 'तहज़ीब' जैसे शब्द हिन्दी की प्रकृति के अनूकूल हैं। 'प्लावन' 'स्वन्दित' 'संत्रास' 'हंतदर्प' जैसे तत्सम शब्द भी प्रचलित है। कुछ कुछ शब्द मिश्रजी ने अपने आप भी गढ़े है जैसे - 'अरलम-तरलम' देरहम-वरहम'। भाषा में इस प्रकार के संतुलित प्रयोग कृत्रिमता के स्थान पर जीवंतता और भाषा के विकसित रूप को दर्शाता है।

---

1 रामदरश मिश्र - "अपने लोग" - पृ. 201

**वाक्य गठन**

उपन्यासों में वाक्य-गठन भावों के उन्मीलिन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। अमूमन सामान्य कथा-प्रवाह में छोटे छोटे साधारण वाक्य गत्यात्मकता ला देते है। मिश्रजी के वाक्य गठन में ऋजुता, संक्षिप्तता और प्रासादिकता है। अभिधात्मक कथनों के कारण अधिक संप्रेषणीय भी है। प्रकृति वर्णन, मानवीय स्पंदनों, रोमानी अभिव्यंजनाओं, अभाव के दृश्यों के संदर्भों में वाक्य रचना विशिष्ट बन गयी है।

'जल टूटता हुआ' में उमाकांत पाठक द्वारा अपनी शिष्या शारदा का स्मरण और उमाकांत के प्रेम की अभिव्यक्ति -

"शारदा.... शारदा, सुगंध की एक अनुभूति, कोमलता का एक स्पर्श, स्वच्छता की एक भाषा और आँखों की निर्मल गहराइयों के पार कोई मर्ममयी कहानी..... उसे कई दिनों से ऐसा लगता है कि वह कहीं अनजाने ही खुशबूदार गुनगुने जल में डूब गया है और आज की अनुभूति जैसे मात्र न रहकर एक विश्वास बन बैठी है, इस अकेलेपन की घाटियों में जैसे एक कोमल अपनाव मिला हो - यह अपनाव इस विरान् के पट पर उभर कर चित्त को ओर उदास कर बैठा है। न जाने कैसा-कैसा लग रहा है, जैसे सुनसानों के बीच तैरती हुई एक आवाज़।"[1]

'पानी के प्राचीर' में पाँडेपुरवा गाँव का एक फागुनी रात का वर्णन-

---

1. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ" - पृ. 123

"फाग की मस्ती उतरी नहीं कि चैता की मदक गन्ध प्राणों से फूट पडी। प्रकृति नवता के उन्माद में डूबी है। रात का पिछला पहर काँपती हुई चाँदनी में सराबोर है। पाकड़ में टूँसे आ गये हैं। जो कहीं-कहीं लाल-लाल कोमल हथेलियों की तरह पसर गये है। आम्र-मंजरियों की गन्ध झकाझक उड़ रही है, वासन्ती हवा की झरझराहट के साथ। 'पी कहाँ' पी कहाँ' पपीहा रट रहा है। इस चाँदनी में दूर-दूर के गाँव और खलिहान उडते मालूम पड रहे है।"[1]

इन वाक्य गठनों की गद्य-लय भीतर के सुनेपन, सुगबुगाते संवेदनों टूटते हुए निरीह अहसासों, सकमसाते जीवनरागों और रोमांटिक तीव्रताओं की विविध अनुभूतियों को न केवल व्यंजित करती है बल्कि महसूस करने का भी बाध्य करती है।

## लोक गीत

मिश्रजी ने गँवई बोली के वाक्यों और लोकगीतों से आचलिक माहोल को गहरा और लयात्मक बनाया है। लोकगीत पूरे परिवेश की व्यथा, नारी की कसकती पीर और अंचल की समस्याओं को जीवंत करते है। आंचलिक उपन्यासों का हर कथा-सूत्र एक नया आयाम खोलने वाला होता है चाहे वह आंचलिक गीत की योजना ही क्यों न हो। वह गीत दरअसल मात्र गीत नही होता, उपन्यासकार उससे दोहरा कार्य कर लेता है। यानी गीत, गीत रूप में अंचल की संस्कृति को तो प्रस्तुत करता है, साथ कथा को नया

---

1. रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" - पृ. 27

आयाम भी देता है। 'जल टूटता हुआ' उपन्यास के आरंभ में नागपंचमी के दिन गीता के द्वारा गाई गयी कजली -

"हरि हरि पवन बहे पुरवइया नदिया
डोले ए हरी।"(1)

के द्वारा पूर्वी उत्तर प्रदेश के त्योहार का परिचय तो पाठक को मिलता है, साथ ही यह गीत मास्टर सुग्गन को अपनी लड़की गीता के विवाह के विषय में सोचने के लिए मजबूर भी करता है।

इसी तरह - "सेर भर गोहुवा बरसि पीसि खइबों
वियऊ जाने ना देबें हो....
तोहका पुरुबी बनिजिया
पियऊ जाये ना देबें हो।"(2)

एक ओर इस गीत द्वारा अंचल की लोक - संस्कृति पर प्रकाश पड़ता है, वही आगे की घटना - सतीश का परदेश गमन की ओर भी संकेत मिलता है। इस प्रकार गीत उपन्यास के कथा सूत्रों को पिरोने और संबद्ध को बनाए रखने में सहायक बनते हैं।

अंचल को चित्रात्मक एवं ऐन्द्रियक सम्मूर्तन देनेवाले वर्णनों में भी लोग गीतों का प्रयोग हुआ है -

---

1. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ" - पृ. 33
2. पृ. 103

"ठंडे-ठंडे बालू की छौंक पैरों को लगी तो मालूम पड़ा कि नदी समीप आ गयी है। कुहरा कुछ-कुछ छंट गया था। गोरी के पास का पीपल धुँधुला - धुँधुला सा दिखाई पडने लगा। कौओं की कांव-कांव से बँसवारी गूँज गयी। मल्लाह उस पार अपनी झोपडी में आग सुलगाये गा रहा था -

"उडि जा हंसा अमरलोक के
इहाँ केहू न तुहार"[1]

गाँव के पर्व, त्योहारों शादी आदि संदर्भों में भी लोकगीतों की अहं भूमिका है। 'पानी के प्राचीर' में संध्या की शादी के विदाई के संदर्भ में 'बिदाई गीत' प्रस्तुत है -

"आह! संध्या जा रही है। नीरु, तुम्हारी प्यारी संध्या बिदा हो रही है। पागल तू खुश है... खुश है! 'हाँ-हाँ, खुश हूँ, खुश हूँ - वह जा रही है, उसकी आँखों से बरसात झर रही है, मत देख नीरु उधर, तेरा संयम टूट जायेगा.....

"बाबा जे रोवलें जूनी-जूनी
जब नहाये क जुनिया
घर में क बेटी कहाँ गइलू हो
देतु धोतिया से डोरिया।
मइया जे रोवेली जूनी-जूनी
जब सूते क जुनिया

---

1. रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" - पृ. 112, 113

गोदिया का बेटी कहाँ गइलू हो
कइलू मोदिया तू सून।
भइया जे रोवेलें जूनी-जूनी
जब कलेउवा क जुनिया।
घर में क बहिनी कहाँ गइलू हो
देतु कलेउवा निकारि।
भौजी जे रोवेली जूनी-जूनी
जब रसोइया क जुनिया
घर में क बहिनी कहाँ गइलू हो
देतु नुनवा से तेलवा।"[1]

**कहावत और मुहावरा**

उपन्यासों में कहावतों-मुहावरों का प्रयोग आंचलिकता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ये लोकोक्तियाँ सचमुच पृष्ठभूमि, अंचल के ठेठपन और लोकजीवन के सत्यों की ज़िन्दी अभिव्यक्तियाँ हैं। मिश्रजी ने अपने उपन्यासों में खासकर आँचलिक उपन्यासों में कहावतों और मुहावरों का प्रयोग किया है। आँचलिक का रंग लाने में ग्रामीण चरित्रों की स्वाभाविकता केलिए ये अधिक सहाचक हुए इनके उपयोग से संवाद अधिक संप्रेषणीय और रोचक भी सिद्ध हुए है। 'आस्तीन का साँप' 'सियार फेंककर चुप होना' 'खून की नदी बहाना' 'चार हाथ की गरदन हिलाना' 'छाती में साँप लोटना' 'आठ-आठ आँसु रोना' आदि अनेक प्रयोग उनके उपन्यासों में हैं।

---

1. रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" - पृ. 183-184

"मुखिया ने हँसकर कहा - "अरे भाई, तुम लोग क्या समझो? आस्तीन में ही साँप होता है। कल हम गाँव की सभा जुटायेंगे तो आप लोगों को मालमूल हो जायेगा कि कौन विरोध करता है।"[1]

"सारी प्रकृति की नसों में जैसे रक्त जमकर ठहर गया था। आँखों में विधवा-सी हरियाली एक भय रेखा खींच दे रही थी। लगता था, जैसे अभी-अभी कोई सियार फेंकरकर चुप हो गया है।"[2]

"अरे जा, बडा आया है खून की नदी बहाने वाला! बढ़कर खेत काट रहा है और चमाइनों की ओर से लडने आया है। भिखमंगा कहीं का। बड़बड़ करोगे तो फिर दिखा हूँगा।"[3]

"दारोगा ने बेनी काका की ओर इशारा करके पूछा - "तू बता, चार हाथ की गरदन क्यों हिला रहा है?"[4]

"बेटा, अगर सन्यासी को मारकर तुम्हें सुख मिलता हो तो मार लो। मगर सिवा नरक के तुम्हें क्या हासिल होगा?"

वह पिस्तौलवाला युवक ठठाकर हँसा - "खूब, क्या खूब? सौ-सौ चूहा खाया के बिलाया चली हज को...."[5]

---

1. रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" - पृ. 53
2. पृ. 115
3. पृ. 136
4. पृ. 145
5. पृ. 191

"कुँजू अब अधिक से अधिक बाहर रहने लगा - उस खंडहर में कहाँ वह रहे, कहाँ भयहु? लोग कहने लगे कि कुंजु को अब घर नहीं सुहाता। बिरजु सादी कर आया है तो उसकी छाती पर सांप लोटता है, उसे घर अच्छा नही लगता। इसलिए बाहर-बाहर घूमता है।"[1]

"दीवारों टुटी हुई थीं, जगहे-जगह धूनियों लगाकर गिरती कडियों और धन्नियों को रोका गया था। छतें आठ-आठ आँसु रो रही थीं।"[2]

"राजनीति का मतलब यह कि सांप भी मरे और लाठी भी न टूटे। बहुत से काम करने हैं तुम्हें।"[3]

"आन्हर कुकुर बतासै भूँके' केहिया पूत जनमलें' 'कहिया झाँकारि भइल' आदि हिन्दी में प्रचलित कहावतों - मुहावरों का भी व्यापक प्रयोग हुआ है। आंचलिक भाषा की क्रियाओं के कतिपय व्यवहार हिन्दी के दायरे को विस्तार देते हैं - 'तो मोहनभोग लेकर भकोसो और दीप भर-भर चरणामृत सुड़को।" 'अच्छी फिंचाई की थी' इत्यादि।

**कविताओं का प्रयोग**

मिश्रजी कथाकार होने के साथ कवि भी है। कविताओं के प्रति उनका यह लगाव उनके उपन्यासों में भी दृष्टव्य है। उपन्यासों में कहीं कहीं पात्रों के मनोभावों के पूर्ण संप्रेषण केलिए कीर्तिमान कवियों के प्रसिद्ध पंक्तियों

---

1. रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ" - पृ. 109
2. पृ. 23
3. पृ. 319

का उल्लेख किया गया है। उदाहरण केलिए "रात का सफ़र" उपन्यास की ऋतु के ख्यालों से संदर्भ में कविता की पंक्तियों उद्घृत है -

"घूमने से मन नही भर रहा था। जगह-जगह नयी दिल्ली के गोल चक्करों पर छोटे-छोटे पार्क थे जो तितली के पंखों की तरह रंग-बिरंगे फूलों की महफिल - से - लगते थे। हवा में एक अद्भूत छुवन थी, एक गहरी पीताभा थी। मुझे पूरा का पूरा वातावरण मदन - महोत्सव सा लग रहा था।

मन मेरा इस मदन महोत्सव में
शिशु-सा फूला-फूला-सा
हर सौन्दर्य लहर के पीछे
विह्वल सा भूला-भूला सा
दौड रहा बाहें फैलाए, कुछ भी गहा नहीं जाता है।"[1]

इसी तरह 'आदिम राग' उपन्यास में प्रो. शील के भावुक प्रेमी मन के अंतरंग भावों को प्रकट करने केलिए भी पंतजी की पंक्तियाँ ली गयी हैं -

"उसे क्या हो गया है इन दिनों? उसके इस सन्नाटे में किसी आग लग गयी है? उसे याद हो आया पतझर का दृश्य नंगी-नंगी डालियों में लाल-लाल वसन्त की लपटें।"

"चंचल पग दीप शिखा के घर
गृह मग वन में आया वसन्त
सुलगा फालगुन का सुनापन
सौन्दर्य शिखाओं में अनन्त"[2]

---

1. रामदरश मिश्र - "रात का सफर" - पृ. 47
2. रामदरश मिश्र - "आदिम राग" - पृ. 21

पंत की यह पंक्ति उसने बी.ए. की श्रेणी में कितनी बार पढी होगी, लेकिन उसकी मूल संवेदना उसके रक्त में जैसे इस दौरान पहली बार बज उठी है।

इसी तरह 'अपने लोग' उपन्यास में उमेश की डायरी में भी कविताओं का उल्लेख है। उमेश प्यार में फंसकर किस प्रकार बदल जाता है। इसीबात का संकेत करता है -

"आज कितना अच्छा लगा रहा है पी कहाँ का स्वर! कल तक तो मैं 'पी कहाँ' में पिया या प्रिया को ढूढनेवाले कवियों का मज़ाक उडाता था और अट्टहास करता हुआ गाली देता था कि उल्लू के पट्ठों को सब जगह रोमांस ही सूझता है। लेकिन आज मुझे स्वयं इस पुकार में अपनी और माधवी की पुकार क्यों सुनायी पड़ रही है? झुके-झुके बादलों और हरियाली के पंख पसारकर उडती हुई - सी धरती के बीच क्यों मुझे कोई और संबंध अनुभव हो रहा है? मुझे एक कविता याद आ रही है।

"न माने बदरवा बरसे
हौले-हौले गगन झुक रहा धरती उडती जाये

फसल पुकारे मेघों को फसलों को मेघ बुलाये
मैं परदेसी तुझे पुकारूँ, तू मुझको घर से"[1]

---

1. रामदरश मिश्र - "अपने लोग" - पृ. 261

**निष्कर्षतः** यही कहा जा सकता है कि मिश्रजी ने अपने उपन्यासों के कथ्य के अनुरूप ही शिल्प और शैली का प्रयोग किया है। सामाजिक और आंचलिक उपन्यासों की शिल्प-शैली को स्वीकारते हुए उन्होंने उसमें 'अपनी शैली' का समावेश किया है। उनके उपन्यासों की सबसे बडी विशेषता सरलता और संप्रेषणीयता है, ये गुण उनकी संरचना की वजह ही संभव हुए हैं। मिश्रजी शिल्पगत, भाषागत या शैलीगत प्रयोगों में न उलझकर कथ्य को सजीव और संवेदनात्मक बनाने के लिए इनका सही ढग से इस्तेमाल किया है।

.....🕮.....

# उपसंहार

# उपसंहार

रामदरश मिश्र ऐसे बहुमुखी प्रतिभा संपन्न सृजनकार है जिन्होंने साहित्य की हर विधा में अपनी कलम चलाई ही नही बल्कि अपनी अमिट छाप छोडी भी है। उनकी सृजनात्मक प्रतिभा का यह करिश्मा है कि वह आज भी सक्रिय है, यानी वह कभी कुंद नही पडी है।

रामदरशजी का खास व्यक्तित्व है। भावुकता, संवेदनशीलता, संप्रेषणीयता सहजता, सरलता आदि उनके व्यक्तित्व के अभिन्न हिस्से हैं। ये सब उनकी रचनाओं में भी पायी जाती हैं। उनका कृतित्व और व्यक्तित्व एक दूसरे से भिन्न नही बल्कि जुडे हुए हैं। उनकी कथनी और करनी में भी फ़रक नही है। यानी उनके सृजनात्मक साहित्य को उनके जीवन से हम अलग नही कर सकते हैं। उनके उपन्यासों को पढते हुए पाठक को इस बात का विश्वास हो जाता है कि लेखक का सब कुछ भोगा हुआ है, अनुभव की एक-एक परत का उन्होंने साक्षात्कार किया है।

उपन्यासकार के रूप में मिश्रजी के लेखकीय व्यक्तित्व की यह अनन्य विशेषता है कि उन्होंने उपन्यास की सभी विधाओं के माध्यम से विभिन्न वादों और वृत्तियों को ज़ाहिर करने का प्रयास भी किया है। प्रेमचन्द और रेणु की परंपरा का विकास उनके उपन्यासों में नज़र आता है, यानी यथार्थवादी व आँचलिक विधा में उन्होंने अपनी करामात दिखायी है। गाँधीवाद और मार्क्सवाद

के साथ लोकसंपृक्ति के अनेक आयामों की भी कारगर अभिव्यक्ति उनके उपन्यासों में हुई है।

वास्तव में उनके उपन्यास वर्तमान भारतीय जीवन के समग्र रूप की कथात्मक अभिव्यक्ति है। हालांकि उनकी मूल संवेदना ग्राम जीवन की है फिर भी नगर की विसंगति, ऊब, कुंठा एवं तनाव भी स्पष्ट ज़ाहिर है। इन उपन्यासों में ज़ाहिर भारतीय जीवन के दो स्पष्ट हिस्से हैं। एक तलवर्ती ग्राम जीवन का और दूसरा बुद्धिजीवी मध्यवर्ग के नागरिक जीवन का।यह समग्र भारतीय जीवन जिन विसंगतियों और युगीन चोटों से तिलमिला रहा है उसकी समवेत अंतरंग पहचान मिश्रजी के उपन्यासों में हासिल होती है।

मिश्रजी अनुभव को रचना की नींव मानते हैं। ये अनुभव उनके लिए गाँव से जुडे हुए हैं। उनके उपन्यासों में स्वातंत्र्योत्तर भारत का गाँव बार-बार उभर आता है। आज़ादी के बाद का ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्र ही नही तलवर्ती लोक जीवन की सामान्य पहचान, टूटन और हताशा भी इन उपन्यासों में दृष्टव्य हैं। उन्होंने जीवन को विभक्त या पृथक नही किया है, फिर भी गाँव और नगर का अंतर स्पष्ट नज़र आता है। प्रवासी जीवन का यथार्थ भी उनके नगर संवेदनात्मक उपन्यासों में चित्रित है जो उनके ही अनुभवों से सरोकार रखता है।

ग्रामजीवन की संस्कृति और नगर जीवन के विधायक तत्व, आधुनिक सभ्यता के टकराव से छटपटाता एवं आहत होता आज का मरणोन्मुख, मूल्यहीन जीवन आदि उनके उपन्यासों में पूरी प्रामाणिकता के साथ उभरते नज़र आते हैं। जिस आत्मीयता से गाँव के गरीब किसान-मज़दूर की तस्वीर

उभर आई है, उसी अंतरंगता के साथ नगर के बुद्धिजीवि भी ज़ाहिर हुए हैं। इस प्रकार एक व्यापक समाज का जीता-जागता विराट एवं मूर्त रूप उनके उपन्यासों में उपलब्ध है।

मिश्रजी ने बदलते परिवेश के प्रति भी अपनी सर्जनात्मक प्रतिक्रिया प्रकट की है। वे हमेशा सामाजिक प्रतिबद्धता के तरफदार रहे हैं। समाज के दलित, पीडित, शोषित एवं बेसहारे लोगों को वे कभी अनदेखा नही करते। समकालीन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश एवं बदलाव को उन्होंने पूरी तरह से महसूस किया है। इसलिए उनका सामाजिक चित्रण प्रामाणिक है। व्यवस्था की विसंगति, वर्ग वैषम्य, प्रवासी जीवन की विडंबनाएँ, लिंग और जाति वैषम्य, राजनैतिक क्षेत्र का समग्र विघटन आदि से जुडी उनकी सर्जनात्मक प्रतिक्रियाएँ बुलन्द ही नही बल्कि 'आँथन्टिक' भी है।

मिश्रजी मानवीय मूल्यों के पक्षधर रहे हैं। उनका मूल्य-चिंतन प्रायः शिक्षित मध्यवर्गीय व्यक्तियों के माध्यम से ज़ाहिर हुआ है। झूठ बेइमानी और प्रपंच की मुखर भर्त्सना, शोषण और अत्याचार का विरोध, वर्ग संघर्ष का आह्वान, दलितजन की पक्षधरता, रूढी, जडता अन्धविश्वास से असहमति, परिवर्तनकामी शक्तियों का समर्थन, ये सब मिश्रजी के उपन्यासों से आये परिवर्तनकामी मूल्य चिंतन के प्रमुख पक्ष है।

आज हिन्दी साहित्य में दलित-लेखन का एक अलग संकाय उपलब्ध है। सचमुच इसकी शुरुआत आँचलिक उपन्यासों से हुई है। मिश्रजी के उपन्यासों में चित्रित दलित जीवन, उनके अनुभव एवं साक्षात्कार का संश्लिष्ट

रूप है। उनमें दलितों की नियति और संघर्ष का प्रामाणिक और मार्मिक बयान मिलता है।

मिश्रजी के उपन्यासों में नारी अस्मिता एवं स्वतंत्रता से जुडे आयामों का भी चित्रण हुआ है। उन्हें पता है कि आधुनिक भारतीय समाज में भी नारी का शोषण जारी है। वे नारी-पुरुष का समाज द्वारा आरोपित भेद-भाव मिटाना चाहते हैं। नारी वैसे ही अस्मिता की हकदार है जो समाज में पुरुष ने हासिल किया है। उनकी दृष्टि में पुरुष के अधीशत्व के विरुद्ध संघर्षरत नारी का पुरजोर महत्व है। अन्याय और आक्रमण को चुपचाप सहनेवाली परंपरागत क्षमामयी नारी का सात्विक रूप उन्हें जंचता नहीं।

रामदरश मिश्रजी की प्रगतिशील दृष्टि समाज के शोषित एवं पीडितों को अनदेखा नही करती है। इसलिए उनके उपन्यास सामान्य मानव समाज का ज़िदगीनामा है। मानवीय मूल्यों के प्रति बुनियादी आस्था उनकी रचना धर्मिता और वैचारिकता का केन्द्रीय भाव है। इसलिए वे सामाजिक जीवन के अन्तर्विरोधों और भटकावों पर बरस पडते हैं। जहाँ कही भी अन्याय और अमानवीयता दिखाई देती है, उनपर गहरी चोट भी करते हैं।

मानवीयता उनकी रचनात्मकता का अंतस्रोत है। इसलिए दलीय-राजनीति का सतही स्तर उनके उपन्यासों का विषय नही है। उनकी पृष्ठभूमि विराट सामाजिक परिप्रेक्ष्य है। यानी मिश्रजी समकालीन राजनीति से सरोकार रखते हुए भी किसी राजनीतिक दल के हिमायती नही हैं। आज प्रत्येक साहित्यिक दल या गुट किसी न किसी राजनीतिक पार्टी से नियंत्रित है। यह

नियंत्रण लेखक की स्वतंत्रता और सृजनात्मकता पर अंकुश लगाता है। इसलिए सामाजिक प्रतिबद्धता के बावजूद वे दलीय राजनीति से अपने को दूर रखते है। लेकिन उनकी प्रगतिशील दृष्टि पर अवश्य मार्क्सवादी दर्शन का प्रभाव स्पष्ट है।

आपने उपन्यासों के कथ्य के अनुकूल ही शिल्प और शैली को उन्होंने आत्मसात किया है। उनके उपन्यासों की सरचना की आम विशेषता है - सरलता, सहजता और संप्रेषणीयता। ये उनके विचारों की स्पष्टता से संभव हुई है। उन्होंने सचमुच शिल्पगत, भाषागत या शैलीगत प्रयोगों में न उलझकर कथ्य को सजीव और संवेदनात्मक बनाने की कोशिश की है। यानी शिल्प उनकेलिए माध्यम है। प्रयोग का साधन नहीं।

मिश्रजी का शिल्प आधुनिक भी है। अतीत सम्पृक्त आधुनिकता का यह शिल्प उपन्यासों को सहज, स्पष्ट और बोधगम्य बनाता है। उसकी जड ज़मीन में होती है और शेष फैलाव में समकालीन वैचारिकता को स्थान मिलता है। किसी वाद विचार या तर्क को मिश्रजी ने 'फैशन' के रूप में नही लिया है। न ही कहीं अपनी गहनता या गंभीरता की धाक जमाना चाहा है। इसलिए कथा की निरंतरता में बाधा नहीं आती है।

मिश्रजी के उपन्यास तत्कालीन भारतीय समाज का यथार्थ है। उनमें दकियानूसी और प्रगतिशील शक्तियों के बीच निरंतर संघर्ष को, ठोस सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, एवं सांस्कृतिक यथार्थों के परिप्रेक्ष्य में आंकने की कोशिश हुई है। साहित्य जगत् में उभर आते वादों की हवाओं में बहते रहने का प्रयास मिश्रजी ने कभी नही किया। समय के नाम पर उठनेवाले

तमाम हलचलों से अपने को बचाये रखकर समय की चेतना के साथ चलना एक साहित्यकार केलिए कठिन है। लेकिन मिश्रजी अपनी सृजनात्मक क्षमता को निखारते हुए, समय की चेतना के साथ चलते हुए अपने आप को 'समय-साक्षी' के अनुपम नमूने के रूप में सारी दुनिया के सामने पेश किया है। उनके उपन्यास इसकेलिए ज़िदा जावेद सबूत हैं।

.....🕮.....

# सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

# मिश्रजी के मौलिक उपन्यास

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1) | 'पानी के प्राचीर' | - | वाणी प्रकाशन<br>दरियागंज, नई दिल्ली-2<br>प्रथम संस्करण - 1986 |
| 2) | 'जल टूटता हुआ' | - | नेशनल पब्लिशिंग हाउस<br>दरियागंज-23<br>नई दिल्ली-110002<br>प्रथम संस्करण - 1979 |
| 3) | 'अपने लोग' | - | 'नेशनल पब्लिशिंग हाउस<br>दरियागंज - 23<br>नई दिल्ली - 110002<br>द्वितीय संस्करण - 1989 |
| 4) | 'आदिम राग' | - | 'वाणी प्रकाशन'<br>61-एफ, कमलानगर<br>दिल्ली - 110007<br>संस्करण - 1993 |
| 5) | 'बिना दरवाज़े का मकान' | - | प्रभात प्रकाशन<br>चावडी बाज़ार, दिल्ली-10006<br>प्रथम संस्करण - 1984 |
| 6) | 'आकाश की छत' | - | वाणी प्रकाशन<br>21-ए, दरियागंज<br>नई दिल्ली - 110002<br>प्रथम संस्करण - 1979 |

| | | |
|---|---|---|
| 7) 'दूसरा घर' | - | वाणी प्रकाशन<br>21-ए, दरियागंज<br>नई दिल्ली - 110002<br>संस्करण - 1994 |
| 8) 'रात का सफर' | - | इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन<br>के-71, कृष्ण नगर<br>दिल्ली - 110051<br>प्रथम संस्करण |
| 9) 'सूखता हुआ तालाब' | - | नेशनल पब्लिशिंग हाउस<br>21 दरियागंज<br>दिल्ली - 10002<br>प्रथम संस्करण - 1972 |
| 10) 'थकी हुई सुबह' | - | इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन<br>के-71, कृष्णनगर<br>दिल्ली-10051<br>प्रथम संस्करण - 1999 |
| 11) 'बीस बरस' | - | वाणी प्रकाशन<br>21 ए, दरियागंज<br>नई दिल्ली - 110002<br>प्रथम संस्करण - 1999 |

**काव्य संस्करण**

| | | |
|---|---|---|
| 1) 'कन्धे पर सूरज' | - | राधाकृष्ण प्रकाशन<br>दिल्ली<br>प्रथम संस्करण |

2) 'बारिश में भीगते बच्चे' - वाणी प्रकाशन
21 ए, दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
संस्करण - 1999

**आत्मकथा**

1) 'जहाँ मैं खडा हूँ' - परमेश्वरी प्रकाशन
बी-109, प्रीत विहार
दिल्ली - 110092
संस्करण - 1999

2) 'टूटते बनते दिन' - परमेश्वरी प्रकाशन
बी-109, प्रीत विहार
दिल्ली - 110092
संस्करण - 1991

3) 'उत्तर पथ' - परमेश्वरी प्रकाशन
बी-109, प्रीत विहार
दिल्ली - 110092
संस्करण - 1991

**अन्य आलोचनात्मक कृतियाँ**

1) 'प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास नए नैतिक मूल्य'
ले. शशि गुप्ता - 'नमन प्रकाशन'
4378/4 बी अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली-2
प्रथम संस्करण - 1999

2) 'हिन्दी उपन्यासों में ग्राम सम्सयायें'
डॉ. ज्ञान अस्थाना - 'अमर प्रकाशन'
सदर बाज़ार
मथुरा - 281 002
प्रथम प्रकाशन - 1979

3) 'प्रमुख आंचलिक उपन्यास - संवेदनात्मक दृष्टि'
डॉ. कैलाशनाथ पाण्डेय - जयभारती पब्लिशिंग हाऊस
447 पीली कोठी, नयी बस्ती
किडगंन, इलाहाबाद-3
प्रथम प्रकाशन - 1995

4) 'प्रगतिवादी हिन्दी उपन्यास'
डॉ. बदरी प्रसाद - ओम प्रकाशन
30 बी, केवल पार्क एक्सेंशन
आजादपुर, दिल्ली-110033
प्रथम संस्करण - 1987

5) 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास'
भूपसिंह भूपेन्द्र - स्याम प्रकाशन
फिल्म कालोनी
जयपुर - 302003
प्रथम संस्करण - 1987

6) 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यास'
सं. डॉ. रामदरश मिश्र - 'वाणी प्रकाशन'
डॉ. ज्ञानचंद पुप्त 61-एफ, कमला नगर
दिल्ली - 110007
प्रथम संस्करण - 1984

7) 'हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना'
डॉ. कुंवरपाल सिंह - पांडुलिपि प्रकाशन
ई-11/15, कृष्णनगर
दिल्ली - 110051
प्रथम संस्करण - 1976

8) 'हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तर काल'
डॉ. राम शोभित प्रसाद सिंह ऋषभ चरण जैन एवम सन्तति
दरियागंज, नई दिल्ली - 10002
प्रथम संस्करण - 1981

9) 'उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ'
डॉ. सुरेश सिन्हा - रामा प्रकाशन
नज़ीराबाद, लखनऊ
प्रथम संस्करण - 1965

10) 'आठवें-दशक के हिन्दी - उपन्यास'
डॉ. रजनीकांत जैन - ऋषभचरण जैन एवम् सन्तति
4697/5-21ए, दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
प्रथम संस्करण - 1988

11) 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में जीवन सत्य'
डॉ. इन्दु प्रकाश पाण्डेय - नेशनल पब्लिशिंग हाउस
23 दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
प्रथम संस्करण - 1979

12) 'हिन्दी उपन्यास - तीन दशक'
डॉ. राजेन्द्र प्रताप - कौशल प्रकाशन
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002
प्रथम संस्करण - 1983

13) 'उपन्यास का पुनर्जन्म'
परमानंद श्रीवास्तव - वाणी प्रकाशन
21 ए, दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
प्रथम संस्करण - 1995

14) 'हिन्दी उपन्यासों में प्रशासन'
डॉ. सुधाकर अदीब - अभिव्यंजना प्रकाशन
बी-70/72, डी.एम.आई.डी.सी.
साम्पलेक्स, लारेंस रोड
दिल्ली - 110035
प्रथम संस्करण - 1996

15) 'हिन्दी उपन्यास और दलित नारी'
डॉ. कुसुम मेधवाल - संधी प्रकाशन
सी-177 महावीर मार्ग
मालवीय नगर
जयपुर - 302017
प्रथम संस्करण - 1991

16) 'समकालीन हिन्दी उपन्यास'
डॉ. विवेकी राय - राजीव प्रकाशन
189-ए/1, अलोपीबाण कालोनी
इलाहाबाद-6
प्रथम संस्करण - 1987

17) 'हिन्दी के लघु उपन्यासों का शिल्प'
माधुरी खोसला - विजयन्त प्रकाशन
20, ईस्ट एवेन्यू मार्केट
पंजाबी बाग, नई दिल्ली-26
संस्करण - 1973

18) 'हिन्दी उपन्यास की दिशाएँ'
डॉ. वेदप्रकाश अभिताभ - गोविन्द प्रकाशन
सदर बाज़ार, मधुरा - 281002
उत्तर प्रदेश
संस्करण - 1980

19) 'हिन्दी उपन्यास समकालीन परिदृश्य'
सं. डॉ. महीप सिंह - लिपि प्रकाशन
1, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
प्रथम संस्करण - 1980

20) 'समाजवादी हिन्दी उपन्यासों में चरित्रांकन'
डॉ. नास्ति कुमार - जवाहर पुस्तकालय
सदर बाज़ार
मथुरा - 281002
प्रथम संस्करण - 1997

21) 'उपन्यास की शर्त'
जगदीशनारायण श्रीवास्तव- किताबघर
24, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
प्रथम संस्करण - 1993

22) 'हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्द तथा उत्तर प्रेमचन्द काल'
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली
प्रथण संस्करण - 1961

23) 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यास-सामाजिक एवं साँस्कृतिक संदर्भ
डॉ. विमलाशंकर नागर - प्रेरणा प्रकाशन
3, खालसा
भुरादाबाद - 244001
प्रथम संस्करण - 1985

24) 'हिन्दी उपन्यास युगचेतना और पाठकीय संवेदना'
डॉ. मुकुन्द द्विवेदी - लोकभारती प्रकाशन
14-ए, महात्मा गाँधी मार्ग
इलाहाबाद-1
प्रथम संस्करण -1970

25) 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन'
डॉ. रमेश तिवारी - रचना प्रकाशन
45-ए, खुलदाबाद
इलाहाबाद-1
प्रथम संस्करण - 1972

26) 'गाँधी विचारधारा और हिन्दी उपन्यास'
डॉ. अरुणा चतुर्वेदी - कल्पकार प्रकाशन
लखनऊ-7 उ. प्र
प्रथम संस्करण - 1983

27) उपन्यास-स्वरूप और संवेदना
राजेन्द्र यादव - वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज
नई दिलली - 110002
प्रथम संस्करण - 1997

28) 'आधुनिक उपन्यास विविध आयाम'
डॉ. विवेकी राय - अनिल प्रकाशन
198 ए/1, अलोपीबाण कालोनी
इलाहाबाद
प्रथण संस्करण - 1990

29) 'हिन्दी उपन्यासों में पारिवारिक संदर्भ'
उषा मंत्री - नेशनल पब्लिशिंग हाउस
23, दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
प्रथम संस्करण - 1991

30) 'महाकाव्यात्मक उपन्यासों की शिल्प विधि'
डॉ. शंकर वसंत मृदगल - चन्द्रलोक प्रकाशन
128/106 जी. ब्लाक
किदवई नगर कानपुर-208011
प्रथम संस्करण - 1994

31) 'आज का हिन्दी उपन्यास'
डॉ. हेमराज कौशिक - ललिता प्रकाशन
विश्वास नगर, दिल्ली - 110032
प्रथम संस्करण - 1988

32) 'नये उपन्यासों में नये प्रयोग'
डॉ. दंगल झाल्टे - प्रभात प्रकाशन
चाबड बाज़ार, दिल्ली-6
संस्करण - 1994

33) 'उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान'
डॉ. दंगल झालटे - वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-2
प्रथम संस्करण - 1987

34) 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में पुरुष पात्र'
डॉ. दुर्गेश नन्दिनी प्रसाद - गीता प्रकाशन
4-5-769, प्रथम तला
बडी चावडी, हैदराबाद-500027
प्रथम संस्करण - 1993

35) 'आधुनिक हिन्दी उपन्यास सृजन और आलोचना'
चंद्रकांत बांडिवडेकर - नेशनल पब्लिशिंग हाउस
23, दरियागंज
दिल्ली - 110002
प्रथम संस्करण - 1985

36) 'हिन्दी उपन्यासों में रुढिमुक्त नारी'
डॉ. राजरानी शर्मा - तन्मय अग्रवाल
साहित्य मंडल
4662/21 दरियागंज
नई दिल्ली - 2
प्रथम संस्करण - 1989

37) हिन्दी-उपन्यास अछूते सन्दर्भ
डॉ. रणवीर रांग्रा - साहित्य प्रकाशन
मालीवाडा, दिल्ली - 110006
प्रथम प्रकाशन - 1986

38) 'हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन'
डॉ. महावीरमल लोठा - सुशील बोहरा
बोहरा प्रकाशन
बोरडा का रास्ता
जयपुर - 3
संस्करण - 1972

39) 'हिन्दी उपन्यास सातवां दशक'
डॉ. जयश्री बर्‌हारे - संचयन
124/152 सी. गोविन्द नगर
कानपुर - 208006
प्रथम संस्करण - 1988

40) 'हिन्दी उपन्यासों में चेतना प्रवाह पद्‌धति'
डॉ. मोहन लाल कपूर - साकेत समीर प्रकाशन
जी-261, ऋषि नगर
दिल्ली - 110034
प्रथम संस्करण - 1988

41) 'हिन्दी के महाकाव्यात्मक उपन्यास'
डॉ. पुष्पा कोछड़ - नचिकेता प्रकाशन
7/19 ए, विजय नगर
दिल्ली - 110009
प्रथम संस्करण - 1987

42) 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि'
डॉ. आदर्श सक्सेना - सूर्य प्रकाशन मन्दिर
मिस्सों का चौंक
बीकानेर
संस्करण - 1971

43) 'आज़ादी के पचास वर्ष क्या खोया, क्या पाया'
सं. देवेन्द्र उपाध्याय - सामयिक प्रकाशन
3543, जटवाडा, दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
संस्करण - 2000

44) 'भारतीय ग्राम' - दिवि पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
35-ए, डी.डी.ए. फ्लैट
मानसरोवर पार्क
शाहदरा, दिल्ली - 110032
संस्करण - 2000

45) 'हरिजन से दलित' - वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
प्रथम संस्करण - 1994

46) 'दलित साहित्य 1999' अतिश प्रकाशन
9-बी, पाँकेट एफ-1
जी-8 एरिया, हरिनगर
दिल्ली-64
प्रथम संस्करण - 2001

47) 'सांप्रदायिकता के बदलते-चेहरे'
रमणिका गुप्ता - आकृति प्रकाशन
9-बही, पाँकेट एफ-1
जी-8 एरिया, हरिनगर
संस्करण - 2003

48) 'साहित्य, समाज और जनतंत्र'
प्रफुल्ल कोलख्यान - आनन्द प्रकाशन
176-178, रवीन्द्र सरणी
कोलकत्ता - 700 007
प्रथम संस्करण - 2003

49) 'स्त्री केलिए जगह'
संपादक - राजकिशोर - वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
प्रथम संस्करण - 1999

50) 'भारतीय समाज' - नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया
ए-5 ग्रीन पार्क
नई दिल्ली - 10016
प्रथम संस्करण - 2001

51) 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'
डॉ. नगेन्द्र - नाशनल पब्लिशिंग हाउस
दिल्ली, दरियागंज
दिल्ली - 110002
संस्करण - 1996

52) 'हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी'
नन्ददुलारे वाजपेयी - लोकभारती प्रकाशन
महात्मा गाँधी मार्ग
इलाहाबाद-1
संस्करण - 1977

53) 'हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ'
डॉ. शिवकुमार शर्मा - अशोक प्रकाशन
दिल्ली - 110001
संस्करण - 1994

54) 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ'
डॉ. नामवर सिंह - लोकभारती प्रकाशन
महात्मा गाँधी मार्ग
इलाहाबाद-1
संस्करण - 1990

55) 'आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि'
डॉ. रामदरश मिश्र - अभिनव प्रकाशन
दिल्ली - 11001
प्रथण संस्करण - 1975

56) 'हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा'
डॉ. रामदरश मिश्र - राजकमल प्रकाशन
दिल्ली - 110001
प्रथम संस्करण - 1968

57) 'रामदरश मिश्र की सृजन यात्रा'
महावीर सिंह चौहान - वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
प्रथम संस्करण - 1991

58) 'रामदरश मिश्र व्यक्ति और अभिव्यक्ति'
सं. जगन सिंह और स्मिता मिश्र वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
प्रथम संस्करण - 1999

59) 'रामदरश मिश्र व्यक्ति और कृतित्व
डॉ. फूलवदन यादव - राधा पब्लिशिंग हाउस
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002
प्रथम संस्करण - 1992

60) 'रचनाकार रामदरश मिश्र'
सं. नित्यानन्द तिवारी - राधा पब्लिकेशन
[redacted] **4-बी, अंसारी रोड, दरियागंज**
नई दिल्ली - 110002
द्वितीय संस्करण - 1997

## अंग्रेज़ी पुस्तकें


1) "The untouchables in Modern India
Bhagirath Poddar — Sarup & Sons
4740/23, Ansari Road
Darya Ganj, New Delhi - 110002
1st Edition - 2001

2) "Society and Politics in India"
Andre Beteille — Oxford University Press
Calcutta, Chennai, Mumbai
Jai Singh Road, Delhi - 110001
Edition - 1992

3) Second India Studies Population
Jaipal Ambannavar — The Macmillan Company of India Ltd
Delhi, Bombay, Calcutta, Madras
Edition - 1975

4) "Caste in Indian Politics"
Edited by Ranjini Kothari - — Orient Longman Limited
3-6, 272 Himayat Nagar
Hyderabad - 500029
Reissue - 1995

5) "Indian Economic Development and Social Opportunity"
Jean Dreze and Amartya Sen — Oxforx University Press
Calcutta, Chennai, Mumbai
Jai Singh Road
New Delhi - 110001

6) "Modern Hindi Fiction"
Dr. Ramdarash Misra — Bansal & Co.
Delhi - 110001
Edition - 1983

7) "Indian Fiction of the Nineties"
Edited by - R.S. Patak — Creative Books
New Delhi
Edition - 1997

## पत्रिकाएँ


1) समीक्षा - अप्रैल - जून - 2005
2) समीक्षा - जनवरी - मार्च - 1998
3) संचेतना - पूर्णांक - 149 - 1999
4) युगस्पदन - नवंबर - दिसंबर - 1998
5) समीक्षा - जुलाई - सितंबर - 2004
6) समीक्षा - जनवरी - मार्च - 2004
7) आलोचना - जनवरी - मार्च - 2002
8) आलोचना - जुलाई - सितंबर - 2001
9) अभिनव प्रसंग - जनवरी - जून - 2002
10) सारिका - अगस्त - 1981

.....🕮.....